Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण रहस्य

Secrets of Rāmāyaṇa

डॉ० राधा गुप्ता

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण रहस्य

Secrets of Rāmāyaṇa

डॉ० राधा गुप्ता

PP

Vipin Kumar Col. Deoband. In

रामायण महाकाव्य उस सुन्दर माला की भाँति है, जिसमें अनगिनत मोती— रसों के, अलंकारों के, राजनीति के, वास्तु के, ज्योतिष के, कर्तव्यों के, अकर्तव्यों के, धर्म के, अधर्म के पिरोए गए हैं। परन्तु उन मोतियों के मध्य में जो धागा विद्यमान है, वह अध्यात्म का है, जिसे रामकथा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। रामकथा के रूप में प्रस्तुत उसी अध्यात्म के धागे को पहचानने का एक लघु प्रयास यहाँ प्रस्तुत है।

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण रहस्य

(Secrets of Rāmāyaṇa)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण रहस्य

(Secrets of Rāmāyaṇa)

डॉ० राधा गुप्ता

परिमल पब्लिकेशन्स

दिल्ली

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समर्पण

ज्ञान कभी विनष्ट नहीं होता। वह कभी छुपता है, तो कभी प्रकट हो जाता है। जो परमात्म-शक्ति किसी न किसी को माध्यम बनाकर उस छुपे हुए ज्ञान को प्रकट करती है, उसी परमात्म-शक्ति के प्रति प्रस्तुत पुस्तक सादर सस्नेह समर्पित है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विषयानुक्रमणिका

रामायण की कथाओं में छुपे गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य

बालकाण्ड

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अयोध्याकाण्ड

अरण्यकाण्ड

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किष्किन्धाकाण्ड

सुन्दरकाण्ड

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

:

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

युद्धकाण्ड

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विषय में प्रवेश

एक धार्मिक परिवार से सम्बन्ध रखने के नाते रामायण, महाभारत अथवा भागवत जैसे ग्रन्थों से मैं कभी भी अपरिचित तो नहीं रही परन्तु उनके प्रति कोई प्रगाढ़ आस्था भी नहीं रख पाई क्योंकि जीवन में जब-जब उनको पढ़ने अथवा सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ, तब-तब मेरा मन प्रश्न उठाए बिना नहीं रह सका। मन में प्रश्न उठते, वहीं कुलबुलाते और धीरे-धीरे शान्त हो जाते क्योंकि वातावरण में तत्सम्बन्धित प्रश्नों का कोई समाधान था ही नहीं। हाँ, वातावरण में नैतिक शिक्षाएँ और आदर्श दूध में शक्कर की भाँति घुले हुए थे, परन्तु मेरे मन को तृप्ति देने वाला ऐसा कोई आध्यात्मिक जल वहाँ विद्यमान नहीं था, जिसकी मुझे प्यास थी।

पढ़ने में मन लगता था, इसलिये पढ़ते-लिखते हुए ही जीवन की यात्रा सुचारु रूप से आगे बढ़ती रही। परन्तु जीवन में घटित भाँति-भाँति की घटनाओं से गुजरते हुए मेरा मन सदा उस सुख-दु:ख के झूले में झूलता रहा, जो मुझे कभी रास नहीं आया। अत: मैं अपने आप से यह प्रश्न जरूर पूछती रही कि क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जो जीवन को सुख और दु:ख से परे ले जा सके? चूँकि मैं अभी तक एक धार्मिक जीवन ही जी रही थी, इसलिये यह भी स्वाभाविक था कि एक धार्मिक जीवन वह सब नहीं दे सकता था, जिसे मैं चाह रही थी।

परन्तु एक कहावत प्रसिद्ध है कि जहाँ चाह होती है, वहाँ राह भी अवश्य होती है। अत: एक दिन मेरी चाह को भी मानो राह मिल गई। मैंने डी. लिट् की उपाधि हेतु जिस योगवासिष्ठ ग्रन्थ को पढ़ा, उसमें यह विषय सर्वत्र अनुस्यूत था कि यदि एक विकारमुक्त सुख-पूर्ण जीवन चाहते हो, तो स्वयं को ही सही रूप में पहचानना अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होना अनिवार्य होगा। प्रारम्भ में तो यह बात मुझे समझ नहीं आई और कुछ अटपटी सी लगी, परन्तु जैसे-जैसे समझ बढ़ी, वैसे-वैसे स्वयं को पहचानने अर्थात् आत्मज्ञान की बात मेरे गले उतरने लगी और मुझे स्वामी रामतीर्थ की किसी छोटी सी पुस्तक में पढ़ी हुई उस बात का स्मरण हो आया, जिसमें उन्होंने कहा था कि स्वयं को पहचानने के लिये पहले अपने ही शरीर को सिर से लेकर पैर तक ध्यानपूर्वक देखना आवश्यक है और फिर यह पता करना है कि जब यह शरीर मेरा है तो इसको चलाने वाला मैं कौन हूँ। मैं जब-तब ऐसा अभ्यास करती भी रही कि यह मेरा सिर है, यह मेरा पेट है, यह मेरा हाथ है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह मेरा पैर है– आदि-आदि परन्तु मैं यह शरीर नहीं हूँ। मैं निश्चित रूप से इस शरीर से अलग कोई शक्ति या कोई आत्मा हूँ। यह सब करते हुए निश्चित रूप से बौद्धिक समझ तो बढ़ी परन्तु आचरण-परक स्पष्टता मेरे भीतर नहीं बन पाई। अतः सच कहूँ, तो योगवासिष्ठ को पढ़कर भी स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान मेरे लिये सैद्धान्तिक तो बना रहा परन्तु प्रायोगिक या आचरण-परक नहीं बन पाया।

पढ़ते-पढ़ते और अनजाना सा कुछ खोजते-खोजते जीवन की यात्रा इसी प्रकार आगे बढ़ती रही और डी. लिट् पूरा होते ही कर्म-फल-नियम के वशीभूत मैंने अपने भाई श्री विपिन कुमार के अनुरोध और प्रेरणा से जब पुराणों को पढ़ना आरम्भ किया, तब एक नई अवधारणा मन में बननी शुरु हो गई। अवधारणा यह बनी कि वेद-पुराणादि कोई भी ग्रन्थ सीधा ज्ञान नहीं देते। समस्त ज्ञान के ऊपर कथाओं का एक सुन्दर आवरण चढ़ा हुआ है और इसी आवरण के नीचे सारा महत्त्वपूर्ण ज्ञान छुपा हुआ है। मेरे भाई वेदों और पुराणों के ऊपर पड़े हुए उस कथा रूप आवरण को हटाकर नीचे छुपी हुई ज्ञान की गुत्थियों को सुलझाने में पहले से ही लगे हुए थे, अतः मेरा ध्यान भी उस तरफ आकर्षित हुआ और मैंने उन अनसुलझी गुत्थियों के सुलझे हुए धागों को गम्भीरता पूर्वक पकड़ना और समझना शुरू कर दिया।

स्वयं को पहचानने अर्थात् आत्म-ज्ञान का प्रयास और अभ्यास तो मन के भीतर पहले से ही चल रहा था, अतः अब दोनों का संग रंग लाया और धीरे-धीरे ही सही, परन्तु पुराणों की कथाओं में छुपे हुए ज्ञान के सूक्ष्म धागे मेरी पकड़ में आने शुरू हो गए। इस नई समझ के आधार पर मैंने सबसे पहले महाभारत ग्रन्थ को टटोला, फिर भागवत महापुराण को देखा तथा अन्त में रामायण महाकाव्य को पढ़ना प्रारम्भ किया। तीनों ही ग्रन्थों में कथाओं के भीतर छुपे हुए ज्ञान को समझकर जो महत्त्वपूर्ण सूत्र हाथ में आए, उन्हें मैंने अधूरे रूप में ही एक पुस्तक के रूप में संग्रहीत कर दिया, जो **'रहस्य'** नाम से प्रकाशित होकर पाठकों के हाथों में पहुँच गई।

उसी अधूरे कार्य को आगे बढ़ाते हुए मैंने पहले रामायण ग्रन्थ को पूर्ण करना उचित समझा क्योंकि पूर्व प्रकाशित **'रहस्य'** नामक पुस्तक में रामायण से सम्बन्धित सामग्री बिल्कुल नहीं के बराबर थी। रामायण में वर्णित रामकथा को गहनता से समझते हुए एक दिन अकस्मात् मेरा साक्षात्कार टीवी के माध्यम से बी. के. बहन शिवानी से हुआ। मुझे ऐसा लगा, जैसे बहुत दिनों के प्यासे को पानी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मिल गया हो क्योंकि मेरे मन के भीतर स्वयं की सही पहचान (आत्म-ज्ञान) से सम्बन्धित जो-जो बातें अभी तक अंकुरण के रूप में विद्यमान थी और पुष्पित, पल्लवित नहीं हो पा रही थी, वे मानो पुष्पित, पल्लवित होकर वृक्ष बन गई और स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में जीनां मेरे लिये सरल हो गया। अब रामकथा के भीतर छुपी हुई ज्ञान की एक-एक बूँद को मैंने सबसे पहले अपने भीतर जिया और उसके बाद ही उसे शब्दों का जामा (वस्त्र) पहनाया।

वाल्मीकि रामायण में वर्णित रामकथा के विषय में यहाँ मैं केवल इतना ही कहना चाहूँगी कि एक बार यदि किसी ने गम्भीरतापूर्वक रामायण में वर्णित राम और रावण नामक पात्रों को उनके सही परिप्रेक्ष्य में समझ लिया, तब निश्चितरूपेण सम्पूर्ण कथा में छुपे हुए ज्ञान को समझने में देर नहीं लगेगी। उसके लिये मात्र 'ध्यान' ही पर्याप्त होगा। कहा भी गया है– Where Attention goes, Energy flows. Where Energy flows, Things grow.

प्रस्तुत पुस्तक **'रामायण रहस्य'** के रूप में रामकथा में छुपे हुए सम्पूर्ण ज्ञान को यथासम्भव सरलतम रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। फिर भी कहीं कठिनाई प्रतीत हो, तो विज्ञ पाठक क्षमा करने की कृपा करें।

'रामायण रहस्य' के रूप में रामकथा को प्रस्तुत करना मेरे लिये पूर्णरूपेण सहज ही रहा क्योंकि मैं केवल एक माध्यम के रूप में प्रस्तुत रही। परमपिता परमात्मा ने मुझ माध्यम का उपयोग किया और कार्य को सम्पन्न करवाया।

किसी भी कार्य के घटित होने में परम-पिता परमात्मा की कृपा और सम्पूर्ण अस्तित्व का सहयोग किस प्रकार से मिलता है, उसे केवल अनुभव ही किया जा सकता है। उस सहयोग के प्रति मैं अत्यन्त अभिभूत हूँ। अतः शब्दों के विस्तार में न जाकर मैं अपने समस्त मित्रों तथा परिवारजनों के प्रति नतमस्तक हूँ और उनके प्रति अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वाल्मीकि रामायण के राम

राम भारतीय संस्कृति के प्राण हैं अर्थात् भारतीय संस्कृति में राम का स्थान वैसा ही है, जैसा मनुष्य-शरीर में प्राणों का होता है। शरीर के समस्त अंग-मस्तिष्क, यकृत, गुर्दे, पेट, आँतें, आँख, नाक, कान आदि सब ठीक-ठाक हों परन्तु शरीर में प्राण न हों, तब जो स्थिति शरीर की होती है, वही स्थिति भारतीय संस्कृति में राम की है। इसलिए यह जानना अति आवश्यक हो जाता है कि वाल्मीकि के राम हैं कौन? क्या वह एक मनुष्य हैं? क्या वह आत्मा हैं? क्या वह परमात्मा हैं अथवा क्या वह कोई महापुरुष हैं?

वाल्मीकि रामायण का गहन चिन्तन-मनन करने पर जो निष्कर्ष निकलता है— उसके अनुसार वाल्मीकि रामायण में वर्णित राम मनुष्य की उस उच्चतर चेतना का नाम है, जब वह स्वयं को शरीर न समझकर आत्मा समझता है अर्थात् वह यह समझता है कि मैं शरीर नहीं हूँ अपितु शरीर का स्वामी, शरीर को चलाने वाला, प्रकाशस्वरूप, अजर, अमर, अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ। अपने वास्तविक स्वरूप, आत्म-स्वरूप की इस पहचान को आत्म-ज्ञान नाम दिया जा सकता है और वाल्मीकि रामायण में वर्णित राम इस आत्म-ज्ञान का ही प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रत्येक मनुष्य आत्मा और शरीर का एक योग (जोड़) है। शरीर दिखाई देता है परन्तु शरीर को चलाने वाली चैतन्य-शक्ति जिसे हम आत्मा कहते हैं, वह अदृश्य है, दिखाई नहीं देती। यह चैतन्य-शक्ति या आत्मा केवल प्रकाशरूप है और मस्तिष्क के मध्य भाग में (हाइपोथैलामस और पिट्यूटरी ग्रन्थि के मध्य में) विराजमान है। अति सूक्ष्म, केवल प्रकाशरूप होने के कारण किसी यन्त्र के द्वारा भी इसको देखा जाना सम्भव नहीं है। चैतन्य-शक्ति या आत्मा के निवास स्थान, मस्तिष्क के इस सूक्ष्म मध्य भाग को ही शास्त्रों में हृदय-गुहा, हृद्देश अथवा हिरण्यय कोश कहा जाता है। शरीर के बाहरी तल पर अर्थात् मस्तक पर इसी स्थान को भ्रूमध्य भी कहा जाता है। यद्यपि यह चैतन्य-शक्ति या आत्मा अतिसूक्ष्म है और स्थूल नेत्रों से दिखाई नहीं देती, फिर भी मन-बुद्धि के नेत्रों द्वारा प्रकाशस्वरूप इस चैतन्य-शक्ति या आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करके इसका दर्शन अवश्य किया जा सकता है।

चूँकि यह चैतन्य-शक्ति या आत्मा ही शरीर रूपी जड़ यन्त्र को क्रियाशील बनाती है, इसलिए शरीर को चलता-फिरता क्रियाशील देखकर धीरे-धीरे मनुष्य इस चैतन्य-शक्ति या आत्मा को तो भूल जाता है और शरीर को ही सब कुछ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समझकर अपने को शरीर ही समझने लगता है। यही मनुष्य का सबसे गहरा मूलभूत अज्ञान है और इस मूलभूत अज्ञान से ही फिर सहस्त्रों प्रकार का अन्य अज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

जिस दिन मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप इस आत्मा या चैतन्य-शक्ति को पहचान लेता है और 'यही मैं हूँ' इस ज्ञान में स्थित हो जाता है– उसी दिन राम हो जाता है। अत: अपने वास्तविक स्वरूप–आत्म-स्वरूप को जान लेने वाला प्रत्येक मनुष्य राम है। इस भारत-भूमि पर अनेक मनुष्यों ने अपने वास्तविक स्वरूप–आत्म-स्वरूप को पहचाना है और जाना है, इसलिए यह भारत-भूमि राम-भूमि है। वास्तव में राम किसी एक मनुष्य का वाचक नहीं है। राम एक उच्चतर चेतना अर्थात् मैं चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– इस आत्म-ज्ञान का नाम है और मनुष्य के भीतर इस आत्म-ज्ञान का अवतरण ही वास्तव में राम का अवतरण है।

राम का वृक्ष के मूल में बैठना, कन्द-मूल-फल का भोजन करना, वल्कल वस्त्र धारण करना और धनुष-बाण से संयुक्त होना

राम-कथा में कहा गया है कि राम वृक्ष के मूल में बैठते हैं, कन्द-मूल-फल का भोजन करते हैं, वल्कल वस्त्र धारण करते हैं और धनुष-बाण से संयुक्त हैं। अध्यात्म की दृष्टि से प्रस्तुत कथनों के अभिप्राय को समझने के लिये हमें चारों ही बातों को पृथक्-पृथक् करके समझना अनिवार्य होगा।

१. राम का वृक्ष के मूल में बैठना–

वृक्ष शब्द संसार का वाचक भी है और मनुष्य के व्यक्तित्व का भी। अत: इस कथन के अभिप्राय को दो रूपों में ग्रहण किया जा सकता है।

(अ) मूल शब्द का सामान्य अर्थ है– जड़। अत: जैसे मूल (जड़) के आधार पर एक वृक्ष विस्तार को प्राप्त होता है, उसी प्रकार इस संसार रूपी वृक्ष का मूल है– परमात्मा, जिसके आधार पर यह संसार रूपी वृक्ष विस्तार को प्राप्त हुआ है। राम का वृक्ष के मूल में बैठना यह संकेतित करता है कि आत्म-स्वरूप या आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य इस संसार के मूल- परमात्मा के योग या चिन्तन में नित्य स्थित होता है।

(आ) मनुष्य का अपना व्यक्तित्व भी एक वृक्ष की भाँति है, जिसका मूल है–

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उसकी अपनी मान्यताएँ अथवा धारणाएँ (beliefs), जिन्हें उसने ही जन्म-जन्मान्तरों की यात्रा में अर्जित किया होता है। इस मूल के आधार पर ही मनुष्य के विचार (thoughts) बनते हैं, विचार भाव (feelings) को निर्मित करते हैं, भाव दृष्टिकोण (attitude) को बनाते हैं, दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य कर्म (action) करता है, कर्म की बार-बार आवृत्ति आदत (habit) को जन्म देती है, आदत दृष्टि (perception) को बनाती है और जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही मनुष्य का व्यक्तित्व (personality) बन जाता है। अत: व्यक्तित्व में परिवर्तन लाने के लिये यदि मूल अर्थात् अर्जित की हुई मान्यताओं अथवा धारणाओं में ही परिवर्तन लाया जाए, तब व्यक्तित्व में परिवर्तन लाना अत्यन्त सहज हो जाता है। आत्म-स्वरूप या आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य इस उपर्युक्त वर्णित ज्ञान में नित्य स्थित होता है और किसी भी समस्या के समाधान हेतु अपने ध्यान को सदा मूल अर्थात् अर्जित की हुई मान्यताओं अथवा धारणाओं पर ही केन्द्रित रखता है, जिसे कथा में राम के वृक्ष के मूल में बैठने के रूप में चित्रित किया गया है।

२. राम का कन्द-मूल-फल का भोजन करना–

कन्द–

भूमि के भीतर पैदा होने वाला फल कन्द कहलाता है। अत: भूमि को खोदकर ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। आध्यात्मिक स्तर पर मन और बुद्धि को भी भूमि कहा जाता है, जिसके भीतर ज्ञान रूपी कन्द विद्यमान हैं। राम अर्थात् आत्मस्थ (आत्म-स्वरूप में स्थित) मनुष्य मन-बुद्धि रूपी भूमि को खोद कर अर्थात् चिन्तन-मनन करके ज्ञान रूपी कन्दों को खाता है अर्थात् ज्ञान को ही अपने जीवन में धारण करता अथवा आचरण में उतारता है। कन्द शब्द कम् और द एकाक्षर के योग से बना है। कम् का अर्थ है– सुख और द का अर्थ है– देना। अत: जो सुख प्रदान करता है, वही कन्द है। ज्ञान मनुष्य को सुख देता है, अत: ज्ञान के लिये कन्द शब्द का प्रयोग सार्थक ही है।

मूल और फल–

मूल और फल शब्द कारण-कार्य नियम (cause and effect) को संकेतित करता प्रतीत होता है। कारण-कार्य नियम का अर्थ है– मनुष्य जो भी कर्म करेगा, वह कर्म एक अथवा एक से अधिक परिणामों को उत्पन्न करेगा। अत: कर्म को ही कारण या मूल और परिणाम को ही कार्य या फल कहा जाता है अर्थात् जैसा कर्म

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(मूल या कारण) होगा वैसा परिणाम (फल या कार्य) प्राप्त होगा। प्रचलित भाषा में इसे कर्म-फल-नियम भी कहा जाता है। अधिक परिष्कृत रूप में ऐसा भी कहा जा सकता है कि मनुष्य जिस प्रकार की विचार-तरंग का निर्माण करेगा, उसी प्रकार की विचार-तरंग लौटकर फल के रूप में उसी मनुष्य को अवश्य प्राप्त होगी। आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) इस कारण-कार्य नियम को भलीभाँति समझकर ही तदनुसार जीवन में व्यवहार करता है, जिसे कथा की प्रतीकात्मक शैली में राम द्वारा मूल और फल को खाने के रूप में चित्रित किया गया है।

३. राम का वल्कल वस्त्र धारण करना–

वल्कल शब्द वर (वल् का प्रच्छन्न स्वरूप) और कर (कल का प्रच्छन्न स्वरूप) नामक दो शब्दों के योग से बना है। वर का अर्थ है– श्रेष्ठ तथा कर का अर्थ है– करना या कर्म। अत: वल्कल का अर्थ हुआ– श्रेष्ठ करना या श्रेष्ठ कर्म। राम द्वारा वल्कल वस्त्र को धारण करने का अर्थ है– आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य द्वारा श्रेष्ठ कर्म को उसी प्रकार धारण करना जैसे कोई सूत से बने हुए वस्त्रों को धारण करे।

कथा में कहा गया है कि वन में गमन के समय कैकेयी ने वल्कल वस्त्र धारण करने के लिये जब राम को आदेश दिया तब राम ने तत्काल उन वल्कल वस्त्रों को धारण कर लिया।

प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेतित किया गया है कि अपने ही अवचेतन मन (चित्त) रूपी वन में बैठे हुए राक्षसी संस्कारों का विनाश केवल तभी किया जा सकता है जब आत्मस्थ मनुष्य (राम) अपनी ही प्रगाढ़ इच्छा-शक्ति (कैकेयी) से प्रेरित होकर श्रेष्ठ कर्म को अपने जीवन में धारण कर लेता है। श्रेष्ठ कर्म का सबसे पहला स्वरूप मानसिक होता है और वाचिक तथा कायिक कर्म उस मानसिक कर्म का ही अनुसरण करते हैं। अत: स्वस्वरूप, आत्म-स्वरूप (आत्म-ज्ञान) में स्थित हुआ मनुष्य (राम) श्रेष्ठ कर्म को धारण करके अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए अपने ही राक्षसी संस्कारों के विनाश हेतु प्रवृत्त हो जाता है।

४. राम का धनुष-बाण से संयुक्त होना–

धनुष नामक शस्त्र एक ऐसा आधार होता है, जिसके ऊपर बाण को रखकर लक्ष्य का वेधन किया जाता है। अध्यात्म के स्तर पर मनुष्य का मन भी एक धनुष की तरह है, जिसको आधार बनाकर और उस आधार के ऊपर संकल्प रूपी बाण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को रखकर मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) सदैव अपने मन रूपी धनुष के ऊपर संकल्प रूपी बाण को रखता है, अतः आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) के इस संकल्पवान् स्वरूप को इंगित करने के लिये ही कथा में राम को एक धनुष-बाण धारी के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण में वर्णित रामकथा में प्रवेश से पूर्व

रामायण में वर्णित रामकथा में प्रवेश करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि यह कथा न तो काल्पनिक है और न ऐतिहासिक। यह एक अध्यात्म कथा है अर्थात् चेतना के स्तर पर घटित हुई एक अद्भुत कथा है। चेतना के स्तर पर घटित होने वाले घटनाक्रम का ही जब मानवीकरण (personification) कर दिया जाता है, तब वह आन्तरिक घटनाक्रम एक कथा के रूप में प्रतीत होने लगता है। यही कारण है कि रामकथा में वर्णित सभी पात्र कहीं बाहर विद्यमान नहीं हैं अपितु वे मनुष्य के अपने ही भीतर विद्यमान हैं। अत: आध्यात्मिक साधना की यात्रा में वे पात्र आत्मा का, मन का, बुद्धि का, गुण का, विकार का, विचार का, भाव का, दृष्टि का, स्थिति का, परिस्थिति का, क्रिया का, अक्रिया का, ज्ञान का अथवा अज्ञान का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिये-

राम रूपी आत्म-ज्ञान भी मनुष्य के भीतर विद्यमान होता है और रावण रूपी देहाभिमान भी।

वानर रूपी ज्ञान-शक्तियाँ भी मनुष्य के भीतर विद्यमान होती हैं और राक्षस रूपी विकार-शक्तियाँ भी।

हनुमान रूपी प्रज्ञा भी मनुष्य के भीतर विद्यमान होती है और कुम्भकर्ण रूपी मोह भी।

सुग्रीव रूपी ज्ञान भी मनुष्य के भीतर विद्यमान होता है और बालि रूपी अज्ञान भी।

ऋषि रूपी श्रेष्ठ सकारात्मक मन भी मनुष्य के भीतर विद्यमान होता है और कबन्ध रूपी नकारात्मक मन भी।

सार रूप में ऐसा कह सकते हैं कि रामकथा में एक पक्ष दैवीय है, तो दूसरा आसुरी। मनुष्य के अपने ही भीतर एक देव-असुर संग्राम हो रहा है, जिसमें आसुरी पक्ष के ऊपर दैवीय पक्ष की विजय को स्थापित करना है।

आसुरी पक्ष बहुत पुराना है और मनुष्य के भीतर उसकी जड़ें भी बहुत गहरी हो गई हैं। दैवीय पक्ष अभी नया है परन्तु इसी नए का सहारा लेकर पुराने और गहरे आसुरी पक्ष को उसकी जड़ों के साथ विनष्ट कर देना है।

रामकथा में वर्णित रावण नामक पात्र तथा उसकी सम्पूर्ण सहयोगी शक्तियाँ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आसुरी पक्ष का तथा इसके विपरीत राम नामक पात्र तथा उसकी सम्पूर्ण सहयोगी शक्तियाँ दैवीय पक्ष का प्रतिनिधित्व करती हैं। राम बनकर अर्थात् स्वयं की सही पहचान (आत्म-ज्ञान) में स्थित होकर सभी सहयोगी शक्तियों (वानरों) की सहायता से अपने ही भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए रावण अर्थात् देहाभिमान रूप विकार को उसके अन्य विकार रूप सहयोगियों (राक्षसों) के साथ विनष्ट कर देना है। तभी मनुष्य पूर्ण स्वराज्य-अधिकारी बनता है।

अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि सुखपूर्ण जीवन के लिये अपने ही भीतर निर्मित हो चुके पुराने एवं आसुरी घर को तोड़ना है, परन्तु तोड़ने से पहले अपने ही भीतर एक नए एवं दैवीय घर का निर्माण करना आवश्यक है क्योंकि नए एवं दैवीय घर में रहकर ही आसुरी एवं पुराने घर को तोड़ना सहज होता है।

रामकथा का स्पष्ट संकेत है कि जन्मों-जन्मों की यात्रा में मनुष्य ने ही अपने भीतर आसुरी घर (अर्थात् देहाभिमान तथा देहाभिमान से उत्पन्न हुए विकारों का घर) का निर्माण किया है और अब नए एवं दैवीय घर (अर्थात् स्वयं की सही पहचान– आत्म-ज्ञान रूप घर) का निर्माण भी उसे ही करना है। आत्म-ज्ञान रूप यह नया एवं दैवीय घर मनुष्य को किस-किस प्रकार से लाभान्वित करता है– इसका सम्पूर्ण चित्रण ही रामायण में एक-एक कथा के रूप में प्रस्तुत है।

इसी तथ्य को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि मनुष्य के भीतर सत् (राम/आत्म-ज्ञान) और असत् (रावण/देहाभिमान) दोनों ही पक्ष विद्यमान हैं। असत् के ऊपर सत् की विजय भारतीय संस्कृति का मूलमन्त्र भी है। असत् भले ही प्रबलतम हो, परन्तु सत् में स्थित होकर एक न एक दिन वह असत् अवश्य ही विनष्ट हो जाता है। असत् का अर्थ है– देहाभिमान (ego) अर्थात् अपने आपको शरीर समझकर अज्ञानपूर्ण जीवन जीना, जिसका प्रतिनिधि रावण है। इसके विपरीत सत् का अर्थ है– आत्म-ज्ञान (knowledge of Real Self) अर्थात् स्वयं को आत्मा समझकर ज्ञानपूर्ण जीवन जीना, जिसका प्रतिनिधि राम है। रामकथा में रावण के ऊपर राम की विजय के रूप में असत् के ऊपर सत् की विजय को ही प्रदर्शित किया गया है।

अनेकानेक जन्मों की लम्बी यात्रा में एक शरीर को छोड़ने, दूसरे शरीर को धारण करने तथा आत्मा के दिखाई न देने के कारण मनुष्य के मन के भीतर देहाभिमान (अर्थात् स्वयं को शरीर समझना और उसमें आसक्त होना) रूपी जो विकार पुराना होकर संस्कार रूप में विद्यमान हो गया है, उस संस्कार को विनष्ट

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करने का एकमात्र उपाय चेतना का रूपान्तरण ही है अर्थात् मनुष्य को प्रयासपूर्वक स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होना है। इसीलिये रामकथा में रावण रूपी देहाभिमान को समाप्त करने के लिये राम रूपी आत्म-ज्ञान का अवतरण प्राथमिक अर्थात् पहली आवश्यकता है। एक बार राम बन जाने पर अर्थात् स्वयं की सही पहचान (आत्म-ज्ञान) में स्थित हो जाने पर अपने ही भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए रावण (देहाभिमान रूपी विकार) के विनाश हेतु सम्पूर्ण यात्रा किस प्रकार से स्वाभाविक रूप से सम्पन्न होती है, इसका सम्पूर्ण चित्रण रामायण में विभिन्न कथाओं के माध्यम से अद्भुत ढंग से किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामकथा की शैली

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि यहाँ जीवन के लिये उपयोगी और आवश्यक प्रत्येक गुह्य संदेश को कथा के माध्यम से व्यक्त किया गया है। संदेश कितना भी दुरूह हो अथवा गहन हो– कथा का चुटकीलापन उसे इस रूप में प्रस्तुत कर देता है कि गहन से गहन और दुरूह से दुरूह संदेश भी कथा के महासागर में गहरी डुबकी लगाने वाले मनुष्य के लिये सरलता से ग्राह्य हो जाता है। कथा की सार्थकता भी इसी में है कि वह अनेक प्रकार के रसों का सृजन करती हुई मानव मन को इतना मन्त्रमुग्ध कर दे कि मन उसमें रम जाए, कथा से अन्यत्र कहीं भी आकर्षित न होकर लक्ष्य तक पहुँचे और उसके सूक्ष्मतम संदेश को सरलता से ग्रहण कर ले। समग्र पौराणिक साहित्य इसी कथा शैली में रचा गया है और रामकथा भी इसी शैली में निबद्ध है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामकथा का वर्ण्य-विषय

रामकथा अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठे हुए तथा संस्कार रूप (बीज रूप) धारण कर चुके अपने ही विकारों के विनाश की एक अद्भुत प्रतीक कथा है। अनेकानेक जन्मों की लम्बी यात्रा में अपने ही वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने तथा अपने आपको शरीर समझ लेने के कारण मनुष्य जिन काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, ईर्ष्या, स्पर्धा, निन्दा, स्तुति, तुलना तथा अभिमान आदि अनेकानेक विकारों से युक्त हो जाता है, वे सभी विकार संस्कार (बीज) रूप होकर मन की गहराई (अवचेतन मन या चित्त) में इकठ्ठे हो जाते हैं और तब तक वहाँ विद्यमान रहते हैं, जब तक मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानकर अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होकर उनका विनाश नहीं कर देता।

अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेने अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हो जाने पर मनुष्य अपने विचारों का निर्माता और नियन्ता बन जाता है, अत: अब वह नए विकारों का निर्माण तो नहीं करता परन्तु अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में संचित हुए ढेरों विकार जब सतत रूप से प्रस्फुटित होकर चेतन मन के तल पर निकलते और आक्रमण करते हैं, तब उनको विनष्ट करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

अत: अवचेतन मन (चित्त) में संचित हुए विकार चेतन मन के तल पर प्रकट होकर किस प्रकार से विघ्न उपस्थित करते हैं और आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) ज्ञान के सहारे-सहारे किस प्रकार उन समस्त विकारों का विनाश करता है– यही इस रामकथा का वर्ण्य विषय है। अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में संचित हुए इन विकारों को विनष्ट करके ही आन्तरिक स्वराज्य को स्थापित किया जा सकता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कैकेयी-प्रेरित राम का वन की ओर गमन अर्थात् अपनी ही प्रगाढ़ इच्छा-शक्ति से प्रेरित हुए आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य का अपने ही अवचेतन मन (चित्त) की ओर गमन

रामकथा में वर्णित राम नामक पात्र किसी व्यक्ति विशेष का वाचक न होकर एक विशेष प्रकार की चेतना अर्थात् आत्म-ज्ञान का वाचक है, अत: रामकथा उस प्रत्येक व्यक्ति की कथा है, जिसके शुद्ध-स्थिर मन के भीतर यह विशेष ज्ञान पैदा हो गया है कि वह एक शरीर नहीं है अपितु शरीर को चलाने वाला, अजर, अमर, अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा है। शरीर को ही अपनी वास्तविक और सही पहचान मानने वाले व्यक्ति के भीतर पैदा हुआ यह विशेष नया ज्ञान कि वह एक चैतन्य-शक्ति आत्मा है– एक क्रान्तिकारी अद्भुत ज्ञान है। इसीलिये इस नए ज्ञान के अवतरण को राम का अवतरण कहकर विशेष सम्मान प्रदान किया गया है। अब यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक है कि इस नए ज्ञान (आत्म-ज्ञान) के अवतरण के साथ ही पुराने ज्ञान (यह ज्ञान कि मैं एक शरीर हूँ) का एकदम विनाश नहीं हो जाता। यह नया आत्म-ज्ञान (राम) अन्य अनेक प्रकार की ज्ञान रूपी शक्तियों (वानरों) का सहारा लेकर अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार (आदत) रूप धारण कर चुके पुराने देह-ज्ञान और उससे उत्पन्न हुए देहाभिमान को (जिसे कथा में रावण कहा गया है) तथा देहाभिमान से सम्बन्ध रखने वाले अनेकानेक विकारों (राक्षसों) को धीरे-धीरे ही विनष्ट कर पाता है और वह भी तभी, जब मनुष्य की इच्छा-शक्ति बहुत प्रगाढ़ हो। कथा में कैकेयी की हठधर्मिता के रूप में इस इच्छा-शक्ति की प्रगाढ़ता को ही दर्शाया गया है। मनुष्य की इच्छा-शक्ति यदि बहुत प्रगाढ़ हो, तब ही यह नूतन अवतरित हुआ ज्ञान (आत्म-ज्ञान) अर्थात् राम अपने ही अवचेतन मन या चित्त (दण्डकवन) में बैठे हुए विकार रूप राक्षसों को देख पाने और उनका वध करने के लिये प्रवृत्त हो पाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लड़ना है अपनी ही बुराइयों से। राम और रावण का युद्ध कोई बाहर लड़ा जाने वाला युद्ध नहीं है। यह युद्ध आन्तरिक है। स्वयं को स्वयं के ही देहाभिमान से तथा देहाभिमान से उत्पन्न हुई बुराइयों से लड़ना है।

रामकथा को स्थूल दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ अयोध्या में रहने वाले किसी राम नामक व्यक्ति की लड़ाई लंका में रहने वाले किसी रावण नामक व्यक्ति से है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि राम एक विशिष्ट चेतना का नाम है और वह प्रत्येक व्यक्ति राम है, जो अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप (मैं शरीर नहीं हूँ अपितु शरीर को चलाने वाला, अजर, अमर, अविनाशी, चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ) को पहचानकर, अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता होकर अपने शरीर का स्वामी (master) बन गया है। इसी प्रकार लंकापुरी में रहने वाला रावण भी कोई बाहरी व्यक्ति नहीं है। वह भी अपने ही भीतर विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान (अपने आपको शरीर समझकर अपनी भूमिकाओं (roles), पदों (designations), छवियों (images) तथा विचारों (ideas) आदि से गहरा जुड़ाव बना लेना) है, जो जन्मों-जन्मों की लम्बी यात्रा में अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में गहरी जड़ें जमाकर विद्यमान हो गया है और संस्कार रूप धारण करके प्रबल हो चुका है। एक सामान्य मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचाने बिना, अपने विचारों का निर्माता और नियन्ता बने बिना, अपने शरीर का स्वामी हुए बिना इस संस्कार रूप धारण कर चुके प्रबल देहाभिमान को (रावण को) तथा देहाभिमान से उत्पन्न हुई अनेकानेक बुराइयों (राक्षसों) को विनष्ट करने में समर्थ नहीं हो सकता। अत: मनुष्य को सबसे पहले आत्म-स्वरूप में स्थित होना है अर्थात् राम बनना है और फिर राम होकर अपने ही देहाभिमान रूपी रावण से लड़ना है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामकथा अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए अपने ही विकारों के विनाश की एक अन्तर्यात्रा है

मनुष्य एक शरीर को छोड़ता है तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करता है। शरीर छोड़ने और ग्रहण करने की इस अनवरत यात्रा में वह अपने अवचेतन मन (चित्त) के भीतर नाना प्रकार के संस्कारों (कर्म की छापों) को इकट्ठा कर लेता है। ये संस्कार यद्यपि गुण रूप और विकार रूप– दोनों ही प्रकार के होते हैं परन्तु अवचेतन मन (चित्त) में इकट्ठे हुए विकार रूप संस्कार चेतन मन के तल पर उपस्थित होकर मनुष्य के जीवन को बहुत हानि पहुँचाते हैं, अत: इन विकारों का विनाश करना सुखपूर्ण जीवन के लिये नितान्त आवश्यक होता है। रामकथा अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए विकारों के विनाश की एक अद्भुत अन्तर्यात्रा है। इस अन्तर्यात्रा का प्रारम्भ अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचान लेने अर्थात् आत्म-ज्ञान से होता है, जिसे रामकथा में राम के अवतरण के रूप में चित्रित किया गया है। आत्म-ज्ञान का अर्थ है– स्वयं को शरीर न समझकर शरीर का स्वामी चैतन्य-शक्ति आत्मा समझना।

1. आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचान लेने पर मनुष्य सबसे पहले अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता बनता है क्योंकि अब उसे यह ज्ञात हो जाता है कि मैं आत्मा ही मन नाम धारण करके अपने प्रत्येक विचार की रचना कर रहा हूँ। अत: मैं अच्छे अथवा बुरे कैसे विचार की रचना करूँ– यह पूर्णतया मेरे अपने अधिकार में है। इसी तथ्य को (अर्थात् अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता हो जाने को) रामकथा में लक्ष्मण नामक पात्र के अवतरण के रूप में चित्रित किया गया है। आत्म-स्वरूप को पहचान लेना और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बन जाना (राम के अवतरण के साथ-साथ लक्ष्मण का भी अवतरण होना) मनुष्य-चेतना की अत्यन्त उत्कृष्ट स्थिति है। अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही पहला पड़ाव है।

2. आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचान लेने और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बन जाने पर मनुष्य अपने मिथ्या अहंकार को विनष्ट करके पवित्र-सोच (सीता) से सहज रूप से संयुक्त हो जाता है, जिसे कथा में राम द्वारा शिव-धनुष को तोड़ने तथा सीता से विवाह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करने के रूप में चित्रित किया गया है। अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही दूसरा पड़ाव है।

3. आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचान लेने और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बन जाने पर मनुष्य का अपना चेतन मन मित्रस्वरूप होकर न केवल आचरण-परक हो जाता है अपितु एकत्व शक्ति से युक्त भी हो जाता है। निषादराज गुह, भरद्वाज मुनि तथा अत्रि-अनसूया के आश्रमों में राम-लक्ष्मण के गमन तथा मिलन के रूप में इसी तथ्य को दर्शाया गया है। चित्त-गत विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही तीसरा पड़ाव है।

4. आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचान लेने और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बन जाने पर अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए आत्मपरक गुण सहायक होकर आत्म-ज्ञान (राम) को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। अरण्य में रहने वाले शरभंग, सुतीक्ष्ण तथा अगस्त्य मुनियों के आश्रमों में राम के गमन तथा मिलन के रूप में वास्तव में अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए आत्मपरक गुणों की सहायता को ही प्रकारान्तर से दर्शाया गया है। चित्त-गत विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही चौथा पड़ाव है।

5. आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचान लेने और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बन जाने पर जैसे संस्कार रूप में विद्यमान हुए आत्मपरक गुण प्रकट होकर आत्म-ज्ञान को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं, वैसे ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहपरक विकार (आसक्ति, देहाभिमान आदि) भी प्रकट होकर न केवल आत्म-ज्ञान (राम) को कमजोर करने का यथासम्भव प्रयास करते हैं, अपितु देहाभिमान (रावण) जैसा प्रबल विकार तो छलपूर्वक आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की सबसे बड़ी शक्ति- पवित्र-सोच (सीता) को ही चुरा लेता है। शूर्पणखा के आगमन, खरदूषण के साथ युद्ध तथा रावण द्वारा छलपूर्वक सीता के हरण के रूप में चित्त-गत विकारों की प्रबलता को ही चित्रित किया गया है। चित्त-गत विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही पाँचवा पड़ाव है।

6. आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-स्वरूप) को पहचान लेने और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बन जाने पर भी अपने ही अवचेतन मन (चित्त) से निकला हुआ देहाभिमान रूप प्रबल विकार (रावण) जब

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पवित्र-सोच (सीता) को चुरा लेता है, तब आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) का विचलित होना और नकारात्मकता की ओर खिंचना सरल हो जाता है। परन्तु धैर्यपूर्वक और दृढ़तापूर्वक अकस्मात् उपस्थित हुई उस नकारात्मकता को विनष्ट करके और सकारात्मक दृष्टिकोण को अपनाकर जब मनुष्य ज्ञान की ओर बढ़ता है, तब उसका अपना अन्तर्निहित प्रसुप्त ज्ञान ही जाग्रत हो जाता है, जिसे रामकथा में राम के सुग्रीव से मिलन और मैत्री के रूप में प्रदर्शित किया गया है। अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही छठवा पड़ाव है।

7. अन्तर्निहित प्रसुप्त ज्ञान (सुग्रीव) की जाग्रति बहुत महत्त्वपूर्ण है परन्तु यही जाग्रत ज्ञान जब तक आचरण या व्यवहार में नहीं लाया जाता, तब तक वांछित अथवा अभिलषित परिणाम नहीं देता। अत: ज्ञान की एक-एक बूंद को यथासमय आचरण में उतारना नितान्त आवश्यक होता है। जो ज्ञान-शक्तियाँ (वानर) ज्ञान को सतत आचरण में उतारती हैं, उन्हें ही रामकथा में सुग्रीव की वानरसेना के रूप में चित्रित किया गया है। अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही सातवां पड़ाव है।

8. इस आचरणात्मक ज्ञान (आचरण में उतरे हुए ज्ञान) से ही मनुष्य की बुद्धि प्रज्ञा में रूपान्तरित होती है, जिसे रामकथा में महाबली हनुमान के रूप में चित्रित किया गया है। आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की यही प्रज्ञा अब एक उत्तम सेवक की भाँति विराट मन रूप समुद्र का सहज रूप से लंघन करके चित्त या अवचेतन मन में संस्कार रूप में विद्यमान हुए उन समस्त विकारों का पता लगाती है, जो मनुष्य की पवित्र-सोच (सीता) का हरण करते और सुख-शान्ति को भंग करते हैं। आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य का यही प्रज्ञा-बल (हनुमान) उसका सबसे बड़ा हितसाधक है। अत: अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही आठवां महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

9. जीवन-क्षेत्र में व्यवहार करते हुए जो विभिन्न प्रकार की छोटी-बड़ी परिस्थितियां उपस्थित होती हैं, वे ही परिस्थितियां अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए किसी न किसी प्रकार के विकार को सतत रूप से उद्बुद्ध करती हैं। परन्तु प्रज्ञावान् मनुष्य (राम) न तो उस उद्बुद्ध (उठे हुए) हुए विकार को प्रतिबिम्बित (reflect) करता है और न अपने भीतर समाकर ही रखता है अपितु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्वरित रूप से उस उठे हुए विकार को कभी तो विनष्ट करके अथवा कभी रूपान्तरित करके सुखपूर्ण, आनन्दपूर्ण बना रहता है। अवचेतन मन से निकलकर चेतन मन पर प्रकट हुए विभिन्न विकारों के इस विनाश अथवा रूपान्तरण को ही रामकथा में लंकापुरी में रहने वाले राक्षसों के विनाश अथवा उद्धार के रूप में चित्रित किया गया है। अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कारों के रूप में विद्यमान हुए विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का यही नवां पड़ाव है।

10. अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग-द्वेष, तुलना, निन्दा प्रभृति नाना प्रकार के विकारों का शनैः-शनैः विनाश और रूपान्तरण अन्ततः मनुष्य के देहाभिमान (रावण) को विनष्ट कर देता है। देहाभिमान का अर्थ है– अपने आपको शरीर मान लेने के कारण शरीर से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं (roles), पदों (designations) तथा छवियों (images) को ही अपना सत्य स्वरूप समझकर उनमें आसक्त हो जाना। अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार के रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) का विनाश विकारों के विनाश की अन्तर्यात्रा का अन्तिम दसवां पड़ाव है।

11. अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए इस देहाभिमान (रावण) के विनाश से अब आत्मस्थ मनुष्य (राम) को अपनी पवित्र-सोच (सीता) पुनः प्राप्त हो जाती है, जिसे रामकथा में रावण के विनाश से सीता की पुनः प्राप्ति के रूप में चित्रित किया गया है। यह उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है क्योंकि सोच (thought) की पवित्रता से भाव (feeling), दृष्टिकोण (attitude), कर्म (action) तथा दृष्टि (perception) की पवित्रता के रूप में अब मनुष्य का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही पवित्र अर्थात् सत्वयुक्त हो जाता है, जिसे रामकथा में लंकापुरी के राज्य पर विभीषण के अभिषेक के रूप में चित्रित किया गया है। ऐसे सत्व-युक्त व्यक्तित्व का धनी मनुष्य (राम) ही स्वराज्य-अधिकारी कहलाता है, जिसे रामकथा में राम के राज्याभिषेक के रूप में दर्शाया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण में वर्णित राम-कथा के रहस्यों का एक संक्षिप्त स्वरूप

रामायण महाकाव्य में वर्णित रामकथा न तो काल्पनिक है और न ऐतिहासिक। यह एक अध्यात्म कथा है, जिसमें उच्चतर जीवन के रहस्य अद्भुत रूप से छुपे हुए हैं। कथा का प्रारम्भ स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान (राम-अवतरण) से होता है और अन्त अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) रूप सुदृढ़ विकार का विनाश करके स्वराज्य-अधिकारी बनने अर्थात् राम के राज्याभिषेक से। प्रारम्भ और अन्त के इन दो बिन्दुओं के बीच में जो विभिन्न कथाएँ विस्तारपूर्वक फैली हुई हैं, वे सभी कथाएँ आत्म-ज्ञान (राम) के महत्त्व को ही भिन्न-भिन्न रूपों में दर्शाती हैं। अत: आत्म-ज्ञान (राम) के महत्त्व को दर्शाने वाली उन्हीं कथाओं के भीतर छुपे हुए अनेकानेक रहस्यों का एक सम्पूर्ण संग्रह (दस्तावेज) है– यह पुस्तक। यहाँ उन सभी कथा-रहस्यों का एक अत्यन्त संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत है–

1. मनुष्य के शुद्ध, स्थिर मन में जब यह जानने की प्रबल इच्छा जाग्रत होती है कि आखिर मैं हूँ कौन? तब एक न एक दिन उसके भीतर यह समझ या ज्ञान (आत्म-ज्ञान) अवश्य जाग्रत हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूँ, अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी, अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ। दशरथ के घर में (शुद्ध, स्थिर मन में) राम (स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान) का अवतरण कहकर इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख-राम के अवतरण के माध्यम से आत्म-ज्ञान के अवतरण का चित्रण तथा राम रूपी आत्म-ज्ञान के अवतरण की प्रक्रिया का चित्रण, पृष्ठ-13)

2. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान होते ही इस विशेष ज्ञान से भी मनुष्य सहज रूप से संयुक्त हो जाता है कि जब मैं आत्मा ही हूँ, तब सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप उस बहुमूल्य गुण-सम्पत्ति से भी सदा भरपूर हूँ, जो मुझ आत्मा का मूल स्वभाव ही है, अत: जो मेरे अपने ही भीतर विद्यमान है। अब आत्म-ज्ञान में स्थित होकर मुझे अपनी इस गुण-सम्पत्ति का जीवन में उपयोग तथा फैलाव करना है क्योंकि उपयोग तथा फैलाव से ही इसका अनुभव हो पाता है। राम के अवतरण के साथ-साथ भरत के अवतरण के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

3. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थिति से मनुष्य को तत्काल

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह भी ज्ञात हो जाता है कि मैं आत्मा ही तो मन रूप होकर अपने समस्त विचारों का निर्माण कर रहा हूँ, अत: अपने समस्त विचारों का निर्माता और नियन्ता भी मैं ही हूँ। राम के अवतरण के साथ-साथ लक्ष्मण के अवतरण के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

4. यही नहीं, स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थिति से जब मनुष्य को यह समझ में आता है कि मैं ही अपने समस्त विचारों का निर्माता और नियन्ता हूँ, तब यह भी समझ में आता है कि शत्रु-स्वरूप बने हुए व्यर्थ विचारों का विनाशक भी मैं ही हूँ। राम के अवतरण के साथ-साथ शत्रुघ्न के अवतरण के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

5. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हो जाना मनुष्य के जीवन की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस आत्म-ज्ञान के अवतरण अर्थात् राम के अवतरण से ही रामकथा का प्रारम्भ होता है और इस आत्म-ज्ञान (राम) के महत्त्व को दर्शाने के लिये ही रामायण में अनेक प्रकार की अवान्तर कथाओं का समावेश किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख- १. विश्वामित्र-यज्ञ-कथा के माध्यम से विश्व का मित्र अर्थात् सबके प्रति प्रेमपूर्ण होने के लिये आत्म-ज्ञान की अनिवार्यता का चित्रण, पृष्ठ-39, २. गंगा-अवतरण कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान की आवश्यकता एवं महत्त्व का चित्रण, पृष्ठ-65, ३. सगर कथा के माध्यम से शुद्ध मन की प्राप्ति हेतु आचरण-परक ज्ञान की अनिवार्यता का चित्रण, पृष्ठ-53 तथा ४. शबरी-उद्धार के माध्यम से आत्म-ज्ञान होने पर मुमुक्षा-वृत्ति के उद्धार का चित्रण, पृष्ठ-259)

6. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हो जाना बहुत बड़ी उपलब्धि है क्योंकि अब मनुष्य आत्मारूप स्वयं को अलग और शरीर को अलग करके अपने शरीर का स्वामी (राजा) बन पाता है और अपने शरीर का एक यन्त्र की भाँति सम्यक् उपयोग कर पाता है। किसी भी मनुष्य के जीवन की दयनीय स्थिति वही होती है, जब वह स्वयं राजा होते हुए भी अपनी इन्द्रियों को तथा चेतन मन की शक्तियों के रूप में विद्यमान अपनी प्रजा को अपने नियन्त्रण में नहीं रख पाता प्रत्युत प्रजा ही राजा को मनमाने ढंग से चलाने लगती है। स्वयं को पहचान लेने वाला अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बनकर सबसे पहले अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है तथा चेतन मन पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लेता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

7. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) चेतन मन के तल पर विद्यमान अभिमान को सहज रूप से तोड़ देता है, अत: पवित्र-सोच (सीता) से स्वाभाविक रूप से संयुक्त हो जाता है। शिव-धनुष को तोड़कर सीता के साथ राम के विवाह के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख-राम द्वारा शिव-धनुष-भंग के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा चेतन मन के तल पर विद्यमान अभिमान के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-83)

8. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होने पर ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर बीज रूप में पड़ा हुआ आत्माभिमान (आत्म-ज्ञान) का संस्कार ऊपर उठता है और चेतन मन के तल पर नूतन उदित हुए आत्म-ज्ञान (राम) को सुदृढ़ता प्रदान करता है। परशुराम द्वारा राम को विष्णु-धनुष प्रदान करने के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख- परशुराम कथा के माध्यम से व्यक्तित्व में निखार लाने वाली और आत्म-ज्ञान को सुदृढ़ बनाने वाली विशिष्ट चेतना-शक्ति का वर्णन, पृष्ठ-97)

9. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) ही अपने अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठे हुए उस विकार-संग्रह को देखने में पूर्ण समर्थ होता है, जिसका निर्माण कभी न कभी उसी ने अपने पूर्वजन्मों की यात्रा में किया होता है। चूँकि अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर इकठ्ठा हुआ यह विकार-संग्रह बार-बार प्रस्फुटित होकर और चेतन मन के तल पर उपस्थित होकर मनुष्य की दिव्यता को विनष्ट करता अथवा हानि पहुँचाता है, अत: आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) स्वयं की ही प्रगाढ़ इच्छा-शक्ति (कैकेयी) से प्रेरित होकर अपने ही अवचेतन मन (चित्त) पर ध्यान केन्द्रित करने के लिये पूर्ण योग्य हो जाता है। रामकथा में कैकेयी से प्रेरित हुए राम के वन में गमन के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को चाहने वाली शुद्ध मन की इच्छा-शक्ति का कैकेयी के रूप में चित्रण, पृष्ठ-109)

10. मनुष्य का चेतन मन दो तरह से व्यवहार कर सकता है– मित्रवत् भी और शत्रुवत् भी। जब वह मनमाना आचरण करता है और मनुष्य के नियन्त्रण में नहीं रहता, तब उसका व्यवहार शत्रुवत् होता है। इसके विपरीत जब वह नियन्त्रित रहकर एक सेवक की भाँति काम करता है, तब वही मन मित्र-स्वरूप हो जाता है। स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

(राम) का अपना चेतन मन मित्र-स्वरूप होता है। इस मित्र-स्वरूप मन को ही रामकथा में निषादराज गुह (मित्र-स्वरूप मन) के साथ राम के मिलन के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– निषादराज गुह की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के चेतन मन के मित्र-स्वरूप होने का चित्रण, पृष्ठ-121)

11. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) का अपना चेतन मन केवल शुष्क अथवा बौद्धिक (सैद्धान्तिक) ज्ञान तक सीमित नहीं रहता। वह मन पूर्णत: आचरण-परक हो जाता है। अपने ही इस आचरण-परक मन से मिलन को कथा में राम का भरद्वाज मुनि से मिलन कहकर चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– भरद्वाज मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आचरण-परक मन का चित्रण, पृष्ठ-133)

12. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) का अपना चेतन मन ज्ञान, कर्म और भक्ति के एकत्व में स्थित होकर एकीकरण की शक्ति से युक्त हो जाता है। अपने ही इस एकीकृत मन से मिलन को कथा में राम का अत्रि-अनसूया के आश्रम में गमन और मिलन कहकर चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– अत्रि-अनसूया कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के एकीकृत मन की एकीकरण शक्ति का चित्रण, पृष्ठ-149)

13. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) ही मन में विद्यमान खालीपन की अनुभूति को विनष्ट करता है अर्थात् जब तक मनुष्य को स्वयं की सही पहचान नहीं होती और वह स्वयं को शरीर-मात्र ही मानता है, तब तक वह इस ज्ञान के प्रति पूरी तरह अनभिज्ञ रहता है कि उसी के अपने विचार उसे सुख या दु:ख का अनुभव कराते हैं। यही अनभिज्ञता अथवा अज्ञानता उसे सुख-प्राप्ति हेतु बाह्य विषयों की ओर उन्मुख करती है। परन्तु बाह्य विषयों के भी क्षणिक होने के कारण अन्तत: उसे खालीपन का अनुभव होने लगता है। खालीपन का यही अनुभव धीरे-धीरे एक संस्कार (आदत) बनकर अवचेतन मन (चित्त) में चला जाता है और तब तक वहाँ विद्यमान रहता है, जब तक मनुष्य स्वयं को ही सही रूप में पहचानकर इस ज्ञान में स्थित नहीं हो जाता कि वही अपने प्रत्येक विचार का निर्माता है, अत: वही अब विचारों को बदलकर, प्रयत्नपूर्वक उपयुक्त एवं श्रेष्ठ विचारों को रचकर सुख का अनुभव कर सकता है। खालीपन की अनुभूति का विनाश करना उसके अपने हाथ में है। राम-लक्ष्मण द्वारा दण्डकारण्य में

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विद्यमान विराध नामक राक्षस के विनाश के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– विराध कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा अपूर्णता (रिक्तता, खालीपन) की अनुभूति के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-159)

14. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) एक ऐसे निष्कामी मन से युक्त होता है, जो किसी स्वर्गीय भोग के प्रति भी आकर्षित नहीं होता। यह मन एकमात्र आत्म-ज्ञान (राम) हेतु प्रतीक्षारत होता है और आत्म-ज्ञान से तुरन्त एक नूतन दृष्टि– आत्म-दृष्टि में रूपान्तरित हो जाता है। राम के आगमन पर शरभंग मुनि के स्वर्ग-लोक में न जाने और पुरानी देह को त्यागकर नूतन देह को प्राप्त करने के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– शरभंग मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के निष्कामी मन के महत्त्व का चित्रण, पृष्ठ-171)

15. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) एक ऐसे आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन से युक्त होता है, जो आत्म-ज्ञान को (राम को) सुदृढ़ता प्रदान करने में अत्यन्त सहयोगी होता है। दस वर्ष तक (अर्थात् दसों प्राणों– पाँच स्थूल प्राण– प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान तथा पाँच सूक्ष्म प्राण– नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनंजय में आत्म-ज्ञान के आत्मसात् हो जाने में) राम के सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में निवास के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– सुतीक्ष्ण मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन के महत्त्व का चित्रण, पृष्ठ-179)

16. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) सबके प्रति आत्म-भाव से युक्त होता है, जिसे कथा में राम के अगस्त्य मुनि से मिलन के रूप में चित्रित किया गया है। सबके प्रति यह आत्म-भाव ही देह-भाव और अहं-भाव के सहज विनाश की अद्भुत क्षमता से युक्त होता है, जिसे कथा में अगस्त्य मुनि द्वारा इल्वल और वातापि नामक राक्षसों के विनाश तथा विन्ध्य पर्वत को झुकाने की दो अवान्तर कथाओं के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– अगस्त्य मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आत्म-भाव-युक्त मन के महत्त्व का चित्रण, पृष्ठ-189)

17. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने ही मन में विद्यमान हुए उपर्युक्त वर्णित श्रेष्ठ गुणों (निष्कामता,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आत्मोन्मुखता तथा आत्म-भाव) का सहयोग प्राप्त करके जब जीवन-क्षेत्र (पंचवटी) में अवतरित होता है, तब अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) और श्रेष्ठ विचार-शक्ति (लक्ष्मण) के साथ सुखपूर्वक निवास करता है, जिसे कथा में राम का सीता एवं लक्ष्मण के साथ पंचवटी में सुखपूर्वक निवास करना कहा गया है। परन्तु अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में देह-चेतना (body-consciousness) के संस्कार रूप विकार भी पड़े हुए हैं। वे संस्कार रूप विकार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं और मनुष्य को पीड़ित करने का भरपूर प्रयास करते हैं। सबसे पहले संस्कार रूप में पड़ी हुई देहासक्ति अवचेतन मन (चित्त) से बाहर निकलती है और आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) पर आक्रमण करके उसे वशीभूत करने का यथासम्भव प्रयत्न करती है, जिसे आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) त्वरित रूप से अपनी श्रेष्ठ विचार-शक्ति (लक्ष्मण) के सहारे प्रभावहीन कर देता है। पंचवटी में सुखपूर्वक निवास करते हुए राम, सीता, लक्ष्मण के समक्ष शूर्पनखा नामक राक्षसी के आगमन और लक्ष्मण द्वारा शूर्पनखा के नाक-कान के छेदन के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– शूर्पणखा की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान के समक्ष देहासक्ति के प्रभावहीन होने का चित्रण, पृष्ठ-201)

18. परन्तु देहासक्ति एक ऐसा प्रबल विकार है, जिससे पूर्णतः छुटकारा पाना सरल नहीं होता क्योंकि देहासक्ति के साथ ढेरों कामनाएँ, इच्छाएँ, भावनाएँ, वासनाएँ, तृष्णाएँ, आशाएँ तथा अपेक्षाएँ भी जुड़ी होती हैं। ये सब भी विद्रोह करती हैं और आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) को विचलित करने का यथासम्भव प्रयास करती हैं। परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता बन जाने के कारण इन सभी विद्रोही शक्तियों का सहज रूप से विनाश कर देता है, जिसे कथा में राम द्वारा खर-दूषण-त्रिशिरा के सेना सहित विनाश के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– वही, पृष्ठ-201)

19. एक शरीर को छोड़ने और दूसरे शरीर को ग्रहण करने की सतत यात्रा में अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में पड़ा हुआ देहाभिमान (अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण अपने मिथ्या स्वरूपों– भूमिका, पद, छवि आदि को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर उनमें आसक्त हो जाना) का संस्कार (रावण) पुराना होने के कारण प्रबल होता है और उसकी जड़ें भी बहुत गहरी होती हैं। परन्तु आत्म-ज्ञान (राम) की अद्भुत क्षमता के समक्ष

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

यह देहाभिमान (रावण) टिक नहीं सकता। इसीलिये यह देहाभिमान (रावण) छल का सहारा लेता है और आत्म-ज्ञान (राम) को कमजोर करने का भरपूर प्रयास करता है।

20. पहले छल के रूप में यह देहाभिमान का संस्कार (रावण) भ्रम से उत्पन्न हुए मोह रूप विकार (मारीच राक्षस) का सहारा लेता है और आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की पवित्र-सोच (सीता) को हरने के लिये ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण करता है कि स्वयं मनुष्य की पवित्र-सोच (सीता) उस भ्रमपूर्ण स्वरूप (स्वर्ण मृग) पर मुग्ध हो जाती है, जिसे कथा में मारीच नामक पात्र के माध्यम से स्वर्ण-मृग के सुन्दर स्वरूप पर सीता की मुग्धता के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– मारीच कथा के माध्यम से मोह की प्रबलता तथा आत्म-ज्ञान से मोह के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-211)

21. दूसरे छल के रूप में यह देहाभिमान का संस्कार (रावण) विकारों के औचित्य प्रतिपादन (विकारों को सही ठहराना) का सहारा लेता है और जीवन-व्यवहार (पंचवटी) से पवित्र-सोच (सीता) को हर लेता है। विकार को सही मानना अथवा सही ठहराना उसके ऊपर सही होने का एक छलपूर्ण आवरण डाल देना है और इसी छलपूर्ण आवरण के कारण जीवन-व्यवहार से पवित्र-सोच (सीता) का हरण हो जाता है। यह छलपूर्ण आवरण ठीक वैसा ही होता है, जैसे कोई मनुष्य वास्तव में संन्यासी न होते हुए भी संन्यासी के वस्त्र धारण कर ले। विकार को विकार मानकर एक दिन मनुष्य उस विकार से मुक्त हो ही जाता है परन्तु विकार को विकार न मानकर उसे सही ठहरा देने अथवा न्यायसंगत मान लेने पर मनुष्य कभी भी उस विकार से मुक्त नहीं हो सकता। स्वयं के प्रति किया गया यही छलपूर्ण आचरण आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की पवित्र-सोच (सीता) को हर लेता है, जिसे कथा में संन्यासी वेशधारी रावण द्वारा सीता-हरण के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– संन्यासी-वेश-धारी रावण द्वारा सीता-हरण के माध्यम से छलयुक्त देहाभिमान के द्वारा पवित्र-सोच के हरण का चित्रण, पृष्ठ-221)

22. स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) के अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान (रावण) जब छलपूर्वक अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) को हर रहा होता है, तब पवित्र-सोच (सीता) की रक्षा का एक अन्तर्निहित अभिलाषी गुण

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मन के भीतर जाग्रत होता है और पवित्र-सोच (सीता) की रक्षा का यथेष्ट प्रयत्न भी करता है। परन्तु संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) की प्रबलता के समक्ष पवित्रता की रक्षा का वह अभिलाषी गुण हार जाता है और व्यर्थ हो जाता है, जिसे कथा में जटायु नामक गृध्र द्वारा सीता की रक्षा का प्रयास करने परन्तु रावण के प्रहारों से मृत्यु को प्राप्त हो जाने के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– जटायु एवं सम्पाति नामक पात्रों के माध्यम से उच्च मन में रहने वाले दो विशिष्ट गुणों का चित्रण, पृष्ठ-233)

23. अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) का यह छलपूर्ण आक्रमण ऐसा विकट होता है कि कुछ क्षण के लिये स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान (राम) भी मानो दूर चला जाता है और परिणामस्वरूप पवित्र-सोच (सीता) का हरण हो जाता है। यही वह क्षण होता है, जब जरा सी चूक आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) को दुःखी करती है क्योंकि पवित्र-सोच (सीता) ही तो आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य की (राम की) सबसे बड़ी शक्ति होती है। इस दुःखपूर्ण स्थिति में अब अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में पड़ा हुआ नकारात्मकता का संस्कार (कबन्ध राक्षस) भी बाहर निकलता है और आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) को वशीभूत करने का भरपूर प्रयास करता है। परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपनी विचार-शक्ति अथवा संकल्प-शक्ति (लक्ष्मण) के सहारे त्वरित रूप से जाग्रत होकर उस नकारात्मकता को (कबन्ध राक्षस को) विनष्ट कर देता है। नकारात्मकता का विनाश और सकारात्मकता का उद्भव मनुष्य को अब अपने ही उस ज्ञान से मैत्री हेतु प्रेरित करता है, जो अभी तक प्रसुप्त है परन्तु जिसे जाग्रत करने की आवश्यकता है। राक्षस-रूप-धारी कबन्ध के विनाश परन्तु दिव्य-रूप-धारी कबन्ध द्वारा राम को सुग्रीव से मैत्री के परामर्श के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– कबन्ध के विनाश के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा अवचेतन मन में विद्यमान नकारात्मक शक्ति के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-249)

24. ज्ञान के प्रसुप्त होने का कारण है– अज्ञान। बहुत समय तक अपने आपको शरीर मानते रहने के कारण मन के भीतर जो प्रभूत अज्ञान इकट्ठा होता चला जाता है, वही प्रभूत अज्ञान (बालि) एक न एक दिन प्रबल होकर मनुष्य के ज्ञान (सुग्रीव) को दबा देता है और फिर यह दबा हुआ ज्ञान केवल तभी जाग्रत हो पाता है, जब मनुष्य अपनी सही पहचान (आत्म-ज्ञान) में स्थित होकर अपने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बनता है। स्वयं की सही पहचान (आत्म-ज्ञान) में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अब उस प्रसुप्त ज्ञान (सुग्रीव) को जाग्रत करके अज्ञान (बालि) का विनाश कर देता है। यही जाग्रत ज्ञान (सुग्रीव) फिर ज्ञान-शक्तियों (वानरों) के रूप में सहस्रों शाखाओं में फैलकर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) के द्वारा हरी गई अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) को वापस लाने और देहाभिमान (रावण) के विनाश में भी अत्यन्त सहयोगी हो जाता है। अज्ञान (बालि) के विनाश और प्रसुप्त ज्ञान (सुग्रीव) के जागरण को ही रामायण में बालि एवं सुग्रीव की विस्तीर्ण कथा के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– सुग्रीव एवं बालि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा प्रसुप्त ज्ञान के जागरण एवं अज्ञान के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-265)

25. अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप (बीज रूप) धारण कर चुके अपने ही देहाभिमान (रावण) के कारण जब अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) का लोप हो जाता है, तब संयम, नियम, दया, करुणा, निष्ठा, विश्वास, सच्चाई, ईमानदारी, सेवा, समर्पण, सहयोग आदि जितनी भी अभ्युदय-कारक ज्ञान-शक्तियाँ (वानर) हैं, उनकी उपयोगिता यद्यपि खो सी जाती है, परन्तु वे कभी मरती नहीं हैं। इसका कारण यह है कि ज्ञान-शक्तियों के भीतर विद्यमान उनकी अपनी प्रकाशरूपता (स्वयंप्रभा) ही उस विपरीत समय में उन ज्ञान-शक्तियों (वानरों) की रक्षा करती है। इसी तथ्य को कथा में स्वयंप्रभा नामक तापसी द्वारा वानरों की सहायता के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– स्वयंप्रभा कथा के माध्यम से ज्ञान-शक्तियों की स्वयंप्रकाशता का चित्रण, पृष्ठ-281)

26. यही नहीं, अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) के कारण अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) के लुप्त हो जाने पर जब अपनी ही ज्ञान-शक्तियाँ (वानर) उस पवित्र-सोच (सीता) को ढूंढ़ नहीं पाती और बहुत निराश हो जाती हैं, तब प्रबल निराशा की स्थिति में इन ज्ञान-शक्तियों का साक्षात्कार एक ऐसे अन्तर्निहित गुण (सम्पाति) से होता है, जो आवश्यक दिशा-निर्देश के रूप में ज्ञान-शक्तियों को अत्यन्त आश्वस्त करता है। यह अन्तर्निहित गुण (सम्पाति) ही बतलाता है कि जीवन-व्यवहार (पंचवटी) से पवित्र-सोच (सीता) को चुराने वाला अपना ही संस्कार रूप में परिवर्तित हो चुका प्रबल देहाभिमान (रावण) होता है। पवित्र-सोच (सीता)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कभी विनष्ट नहीं होती है। वह केवल देहाभिमान से युक्त हुए अपने ही व्यक्तित्व (लंकापुरी) के भीतर अपने ही विषाक्त विचारों (राक्षसों) के बीच कैद हो जाती है। अतः अपने ही मन रूपी महासागर का लंघन करके उस पवित्र-सोच (सीता) को निश्चितरूपेण प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार पवित्र-सोच (सीता) की पुनः प्राप्ति हेतु महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश देने वाले और पवित्र-सोच (सीता) के अन्वेषण से थककर मरने के लिये उत्सुक हुई ज्ञान-शक्तियों (वानरों) की रक्षा करने वाले इस अन्तर्निहित गुण को कथा में सम्पाति नामक गृध्र की कथा के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– जटायु एवं सम्पाति नामक पात्रों के माध्यम से उच्च मन में रहने वाले दो विशिष्ट गुणों का चित्रण, पृष्ठ-233)

27. अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए प्रबल देहाभिमान (रावण) के कारण अपने ही व्यक्तित्व (लंकापुरी) को देखना और टटोलना कठिन होता है क्योंकि मनुष्य का अपना ही मन रूपी समुद्र बाधा बनकर खड़ा हो जाता है। यह मन एक ऐसे समुद्र की तरह है, जिसमें अपने ही संस्कारों के कारण अच्छा और बुरा बहुत कुछ भरा हुआ है। वहाँ कामनाओं, इच्छाओं के पर्वत भी हैं और ममता, मोह के झरने भी। कभी मनुष्य पुण्यों के फलस्वरूप प्राप्त हुए सुखों के विस्तार में अटक जाता है, तो कभी आसक्ति के मोहक रस उसे खींच लेते हैं। परन्तु ऐसी स्थिति में अपने ही देहाभिमानी व्यक्तित्व (लंकापुरी) को देखने और टटोलने में आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की अपनी ही प्रज्ञा (हनुमान) समर्थ होती है। यह प्रज्ञा (हनुमान) निष्कम्प और निष्काम होने के कारण कामनाओं में नहीं उलझती और सहज रूप से लक्ष्य की ओर गतिमान रहती है। यह प्रज्ञा (हनुमान) निःस्पृह होने के कारण सुखों में लिप्त नहीं होती और अनासक्त होने के कारण सम्बन्धों के विस्तार में रहते हुए भी उनसे नहीं बंधती। यह प्रज्ञा (हनुमान) श्रेष्ठ सोच की धनी होती है, अतः मनःसमुद्र में विद्यमान हुई निकृष्ट सोच का वध सहज रूप से कर देती है। हनुमान द्वारा समुद्र के लंघन की कथा के माध्यम से इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– हनुमान द्वारा समुद्र-लंघन के माध्यम से प्रज्ञा द्वारा मन रूपी समुद्र के लंघन का चित्रण, पृष्ठ-297)

28. बहुत समय तक अपने आपको शरीर मानते रहने के कारण मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) के भीतर यह दोषारोपण-वृत्ति (लंका नामक राक्षसी) प्रबल रूप में विद्यमान हो जाती है कि उसके दुःख का कारण वह स्वयं नहीं है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपितु कोई व्यक्ति अथवा कोई परिस्थिति ही उसके दु:ख के लिये जिम्मेदार है। यह दोषारोपण-वृत्ति चेतन मन के तल पर प्रकट होती है और मनुष्य को अपने ही व्यक्तित्व के भीतर (लंकापुरी के भीतर) झांकने नहीं देती। केवल आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) इस दूषित वृत्ति (लंका नामक राक्षसी) को धक्का देकर आगे बढ़ जाती है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा लंका नामक राक्षसी को मुक्का मारकर लंकापुरी में प्रवेश करने के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– लंका नामक राक्षसी की कथा के माध्यम से प्रज्ञा द्वारा दोषारोपण-वृत्ति को परास्त करने का चित्रण, पृष्ठ-307)

29. अनेक-अनेक जन्मों की लम्बी यात्रा में मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) के भीतर देहाभिमान का जो संस्कार प्रबल रूप में निर्मित हो जाता है, उसे सीधे-सीधे विनष्ट करना सम्भव नहीं होता। अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुई अनेकानेक मान्यताएँ, धारणाएँ उस देहाभिमान के संस्कार का पोषण करती हैं, अत: देहाभिमान को विनष्ट करने से पहले उन मान्यताओं, धारणाओं को विनष्ट करना आवश्यक हो जाता है। स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होने पर जब मनुष्य (राम) का प्रसुप्त ज्ञान (सुग्रीव) जाग्रत हो जाता है, तब उसकी अपनी ही प्रज्ञा (हनुमान) अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुई अनेकानेक मान्यताओं, धारणाओं का विनाश करके न केवल देहाभिमान के प्रबल संस्कार को (रावण को) कमजोर कर देती है, अपितु पवित्र-सोच (सीता) को वापस लाने में भी कारणभूत हो जाती है। लंकापुरी में प्रविष्ट होकर हनुमान के पराक्रम के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– हनुमान द्वारा अशोकवाटिका के विध्वंस, राक्षसों के विनाश तथा लंकापुरी के दहन के माध्यम से प्रज्ञा के महत्त्व का चित्रण, पृष्ठ-315)

30. जीवन का चक्र वर्तुलाकार है। इस वर्तुल चक्र के भीतर कभी आत्म-ज्ञान (राम) प्रबल होता है, तो कभी देहाभिमान (रावण) प्रबल हो जाता है। जब देहाभिमान (रावण) प्रबल होता है, तब मनुष्य की पवित्र-सोच (सीता) का जीवन-व्यवहार (पंचवटी) से लोप हो जाता है और वह पवित्र-सोच (सीता) निष्क्रिय अथवा अप्रतिष्ठित सी अवस्था में विद्यमान हो जाती है। परन्तु यह भी निश्चित है कि एक न एक दिन देहाभिमान (रावण) का विनाश अवश्य होता है और देहाभिमान का विनाश होने पर वही निष्क्रिय पवित्र-सोच (सीता) पुन: प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेती है। अत: विषाद की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुई जो शक्ति अकस्मात् प्रकट होकर पवित्र-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सोच (सीता) की मुक्तता और प्रतिष्ठा के प्रति उसे आश्वस्त करती है– उसे ही कथा में त्रिजटा के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– त्रिजटा कथा के माध्यम से अन्तर्ज्ञान शक्ति का चित्रण, पृष्ठ-331)

31. मनुष्य का मन एक गहरे समुद्र की भाँति है, जिसमें विचार (thoughts), भाव (feelings), दृष्टिकोण (attitude), कर्म (action), आदत (habit), दृष्टि (perception), व्यक्तित्व (personality) तथा भाग्य (destiny) के रूप में बहुत कुछ भरा पड़ा है। जब मनुष्य अपनी सही पहचान (आत्म-ज्ञान) को भूलकर शरीर-चेतना में स्थित हो जाता है अर्थात् स्वयं को शरीर समझने लगता है, तब शरीर और संसार की ओर ही उन्मुख रहने के कारण सर्वप्रथम उसके विचारों में कलुषता आती है और फिर विचारों की कलुषता से शनैः-शनैः भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदत, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य आदि के रूप में उसका सम्पूर्ण मन रूपी समुद्र ही कलुषित हो जाता है। इस सम्पूर्ण कलुषता को ही रामकथा में समुद्र में रहने वाले नाक, मकर, ग्राह, सर्प, दैत्य, दानव तथा राक्षस आदि के रूप में चित्रित किया गया है। शरीर-चेतना के कारण अर्थात् अपने आपको शरीर समझ लेने के कारण कलुषित हुए इस मन रूपी समुद्र को शुद्ध, स्वच्छ बनाने का जो आत्यन्तिक उपाय है, वह है– शरीर-चेतना को ही आत्म-चेतना में रूपान्तरित करना अर्थात् स्वयं को शरीर न समझकर आत्म-स्वरूप समझते हुए जीना और सभी के प्रति आत्म-भाव रखना। आत्म-चेतना में स्थित होकर मन रूपी समुद्र का उपर्युक्त रूप से वर्णित सम्पूर्ण कलुषित जल निश्चित रूप से शुद्ध हो जाता है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– राम के ब्रह्मास्त्र से समुद्र-कुक्षि के सूखने और नूतन कूप के निर्माण के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा देह-चेतना के विनाश और आत्म-चेतना के निर्माण का चित्रण, पृष्ठ-351)

32. परन्तु जब तक मनुष्य आत्म-चेतना में स्थित नहीं हो जाता, तब तक मन रूपी समुद्र के भीतर विद्यमान हुई उस कलुषता से बचने का एक अन्य श्रेष्ठतम उपाय भी है– मन रूपी समुद्र के ऊपर एक सेतु का निर्माण कर लेना। सेतु के निर्माण का अर्थ है– अर्जित किये हुए प्रत्येक नूतन ज्ञान (आध्यात्मिक ज्ञान) को आचरण के साथ जोड़ देना। ज्ञान और आचरण के परस्पर समन्वय रूप इस सेतु के निर्माण का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि मनुष्य कलुषता (विकारों) को विनष्ट करने के बोझिल परिश्रम से बचकर अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को सेतु के निर्माण में लगा देता है अर्थात् अपने ज्ञान को कर्म या आचरण से जोड़कर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

निरन्तर आगे की ओर बढ़ता चला जाता है। परन्तु यहाँ यह तथ्य भी ध्यान योग्य है कि ज्ञान की शक्तियाँ (वानर रूपी शक्तियाँ) आचरण के साथ स्वयं नहीं जुड़ सकती। ज्ञान की समस्त शक्तियों को आचरण से जोड़ने के लिये (सेतु-निर्माण के लिये) एक कुशल मन चाहिये, जिसे कथा में नल नाम दिया गया है। यह कुशल मन स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) के पास सदा विद्यमान होता है, परन्तु इसकी पहचान केवल तभी होती है, जब मनुष्य इस जागरण से युक्त होता है कि कलुषता (विकारों) से भरे हुए अपने गहरे मन रूपी समुद्र का निर्माण कभी न कभी उसी ने किया है और अब ज्ञान को आचरण में उतारकर वही इस कलुषता के पार भी जा सकता है। सेतु-निर्माण की कथा के द्वारा इसी समस्त तथ्य को रामकथा के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– नल द्वारा सेतु-निर्माण के माध्यम से कुशल मन द्वारा ज्ञान को आचरण (व्यवहार) से ज़ोड़ने की आवश्यकता एवं महत्त्व का वर्णन, पृष्ठ-339)

33. अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठे हुए अपने ही संस्कार (बीज) रूप विकारों को विनष्ट करने के लिये जब कोई आत्म-ज्ञानी 'मनुष्य (राम) प्रयत्नशील होता है, तब उसके अपने ही गुणों और विकारों के बीच एक संग्राम प्रारम्भ हो जाता है, जिसे राम और रावण की सेनाओं के बीच होने वाले संग्राम के रूप में चित्रित किया गया है। इस संग्राम के अन्तर्गत जैसे ही कोई विकार अवचेतन मन (चित्त) से निकलकर चेतन मन के तल पर प्रस्फुटित होता है, वैसे ही आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) सावधान होकर कभी अपनी संकल्प-शक्ति (लक्ष्मण) के सहारे, कभी प्रज्ञा (हनुमान) के सहारे, कभी ज्ञान (सुग्रीव) के सहारे, कभी स्वस्थ-शुद्ध मन (अंगद) के सहारे तथा कभी भिन्न-भिन्न प्रकार की ज्ञान-शक्तियों अर्थात् नील, द्विविद, मैन्द, ऋषभ आदि वानरों के सहारे उस विकार को सहज रूप से विनष्ट कर देता है। लक्ष्मण द्वारा अतिकाय तथा इन्द्रजित् नामक राक्षसों का वध, हनुमान द्वारा धूम्राक्ष, अकम्पन, देवान्तक, निकुम्भ, त्रिशिरा, जम्बुमाली तथा अक्षकुमार आदि राक्षसों का वध, सुग्रीव द्वारा कुम्भ, विरूपाक्ष तथा महोदर नामक राक्षसों का वध, अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र, नरान्तक, कम्पन, प्रजंघ तथा महापार्श्व नामक राक्षसों का वध, नील द्वारा प्रहस्त और महोदर राक्षसों का वध, द्विविद द्वारा शोणिताक्ष का वध, मैन्द द्वारा यूपाक्ष का वध, ऋषभ द्वारा महापार्श्व का वध तथा स्वयं राम द्वारा कुम्भकर्ण, मकराक्ष एवं रावण नामक राक्षसों के वध द्वारा इसी आन्तरिक संग्राम को चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

34. अपने ही अवचेतन मन (चित्त) से निकला हुआ क्रोध नामक विकार (इन्द्रजित् नामक राक्षस) इतना प्रबल होता है कि वह विकार आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) को भी उसकी विचार-शक्ति अथवा संकल्प-शक्ति (लक्ष्मण) के साथ अपने बन्धन में बांध लेता है। परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) का वह बन्धन अत्यन्त क्षणिक होता है क्योंकि आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) श्रेष्ठ ज्ञान के सहारे, जिसे कथा में गरुड़ नाम दिया गया है, उस बन्धन से तुरन्त मुक्त हो जाता है। इन्द्रजित् द्वारा नाग-पाश से राम-लक्ष्मण के बन्धन परन्तु गरुड़ द्वारा राम-लक्ष्मण की मुक्ति के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।(विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– इन्द्रजित् के नागमय बाणों से राम-लक्ष्मण के बन्धन एवं मुक्ति के माध्यम से ज्ञान द्वारा व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-361)

35. अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुआ यह क्रोध नामक विकार (इन्द्रजित् नामक राक्षस) यद्यपि बार-बार आक्रमण करता है परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) इससे विचलित नहीं होता। वह कभी तो क्रोध (इन्द्रजित्) का साक्षी बनकर स्वयं को उस क्रोध (इन्द्रजित्) के प्रभाव से मुक्त कर लेता है अथवा कभी अपनी ही प्रज्ञा (हनुमान) के सहारे सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप उन आत्म-गुणों (ओषधियों) का त्वरित रूप से उपयोग कर लेता है, जो उसी के शुद्ध, स्थिर मन (हिमालय) में सदा विद्यमान होते हैं। हनुमान द्वारा हिमालय से लाई हुई ओषधियों द्वारा राम-लक्ष्मण की सचेतनता के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से राम-लक्ष्मण की मूर्च्छा परन्तु हनुमान द्वारा लाई हुई ओषधियों को सूंघकर प्राप्त हुई सचेतनता के माध्यम से संस्कार रूप में विद्यमान क्रोध नामक विकार से आत्म-ज्ञानी मनुष्य की क्षणिक अस्वस्थता परन्तु साक्षी भाव में स्थित होकर प्रज्ञा द्वारा अवतरित आत्म-गुणों की सहायता से स्वास्थ्य प्राप्ति का चित्रण, पृष्ठ-371)

36. यही नहीं, अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए इस क्रोध का मूल वे आशाएँ, अपेक्षाएँ, कामनाएँ होती हैं, जो क्रोध को कभी मरने नहीं देती। अत: क्रोध (इन्द्रजित् नामक राक्षस) के समूल विनाश के लिये एक समवेत प्रयास आवश्यक होता है। सबसे पहले– १. इस ज्ञान को धारण करना अनिवार्य है कि आत्मा के तल पर सभी मनुष्य एक समान होते हुए भी शरीर के तल पर, विशेष रूप से विचार (सोच) के तल पर सभी मनुष्य एक दूसरे से

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

बिल्कुल भिन्न हैं। यही भिन्नता मनुष्य के व्यवहार को भी एक दूसरे से सर्वथा भिन्न बना देती है। अत: एक समान व्यवहार की आशा, अपेक्षा रखना मूढ़ता है। २. ज्ञान को केवल ज्ञान तक सीमित न रखकर आचरण में लाना आवश्यक है। ३. आत्म-अनुशासन अर्थात् यम, नियम, संयम में रहना भी क्रोध को कमजोर बनाता है। ४. सात्विक मन भी क्रोध के विनाश हेतु यथायोग्य दिशा-निर्देश देता है। ५. अवचेतन मन में विद्यमान इन मान्यताओं का विनाश भी आवश्यक है कि क्रोध से ही काम होता है, क्रोध से काम जल्दी होता है अथवा क्रोध से लोग वश में रहते हैं। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– इन्द्रजित्-वध के माध्यम से क्रोध के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-391)

37. अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए क्रोध नामक विकार (इन्द्रजित् नामक राक्षस) के समान ही मोह नामक विकार (कुम्भकर्ण नामक राक्षस) भी प्रबल होता है, जिसे विनष्ट करने में मात्र स्वस्थ-शुद्ध मन (अंगद), विवेक या प्रज्ञा (हनुमान), ज्ञान की जाग्रति (सुग्रीव), ज्ञान-शक्तियाँ (वानर वीर) अथवा संकल्प-शक्ति (लक्ष्मण) भी समर्थ नहीं होती हैं। देह-ज्ञान (विश्रवा मुनि) से उत्पन्न हुए इस मोह नामक विकार (कुम्भकर्ण) का विनाश आत्म-ज्ञान में स्थित होकर ही किया जा सकता है, जिसे कथा में राम द्वारा कुम्भकर्ण नामक राक्षस के विनाश के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– कुम्भकर्ण नामक पात्र के माध्यम से मोह नामक विकार का चित्रण, पृष्ठ-383)

38. इसी प्रकार, देह-ज्ञान (विश्रवा मुनि) से उत्पन्न हुए तथा अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में प्रविष्ट होकर गहरी जड़ें बना चुके देहाभिमान रूप विकार (रावण) को भी आत्म-ज्ञान में स्थित होकर ही अर्थात् राम बनकर ही विनष्ट किया जा सकता है। यह देहाभिमान रूप विकार (रावण) अन्य सहस्रों प्रकार की विकार रूप सेनाओं अर्थात् राक्षसों के साथ ऐसा सुदृढ़ स्वरूप धारण कर लेता है कि उन विकारों (राक्षसों) का विनाश किये बिना इस देहाभिमान रूप विकार (रावण) का विनाश करना सम्भव नहीं होता। अत: ज्ञान-शक्तियों (वानरों) का उपयोग करते हुए पहले संस्कार रूप धारण कर चुके उन विभिन्न विकारों (राक्षसों) को विनष्ट करना अनिवार्य हो जाता है, जिसे कथा में राम की वानर सेना द्वारा रावण की राक्षस सेना के विनाश के रूप में चित्रित किया गया है। विभिन्न विकारों (राक्षसों) के विनाश से यह देहाभिमान रूप विकार (रावण) कमजोर तो अवश्य पड़ता है, परन्तु विनष्ट नहीं होता। इसके विनाश हेतु भी एक

विशेष शक्ति-संयोजन आवश्यक होता है। जब मनुष्य श्रेष्ठ गुणों में स्थित होकर, सभी के प्रति पूर्ण आत्म-भाव रखते हुए, सतत परमात्म-योग में रहकर, एकमात्र आत्म-गुणों में ही स्थित हो जाता है, तब उसका संस्कार रूप में विद्यमान देहाभिमान रूप विकार (रावण) विनष्ट हो जाता है, जिसे कथा में राम द्वारा रावण-वध के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– राम द्वारा रावण-वध के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा देहाभिमान के विनाश का चित्रण, पृष्ठ-403)

39. अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए इस देहाभिमान रूप विकार (रावण) के विनाश से व्यक्तित्व के भीतर उस सात्विक गुण (विभीषण) की सहज रूप से स्थापना हो जाती है, जो देहाभिमान रूप विकार के कारण सदा उपेक्षित और अपमानित बना रहता है। अत: देहाभिमान (रावण) के विनाश से अब सम्पूर्ण व्यक्तित्व सात्विक हो जाता है, जिसे कथा में लंकापुरी के राज्य पर विभीषण के अभिषेक के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– लंकापुरी में विभीषण के राज्याभिषेक के माध्यम से मनुष्य के व्यक्तित्व में सात्विकता की स्थापना का चित्रण, पृष्ठ-419)

40. अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) का विनाश हो जाने पर अब अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) मुक्त हो जाती है और आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अब उस पवित्र-सोच (सीता) का भी परिष्कार कर लेता है। यह परिष्कृत पवित्र-सोच वचन और कर्म में प्रकट होकर अब मनुष्य को अत्यन्त सम्माननीय और विश्वसनीय बना देती है। (विस्तार के लिये दृष्टव्य लेख– सीता के अग्नि-प्रवेश के माध्यम से ज्ञान द्वारा पवित्र-सोच के परिष्कार का चित्रण, पृष्ठ-429)

41. अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) के विनाश से अब सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम और आनन्द रूप वे समस्त आत्म-गुण स्वत: प्रकट हो जाते हैं, जो बहुत समय से स्वयं के (आत्मा के) भीतर विद्यमान होते हुए भी जीवन-व्यवहार में प्रकट नहीं हो पा रहे थे। नन्दीग्राम में भरत के तप के रूप में इसी तथ्य को व्यक्त किया गया है। स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अब आत्म-गुणों में स्थित होकर चेतन मन के साथ-साथ अवचेतन मन (चित्त) पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करके अपने सम्पूर्ण मनो-राज्य का स्वामी बन जाता है, जिसे राम के राजा होने के रूप में चित्रित किया गया है। (विस्तार के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लिये दृष्टव्य लेख– राम के राज्याभिषेक के माध्यम से आत्म-ज्ञान में प्रतिष्ठित होकर स्वराज्य-अधिकारी बनने का चित्रण, पृष्ठ-439)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण की कथाओं में छुपे गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य

१. रामायण की भूमिका कथा

(आत्म-ज्ञान की आवश्यकता एवं महत्त्व का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.
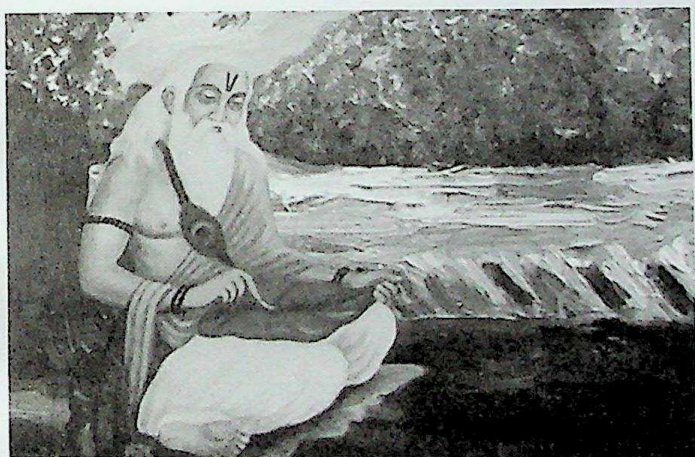
कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्ण रूप से प्रतीकात्मक है। अत: एक-एक प्रतीक को समझकर ही कथा को समझना सम्भव है।

१. वाल्मीकि मुनि

वाल्मीकि शब्द वल्मीक से बना है। वल्मीक का अर्थ है– बांबी अर्थात् दीमकों द्वारा बनाया गया मिट्टी का पर्वत। वाल्मीकि से सम्बन्धित यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है कि एक मुनि जब योगधारणा कर रहे थे, तब वे इतने अधिक स्थिर थे कि दीमकों ने उनके ऊपर वल्मीक (बांबी) का निर्माण कर लिया, जिससे उनका नाम वाल्मीकि हो गया। अत: एक ऐसे व्यक्तित्व को वाल्मीकि कहा जा सकता है, जो स्थिर मन से युक्त हो।

२. देवर्षि नारद

पौराणिक साहित्य में नारद नामक पात्र आकर्षण के नियम (law of attraction) को इंगित करता है। मनुष्य का स्थिर मन जब किसी विषय का सुदृढ़ रूप से चिन्तन करता है, तब उसकी अपनी समग्र चेतना ही आकर्षित होकर सम्बन्धित विषय को बल प्रदान करती है। अत: वाल्मीकि मुनि के प्रश्न करने पर नारद जी द्वारा राम-चरित्र का वर्णन करना वास्तव में स्थिर मन (वाल्मीकि) को अपनी ही समग्र चेतना के आकर्षण से (नारद से) प्राप्त हुआ अपने ही प्रश्न का समाधान है।

३. वाल्मीकि का तमसा नदी के तट पर गमन

तमसा नदी अज्ञान अर्थात् देह-चेतना (मैं शरीर हूँ– इस दृढ़ भाव में स्थित रहना) की नदी है, जो प्रत्येक मनुष्य के भीतर प्रवाहित हो रही है। अपनी इस देह-चेतना को ध्यानपूर्वक देखना ही वाल्मीकि का तमसा नदी के तट पर पहुँचना है।

४. तमसा के घाट को कीचड़-रहित देखकर वाल्मीकि की उसी उत्तम तीर्थ में स्नान करने की इच्छा

अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप के ज्ञान (स्मरण) को ही यहाँ कीचड़ रहित घाट और उत्तम तीर्थ कहा गया है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि भले ही जन्मों-जन्मों की लम्बी यात्रा के कारण मनुष्य के भीतर देह-चेतना रूपी तमसा नदी प्रवाहित हो रही हो, फिर भी अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के ज्ञान रूपी उत्तम तीर्थ में स्नान करना सम्भव है।

५. उत्तम तीर्थ में स्नान हेतु वाल्मीकि द्वारा शिष्य भरद्वाज से अपने वल्कल वस्त्र का ग्रहण

यहाँ पहले भरद्वाज तथा वल्कल वस्त्र को पृथक्-पृथक् समझना आवश्यक है।

भरद्वाज- भरद्वाज शब्द भरत् और वाज नामक दो शब्दों से मिलकर बना है। भरत् का अर्थ है– भरना और वाज का अर्थ है– क्रिया। वेदों में आए हुए ऋभु, विभु, वाज नामक शब्द क्रमशः ज्ञान, भाव और क्रिया को इंगित करते हैं। अतः भरद्वाज का अर्थ हुआ– वह शक्ति जो मनुष्य के भीतर क्रिया (आचरण) का भरण करती है।

वल्कल वस्त्र- वल्कल शब्द वल (वर का अपभ्रंश रूप) और कल (कर का अपभ्रंश रूप) नामक दो शब्दों से बना है। वर का अर्थ है– श्रेष्ठ और कर का अर्थ है– कर्त्तव्य या कर्म। वस्त्र शब्द पौराणिक साहित्य में विचार विशेष को इंगित करता है।

अतः वाल्मीकि द्वारा शिष्य भरद्वाज से वल्कल वस्त्र के ग्रहण का अभिप्राय हुआ– वाल्मीकि का अपनी ही क्रियात्मक (आचरणात्मक) शक्ति की सहायता से अपने श्रेष्ठ कर्तव्य या कर्म के विचार से युक्त हो जाना।

६. वाल्मीकि का विशाल वन में विचरण

विशाल वन चार युगों (सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग) वाले इस विशाल सृष्टि-चक्र को इंगित करता प्रतीत होता है। विशाल वन में विचरने का अर्थ है– विशाल सृष्टि-चक्र पर चिन्तन-मनन करना।

७. वाल्मीकि द्वारा विशाल वन में काम-मोहित क्रौञ्च-मिथुन का दर्शन

क्रौञ्च शब्द कौटिल्य अर्थात् मुड़ना अर्थ वाली क्रुञ्च धातु से बना है (काशकृत्स्न धातुपाठ १.४६)। मिथुन का अर्थ है– आत्म-ज्ञान और पवित्र-सोच (पवित्र मन-बुद्धि) का परस्पर योग अर्थात् मनुष्य न केवल स्वस्वरूप– आत्मस्वरूप में स्थित हो अपितु उसकी सोच भी पवित्र हो। यह मिथुन एक श्रेष्ठतम स्थिति है परन्तु यहाँ आत्म-ज्ञान और पवित्र-सोच के इस मिथुन के साथ क्रौञ्च शब्द को जोड़कर यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान और पवित्र-सोच (पवित्र मन-बुद्धि) का यह मिथुन (सम्बन्ध) सदैव विद्यमान नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहता। यह मिथुन कौटिल्य अर्थात् मुड़ने अथवा परिवर्तित होने के धर्म से युक्त है, अतः चार युगों वाले विशाल सृष्टि-चक्र के इस सतत प्रवाह में एक समय ऐसा भी अवश्य आता है, जब आत्म-ज्ञान (आत्म-स्वरूप) विस्मृत हो जाता है और पवित्र-सोच देहाभिमान के अधीन होकर दुखी हो जाती है। क्रौञ्च-मिथुंन को काम-मोहित कहकर भी यही संकेत किया गया है कि चार युगों वाले विशाल सृष्टि-चक्र में एक दिन ऐसा अवश्य आता है, जब कामना के प्रविष्ट होने से मनुष्य अपने सही स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूलने लगता है।

८. निषाद द्वारा क्रौञ्चमिथुन पर बाण चलाकर नर क्रौञ्च का वध

निषाद शब्द नि उपसर्ग के साथ सद् धातु के योग से बना है। नि का अर्थ है– निम्न या निचला और सद् का अर्थ है– बैठना या रहना। अतः मनुष्य का मन (मनोमय कोश) जब निचले कोश– अन्नमयकोश के साथ रहने लगता है अर्थात् स्थूल देह पर केन्द्रित होकर उस स्थूल देह को ही सब कुछ मानने लगता है, तब निषाद कहलाता है। स्थूल देह में स्थिति रूप इस निषाद के कारण ही आत्म-स्वरूप (आत्म-ज्ञान) विस्मृत हो जाता है, जिसे कथा में निषाद द्वारा नर क्रौञ्च के वध के रूप में चित्रित किया गया है।

९. पति के वध से पत्नी क्रौञ्ची का रुदन

यहाँ यह संकेत किया गया है कि मनुष्य की पवित्र-सोच (पवित्र मन-बुद्धि) तभी तक सुरक्षित रहती है, जब तक मनुष्य आत्म-स्वरूप में विद्यमान होता है। आत्म-स्वरूप के विस्मरण से पवित्र-सोच भी सुरक्षित नहीं रह पाती, जिसे कथा में नर क्रौञ्च का वध हो जाने से मादा क्रौञ्ची के रुदन के रूप में चित्रित किया गया है।

१०. नर क्रौञ्च के वध और मादा क्रौञ्ची के रुदन को देखकर महामुनि द्वारा निषाद को शाप

पौराणिक साहित्य में शाप और वरदान शब्द अवश्य भवितव्यता अर्थात् अवश्य होने को इंगित करते हैं। अतः वाल्मीकि द्वारा निषाद को दिया हुआ शाप यह संकेतित करता है कि आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-स्मृति का वध करने वाला अज्ञान (मैं देह ही हूँ– यह अज्ञान) चार युगों वाले इस विशाल सृष्टि-चक्र में सैंकड़ों वर्षों तक तो प्रतिष्ठा (सम्मान) प्राप्त नहीं करता। केवल चार युगों के अन्तिम चरण अर्थात् कलियुग में ही यह प्रतिष्ठित हो पाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

११. ब्रह्मा जी का आगमन और वाल्मीकि को रामचरित्र के सृजन की प्रेरणा-

कथा के अन्त में ब्रह्मा जी के आगमन द्वारा यह संकेत किया गया है कि किसी भी सृजन के पीछे जैसे व्यष्टि मन का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है, वैसे ही समष्टि में क्रियाशील सृजनात्मक मन (ब्रह्मा) भी कर्तव्य-कर्म के निश्चय में सहयोगी और प्रेरक अवश्य बनता है।

कथा का तात्पर्य

प्रस्तुत कथा के द्वारा रामायण महाकाव्य के सृजन में हेतुभूत चार कारक तत्त्वों की ओर संकेत किया गया है।

पहला कारक तत्त्व है– महामुनि वाल्मीकि द्वारा राम का चिन्तन और उनकी समग्र चेतना का भी उस रामचरित्र से ओतप्रोत होना। जब कोई रचनाकार किसी विशिष्ट विषय के चिन्तन से युक्त होता है, तब उसी की समग्र चेतना उस चिन्तन की ओर आकर्षित होकर सम्बन्धित विषय को सुदृढ़ बना देती है। इसे आकर्षण का नियम कहा जाता है और कथा में इसका संकेत यह कहकर किया गया है कि वाल्मीकि के पूछने पर नारद जी ने रामचरित्र का वर्णन किया। वास्तव में नारद कोई ऐतिहासिक पात्र नहीं है। समग्र चेतना के आकर्षण के नियम को ही पौराणिक साहित्य में नारद नाम दिया गया है।

दूसरा कारक तत्त्व है– मनुष्य के भीतर प्रवाहित देह-चेतना (body-consciousness) रूपी अज्ञान-धारा के विषय में वाल्मीकि का चिन्तन और अपने कर्त्तव्य कर्म का निश्चय। यहाँ यह संकेत किया गया है कि भले ही आज मनुष्य देहाभिमान (ego) रूपी गहन अज्ञान में विद्यमान हो, फिर भी आत्म-ज्ञान (self-knowledge) कहीं दूर नहीं है। आत्म-ज्ञान (मैं देह नहीं हूँ अपितु देह को चलाने वाला चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– इस समझ में स्थित होना) में निश्चित रूप से स्थित हुआ जा सकता है। अतः महामुनि वाल्मीकि विस्मृत हो चुके आत्म-ज्ञान की पुनर्स्थापना के रूप में अपने कर्त्तव्य कर्म का निश्चय करते हैं, जिसे कथा में महामुनि वाल्मीकि के तमसा नदी के सुन्दर घाट पर पहुँचने और शिष्य भरद्वाज से अपने वल्कल वस्त्र को ग्रहण करने के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तीसरा कारक तत्त्व है— अज्ञान (मन का स्थूल देह से जुड़ जाना) रूपी निषाद के कारण आत्म-ज्ञान रूपी नर क्रौञ्च के विस्मरण रूपी वध को और पवित्र-सोच (पवित्र मन-बुद्धि) की दुरावस्था को प्रत्यक्ष देखकर वाल्मीकि का द्रवीभूत होना और उस द्रवीभूत हृदय से काव्य का प्रस्फुटित होना। यहाँ यह संकेत किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य के पास जीवन जीने के दो प्रकार हैं।

पहला प्रकार है— मैं देह हूँ— इस रूप में स्वयं को देह मानकर जीना। देह मानकर जीने से मैं, मेरा, और अपना-पराया उत्पन्न होता है, जो मनुष्य को स्वार्थ की ओर ले जाता है। स्वार्थ से कामनाएँ उपजती हैं और कामनाओं से ही धीरे-धीरे क्रोध, लोभ, मोह, मद, राग, द्वेष, ईर्ष्या जैसे नकारात्मक विचार उत्पन्न होकर मनुष्य को दु:खों में ड़ालते हैं।

दूसरा प्रकार है— मैं आत्मा हूँ— इस रूप में स्वयं को आत्मा मानकर जीना अर्थात् स्वयं को इस रूप में पहचान लेना कि मैं देह नहीं हूँ अपितु देह को चलाने वाला अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ। आत्म-स्वरूप में जीना मनुष्य को सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द में ले जाता है क्योंकि यही आत्मा का सहज स्वभाव है, धर्म है।

कथा संकेत करती है कि चार युगों वाले इस विशाल सृष्टि-चक्र में प्रारम्भ में यद्यपि मनुष्य अपने मूल-स्वरूप आत्म-स्वरूप में ही स्थित होता है, परन्तु धीरे-धीरे कामनाओं के आकर्षण में खिंचता हुआ अपने मूल-स्वरूप आत्म-स्वरूप को भूलता जाता है और एक दिन तो आत्म-स्वरूप को पूर्णत: भूलकर अपने आप को देह ही समझने लगता है। आत्म-स्वरूप की यह विस्मृति ही मनुष्य का सबसे बड़ा अज्ञान है, जो उसे दु:खों में ड़ालता है। विशाल वन में विचरने वाले काम-मोहित क्रौञ्च-मिथुन में से नर क्रौंञ्च के वध के रूप में इसी तथ्य का चित्रण किया गया है।

चौथा कारक तत्त्व है— समष्टि मन से प्राप्त हुआ प्रेरणा रूप सहयोग जिसे कथा में ब्रह्मा जी के आगमन और वाल्मीकि को राम-चरित्र के वर्णन की प्रेरणा के रूप में इंगित किया गया है। यहाँ यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि किसी भी रचना के सृजन हेतु व्यक्तिगत स्तर पर विद्यमान समस्त विशेषताओं के विद्यमान होते हुए भी मनुष्य के मन में एक विशिष्ट प्रकार की किंकर्तव्यविमूढ़ता बनी रहती है, जिससे मनुष्य उस सृजन की ओर पूर्णत: उन्मुख नहीं हो पाता। परन्तु समष्टि में क्रियाशील सृजनात्मक शक्ति (ब्रह्मा) सहज रूप से मनुष्य को उस सृजन की ओर प्रवृत्त कर देती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Necessity and importance of Self-Knowledge as described in the story of Preface

In the beginning of Vālmīki Rāmāyaṇa (chapter 1,2), it is said that Vālmīki asked Nārada to tell about the person who is best in the world. Nārada described comprehensive and excellent character of Rāma in response and returned back to Devaloka.

After a while Vālmīki reached the shore of River Tamasā and found the place very clean. He chose to take bath there and asked for his Valkala from his disciple Bharadvāja.

While wandering in the forest situated nearby Vālmīki saw a pair of Krauñca birds. The pair was deeply attached and deluded. In the meantime a hunter aimed his arrow and the male bird died. On this Female bird wept bitterly, therefore Vālmīki, feeling intensely hurt, cursed the hunter and said that he will not to get due respect for a long time.

Vālmīki returned his āśrama but he constantly remembered and felt disturbed over the incidence. Suddenly, Brahmā jī came and inspired Vālmīki to write about Rāma which was described to him by Nārada.

The story is symbolic and describes the necessity and importance of Self-Knowledge.

Firstly, the story says that when Vālmīki thought about Ātmajñāna (Knowledge of Self) strongly, his whole consciousness, filled with that Ātmajñāna (Knowledge of Self) got attracted and strengthend his thought. This is the Law of Attraction symbolized as Nārada.

Secondly, the story tells that although a person is living in body-consciousness symbolized here as River Tamasā but Ātmajñāna (Knowledge of Self) is not far off. A person is capable in knowing his own Real Self. Consequently, Vālmīki decided to perform his duty to awaken that dormant knowledge (Ātmajñāna) symbolized as having his Valkala from his disciple Bharadvāja.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Thirdly, the story describes that Ātmajñāna (Knowledge of Self) and Purity of Thinking (Purity of Mind and Intellect) are closely connected with each other. This is the best combination which makes life peaceful and blissful. But one day or the other this combination breaks when Desire enters in between. Slowly, a person forgets his Real Self and begins to think himself as Body. Purity of thinking also disappears from life. This is Ignorance symbolized as Niṣāda (hunter), which brings sorrow and pain in everyone's life. Vālmīki contemplated over this situation and decided to establish Ātmajñāna again in the form of Rāmāyaṇa.

Fourthly and lastly, the story depicts that the Cosmic Creative Power symbolized as Brahma also helped in such mission. This Cosmic Creative Power (Brahma) came, inspired the person and disappeared.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२. राम का अवतरण

(आत्म-ज्ञान के अवतरण का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

राम के अवतरण के माध्यम से आत्म-ज्ञान के अवतरण का चित्रण

प्रत्येक मनुष्य शरीर और आत्मा का एक योग है। शरीर जड़ है परन्तु आत्मा चेतन। शरीर विनाशी है, विनष्ट होता है परन्तु आत्मा अविनाशी, कभी विनष्ट नहीं होती। शरीर स्थूल है परन्तु आत्मा अतिसूक्ष्म ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप। शरीर सभी को दिखाई देता है परन्तु आत्मा दिखाई नहीं देती, इसे केवल मन-बुद्धि के नेत्रों से ही देखा जा सकता है। शरीर एक रथ की भाँति है परन्तु आत्मा उस रथ को चलाने वाली एक शक्ति है– उस रथ का रथी।

कालचक्र के प्रवाह में पड़ा हुआ मनुष्य एक दिन शरीर और आत्मा के उपर्युक्त वर्णित अविच्छिन्न सम्बन्ध को भूल जाता है और स्वयं को शरीर रूप रथ को चलाने वाला रथी न मानकर रथ ही मानने लगता है। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप की यह विस्मृति ही मनुष्य का गहरा अज्ञान है, उसकी गहन मूर्च्छा है अथवा उसका अज्ञान-निद्रा में सो जाना है। स्व-स्वरूप की इस विस्मृति से मनुष्य के जीवन की दशा वैसी ही हो जाती है जैसी किसी मूर्च्छित अथवा निद्रित रथी द्वारा चलने वाले एक रथ की। जिस प्रकार यदि रथी मूर्च्छा में है अथवा नींद में है, तब रथ सुचारु रूप से नियन्त्रण में न होने के कारण अपने गन्तव्य तक नहीं जा पाता, उसी प्रकार अज्ञानी मनुष्य यह न जानने के कारण कि मैं वास्तव में कौन हूँ अर्थात् रथी के मूर्च्छित होने के कारण अपने जीवन रूपी रथ को सुचारु रूप से नहीं चला पाता और बहुत प्रयत्न करने पर भी अपने जीवन के उद्देश्य को ही नहीं समझ पाता, उद्देश्य तक पहुँचने की बात तो दूर रही।

मनुष्य चाहे जाने अथवा न जाने, आत्मा रूप रथी तो सदैव है और वही मस्तिष्क के एक विशेष स्थान-योग के अनुसार भ्रू-मध्य में बैठकर इस शरीर रूपी रथ को चलाता है। जिस दिन यह ज्ञान, यह समझ, यह स्मृति मनश्चेतना में अवतरित होती है कि वह आत्मा रूप रथी मैं ही हूँ, मैं ही इस शरीर रूप रथ को चलाता हूँ और अपनी इच्छा से इस शरीर रूप रथ को जिधर चाहूँ, उधर ले जा सकता हूँ– उसी दिन से जीवन में परिवर्तन आना शुरू हो जाता है और मनुष्य की जीवन-यात्रा दुःख से हटकर सुख की ओर अग्रसर होने लगती है। स्व-स्वरूप के इस ज्ञान, समझ अथवा स्मृति का मनश्चेतना में अवतरण ही राम का अवतरण है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अवतरण का अर्थ है– उतरना, प्रकट होना अथवा उदय होना। अत: मैं अजर-अमर-अविनाशी ज्योतिर्बिन्दु आत्मा हूँ– इस स्मृति का, इस ज्ञान का मन-बुद्धि में उदित हो जाना अथवा प्रकट हो जाना ही दशरथ के घर में राम का अवतरण है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Manifestation of Self-Knowledge is Manifestation of Rāma

Every person is a combination of two – the body and the soul. Body is like a chariot and soul is like charioteer. A chariot controlled by a charioteer serves all purpose that a charioteer wishes. But in the long journey of births and deaths, a person forgets his Real Self and thinks himself a chariot (body) instead of a charioteer (soul). This thought is a deep sleep which brings him sorrow, because a sleeping driver never handles a car properly and it makes the life miserable making so many accidents.

The day a person awakens and remembers his Real Self, he again becomes the charioteer of his chariot. This Awakening is called Self-Knowledge. This is a special consciousness symbolized as Rāma.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. राम के पूर्वज

(आत्म-ज्ञान के अवतरण से पूर्व मनश्चेतना
की विभिन्न स्थितियों का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
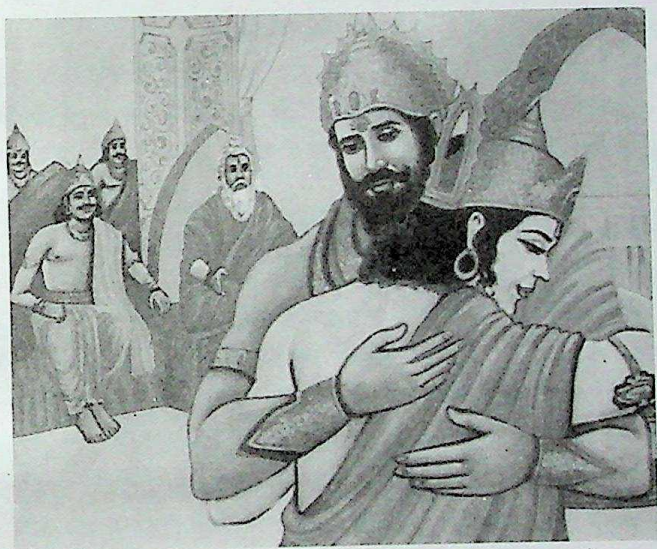
राम के पूर्वज अर्थात् आत्म-ज्ञान के अवतरण से पूर्व मनश्चेतना की विभिन्न स्थितियों का चित्रण

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि देह-ज्ञान अर्थात् मैं देह हूँ– इस ज्ञान में रहते हुए आत्म-ज्ञान अर्थात् मैं अजर-अमर-अविनाशी, ज्योतिर्बिन्दु-स्वरूप आत्मा हूँ, इस ज्ञान का प्रकटन अकस्मात् नहीं होता। मनुष्य की चेतना धीरे-धीरे ऊँचाई की ओर अग्रसर होती हुई एक दिन आत्म-ज्ञान में अवस्थित हो पाती है। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि आत्म-ज्ञान मनुष्य-चेतना की आरोहण यात्रा का ऊपरी सोपान है। जैसे सीढ़ी के एक-एक सोपान को पार करके ही ऊपरी सोपान तक पहुँचा जा सकता है, उसी प्रकार आत्म-ज्ञान रूपी ऊपरी सोपान तक पहुँचने के लिए भी मनुष्य को मनश्चेतना की विभिन्न स्थितियों को पार करना पड़ता है। मनश्चेतना की इन विभिन्न स्थितियों को ही पौराणिक साहित्य में राम के पूर्वज कहकर इंगित किया गया है।

पूर्वज शब्द पूर्व तथा ज (जायते) नामक दो शब्दों के योग से बना है। पूर्व का अर्थ है– पहले और ज (जायते) का अर्थ है– होना या घटित। अत: पूर्वज का अर्थ हुआ– राम रूप आत्म-ज्ञान के अवतरण से पहले होने वाली मनश्चेतना की विभिन्न स्थितियां। पौराणिक साहित्य में ये स्थितियां वंशावली के नाम से उल्लिखित हैं। यथा- अदिति कश्यप → विवस्वान् → वैवस्वत मनु → इक्ष्वाकु → विकुक्षि(शशाद) → ककुत्स्थ(पुरञ्जय) → खट्वांग → दिलीप → रघु → अज → दशरथ → राम

चूँकि यह वंशावली मनश्चेतना की ही विभिन्न स्थितियां हैं, अत: प्रमुख-प्रमुख स्थितियों के आधार पर राम को सूर्यवंशी (विवस्वान् स्थिति), इक्ष्वाकुवंशी (इक्ष्वाकु स्थिति), काकुत्स्थ (ककुत्स्थ स्थिति), रघुवंशी (रघु स्थिति) तथा दाशरथि (दशरथ-पुत्र) कहा गया है। तात्पर्य यह है कि राम रूपी आत्म-ज्ञान के अवतरण हेतु व्यक्तित्व में आत्मसात् करने योग्य उपर्युक्त वर्णित विभिन्न अनिवार्य स्थितियों को ही राम के पूर्वज या वंशज कहकर संकेतित किया गया है।

१. राम रूप आत्म-ज्ञान के अवतरण हेतु सबसे पहली अनिवार्यता है– विवस्वान् स्थिति अर्थात् मन का (मनुष्य का) जागतिक वासनाओं से रहित होना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

पौराणिक साहित्य में कश्यप और अदिति के विवस्वान्, वामन, इन्द्र, सविता, पूषा, त्वष्टा, धाता, विधाता, भग, अर्यमा, मित्र तथा वरुण नामक पुत्रों को अदिति के पुत्र होने से आदित्य कहा गया है। अदिति मनुष्य की अखण्डित-चेतना (अर्थात् शरीर और आत्मा के योग में स्थित चेतना) की प्रतीक है। अतः अदिति के ये पुत्र, जिन्हें आदित्य कहा जाता है, वास्तव में मनुष्य की अखण्डित-चेतना के गुणों को इंगित करते हैं।

पहला गुण है– विवस्वान् अर्थात् वासना रहितता, दूसरा गुण है– वामन अर्थात् आत्मस्थ मन की सूक्ष्मता, तीसरा गुण है– इन्द्र अर्थात् मन की शुद्धता, चौथा गुण है– सविता अर्थात् उत्पादकता, पाँचवां गुण है– पूषा अर्थात् पोषणकर्म, छठा गुण है– त्वष्टा अर्थात् व्यक्तित्व में काटछांट करके उसका नव निर्माण करना, सातवां गुण है– धाता अर्थात् अस्तित्व के प्रति स्वीकार्यता, आठवां गुण है– विधाता अर्थात् अपने भाग्य का निर्माता होना, नवां गुण है– भग अर्थात् पूर्वजन्म के कर्म रूप बीजों से कृषि करना, दसवां गुण है– अर्यमा अर्थात् यम-नियम में सहज स्थिति, ग्यारहवां गुण है– मित्र अर्थात् दिव्यता के कारण सबका मित्र और बारहवां गुण है– वरुण अर्थात् दैवी-आसुरी चेतना का अधिपति होना। आदित्य शब्द सूर्य का भी पर्यायवाची है। अतः इस विवस्वान् स्थिति के आधार पर ही राम को सूर्यवंशी कहा गया है।

२. राम रूप आत्म-ज्ञान के अवतरण हेतु दूसरी अनिवार्यता है– इक्ष्वाकु स्थिति अर्थात् मन (मनुष्य) का अन्तर्द्रष्टा होना

इक्ष्वाकु शब्द इक्ष् धातु में वाक् शब्द के योग से बना है। इक्ष् का अर्थ है– देखना और वाक् का अर्थ है– पश्यन्ती वाक् अर्थात् भीतर की ओर देखने वाली मनःशक्ति। जब व्यक्तित्व विवस्वान् अर्थात् जागतिक वासना से रहित हो जाता है, तब उसमें इक्ष्वाकु अर्थात् अन्तर्दर्शन की सामर्थ्य जाग्रत होती है। अन्तर्द्रष्टा होने पर मनुष्य अपने ही मन के भीतर रहने वाले उस विचार-संग्रह को स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ हो जाता है, जिसे उसने ही जन्म-जन्मान्तरों की यात्रा में अर्जित विभिन्न मान्यताओं, धारणाओं तथा अनुभवों के आधार पर संग्रहीत किया है।

अन्तर्द्रष्टा होकर मनुष्य अपनी ऊर्ध्वमुखी चेतना – जिसे पौराणिक साहित्य में वसिष्ठ कहा गया है– की सहायता से अन्तर्मन में पड़े हुए व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचार-संग्रह को बाहर निकाल देता है। इस व्यर्थ और नकारात्मक विचार-संग्रह को ही भागवत पुराण नवम स्कन्ध अध्याय (६) में इक्ष्वाकु कथा के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अन्तर्गत विकुक्षि नाम दिया गया है, जो व्यक्तित्व की दिव्यता को खा लेने अथवा नष्ट करने के कारण शशाद भी कहा गया है।

शशाद शब्द शश और आद् नामक दो शब्दों के योग से बना है। शश शब्द का अर्थ है– चन्द्रमा का प्रकाश अर्थात् मन या व्यक्तित्व की दिव्यता और आद् (अत्ति धातु से निर्मित) का अर्थ है– खा लेने वाला। अतः शशाद का अर्थ हुआ– मन की दिव्यता को खा लेने या नष्ट कर देने वाला। तात्पर्य यह है कि अन्तर्दर्शन की सामर्थ्य से युक्त होने पर ही मनुष्य अपने व्यक्तित्व की दिव्यता को नष्ट करने वाले नकारात्मक विचारों को मन के राज्य से बाहर निकाल फेंकता है। इस इक्ष्वाकु स्थिति के आधार पर ही राम को इक्ष्वाकुवंशी कहा गया है।

३. राम रूप आत्म-ज्ञान के अवतरण हेतु तीसरी अनिवार्यता है– ककुत्स्थ अथवा पुरञ्जय स्थिति

ककुत्स्थ (ककुद् स्थ) का अर्थ है– श्रेष्ठ विचारों में स्थिति। मन के क्षेत्र से नकारात्मक विचार- संग्रह के बाहर निकल जाने पर अब मनुष्य का मन सकारात्मक, श्रेष्ठ विचारों में रमने लगता है। इसी स्थिति के कारण राम को ककुत्स्थ वंशी, अतः काकुत्स्थ कहा गया है। श्रेष्ठ विचारों में रहने का अर्थ है– व्यर्थ विचारों पर विजय। इसीलिए पौराणिक साहित्य में ककुत्स्थ को पुरञ्जय नाम भी दिया गया है।

४. राम रूप आत्म-ज्ञान के अवतरण हेतु चौथी अनिवार्यता है– रघु स्थिति

रघु शब्द लंघ् धातु में कु के योग से बना है। लंघ् के ल का र होकर न का लोप हो जाने से रघु शब्द घटित हुआ है और इसका अर्थ है– परे चले जाना अथवा अतिक्रमण करना। श्रेष्ठ विचारों में स्थित हो जाने पर अर्थात् ककुत्स्थ होने पर मनुष्य अपने जीवन में उपस्थित हुई विपरीत स्थितियों का सहज रूप से अतिक्रमण करने लगता है। सुखी जीवन के लिए यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थिति है, अतः इस रघु स्थिति के आधार पर ही राम को रघुवंशी कहा गया है। पौराणिक साहित्य में रघु के विषय में कथित कौत्स ऋषि की कथा भी उपर्युक्त तथ्य को ही पुष्ट करती है क्योंकि कौत्स (अधम या तिरस्करणीय अर्थ वाले कुत्सा शब्द से निर्मित) ऋषि का अर्थ ही है– विपरीत स्थिति।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

५. राम रूप आत्म-ज्ञान के अवतरण हेतु पाँचवी और अन्तिम अनिवार्यता है– दशरथ अर्थात् दशरथ स्थिति जो राम (आत्म-ज्ञान) के जनक (पिता) ही हैं

दशरथ स्थिति का तात्पर्य यह है कि उपर्युक्त वर्णित चारों स्थितियों– विवस्वान् अर्थात् वासना रहित स्थिति, इक्ष्वाकु अर्थात् अन्तर्दर्शन की सामर्थ्य, ककुत्स्थ अर्थात् श्रेष्ठ विचारों का संधारण तथा रघु अर्थात् विपरीत स्थितियों के अतिक्रमण की सामर्थ्य– को क्रमश: पार करते हुए एक शान्त, शुद्ध, स्थिर मन का निर्माण होता है। यह शान्त, शुद्ध, स्थिर मन जिस समय आत्म-ज्ञान-प्राप्ति (पुत्र-प्राप्ति) की उत्कट लालसा से युक्त होता है और उसकी प्राप्ति के लिए अन्त:स्फूर्त्त चेतना से प्रेरित होकर साक्षी भाव में स्थित हो जाता है– उस स्थिति में ही एक विशिष्ट चेतना का अवतरण होता है, जो मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप (मैं अजर-अमर-अविनाशी, ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– इस संकल्प में स्थित) में अवस्थित कराती है। मन-बुद्धि के भीतर इस विशिष्ट चेतना (अथवा आत्म-ज्ञान) का अवतरण ही दशरथ के घर में राम का अवतरण है।

कथा का सार स्वरूप

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि जब तक मनुष्य का मन बहिर्मुखी बना रहता है, अर्थात् जागतिक-भौतिक पदार्थों की वासना-लालसा में फँसा रहता है, तब तक वह स्व को जानने अर्थात् मैं कौन हूँ, यह जानने के लिए उत्सुक नहीं होता। परन्तु जैसे ही वह मन जागतिक कामनाओं से मुक्त होता है, अर्थात् विवस्वान् बनता है, वैसे ही वह अन्तर्द्रष्टा होकर अपने भीतर चलने वाले भाँति-भाँति के विचारों को भी देखने लगता है, अर्थात् इक्ष्वाकु बन जाता है।

अन्तर्द्रष्टा होने पर ही वह यह देख पाता है कि नाना प्रकार की धारणाओं एवं मान्यताओं के कारण उत्पन्न हुए नकारात्मक संकल्पों, विचारों अथवा भावों का एक विशाल संग्रह वह अपने ही अन्तर में छिपाए हुए है (विकुक्षि स्थिति) जो उसके मन की दिव्यता को निरन्तर खाता अर्थात् नष्ट करता रहता है (शशाद स्थिति)।

परन्तु शनै:-शनै: अपनी ही ऊर्ध्वमुखी चेतना (वसिष्ठ) से प्रेरित होकर मनुष्य का वह अन्तर्द्रष्टा मन (इक्ष्वाकु) जब उस विचार संग्रह (विकुक्षि) को अपने आन्तरिक राज्य (मन) से बाहर निकाल देता है, तब विचारों के पुर को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जीतने वाला अर्थात् पुरञ्जय बन जाता है। यह एक ककुद् अर्थात् ऊँची स्थिति है, इसलिए इस स्थिति को ककुत्स्थ अर्थात् श्रेष्ठ विचारों में स्थिति भी कहा गया है।

श्रेष्ठ विचारों में स्थित मनुष्य शनैः-शनैः जीवन में उपस्थित होने वाली विपरीत स्थितियों का अतिक्रमण या लंघन करने में समर्थ हो जाता है (रघु स्थिति) और फलस्वरूप अत्यन्त शान्त, शुद्ध तथा स्थिर मन (दशरथ स्थिति) को प्राप्त हो जाता है।

इस शान्त, शुद्ध तथा स्थिर मन में ही आत्म-ज्ञान-प्राप्ति (पुत्र-प्राप्ति) की प्रगाढ़ इच्छा उत्पन्न होती है तथा अन्तः स्फूर्त्त चेतना से प्रेरित होकर साक्षी भाव के प्रकट होने पर एक दिन आत्म-ज्ञान अर्थात् मैं शरीर नहीं हूँ अपितु इस शरीर रूपी यन्त्र को चलाने वाली एक चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– का उदय हो जाता है, जिसे दशरथ के घर में राम का जन्म होना कहा गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Different States of Consciousness as depicted through the Ancestors of Rāma

Knowing One's Self is a higher state of consciousness. This is Awakening from deep sleep. This is also a Transformation of Consciousness from Body to Soul. But this transformation does not occur suddenly. A person has to go through number of steps to reach this state. All these steps are the Different States of Consciousness and are symbolized as Ancestors of Rāma.

At first step, a person becomes free from worldly desires. This state of consciousness is said as Vivasvāna in Paurāṇic literature. Vivasvāna is Āditya (son of Aditi) which is a synonym of sun. Therefore this first state of consciousness prior to Self-Knowledge is first Ancestor of Rāma and that is why Rāma is called Sūryavaṁśī.

Introspection is the second step prior to Self-Knowledge. Being introspective a person is able to see all his waste and negative thoughts wandering in his mind. He knows that his own thoughts are destroying divinity of his personality. He becomes aware and tries his best to be free from it. This state of consciousness is called Ikṣvāku and based on this state, Rāma is called Ikṣvākuvaṁśī.

Introspection makes a person totally aware of his own thoughts and slowly the mind gets filled with elevated positive thoughts. This is third step and this state of consciousness is called Kakutstha in Paurāṇic literature. Depending on this state, Rāma is called as Kākutstha.

Passing through these steps, a person attains next state of consciousness called Raghu. Raghu means to overcome all ill situations spontaneously. Based on this state, Rāma is called Raghuvaṁśī.

These states make the mind pure, peaceful and stable. This state of consciousness is called Daśaratha – Father of Rāma. This is the last step prior to Self Knowledge. Inspired with his pure inner consciousness, a pure and stable mind craves strongly to know his own Self. At last, the Knowledge of Self manifests which is manifestation of Rāma.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४. राम के अवतरण की प्रक्रिया-कथा

(आत्म-ज्ञान के अवतरण की प्रक्रिया का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
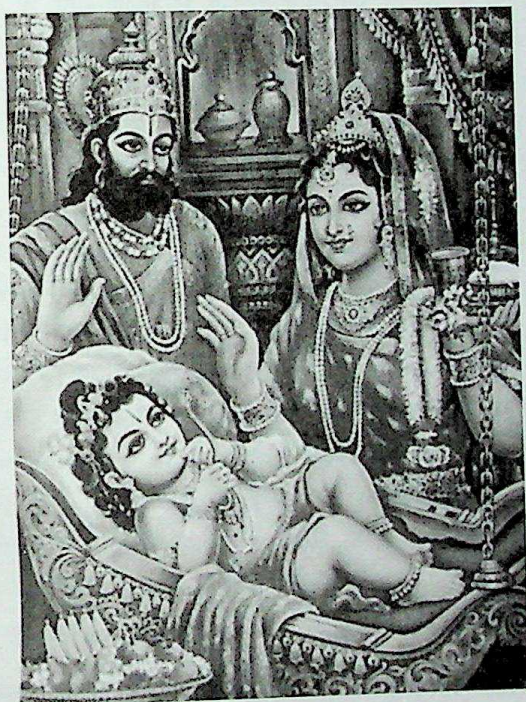
राम रूपी आत्म-ज्ञान के अवतरण की प्रक्रिया का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड (सर्ग १६) में राम के अवतरण की जो प्रक्रिया वर्णित है, वह वास्तव में आत्म-ज्ञान के अवतरण की प्रक्रिया को ही इंगित करती है।

राम के पूर्वज शीर्षक के अन्तर्गत हम स्पष्ट कर चुके हैं कि मनश्चेतना की विवस्वान् (वासना रहित स्थिति), इक्ष्वाकु (अन्तर्दर्शन), ककुत्स्थ (श्रेष्ठ विचारों का संधारण) तथा रघु (विपरीत स्थितियों का सहज अतिक्रमण) नामक स्थितियों को पार करके ही चेतना दशरथ स्थिति को प्राप्त होती है। दशरथ अयोध्या-पति हैं और अयोध्या-पति दशरथ का अर्थ है– मन की शुद्ध, शान्त, स्थिर स्थिति।

दशरथ (दश-रथ) शब्द दश और रथ से बना है, जिसका अर्थ है– दस इन्द्रियों– ५ ज्ञानेन्द्रियों तथा ५ कर्मेन्द्रियों– के रथ पर बैठने वाला मन तथा अयोध्या (अ-योध्या) शब्द किसी प्रकार के युद्ध अर्थात् कलुषता, अशुद्धता, अस्थिरता आदि से रहित शुद्ध व्यक्तित्व को इंगित करता है। अतः शुद्ध, शान्त, स्थिर व्यक्तित्व का स्वामी शुद्ध-शान्त-स्थिर मन ही अयोध्या-पति दशरथ कहलाता है। अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या कथन से उपर्युक्त तथ्य ही स्पष्ट होता है।

मन की यह शुद्ध, शान्त तथा स्थिर स्थिति (दशरथ) ही राम रूप आत्म-ज्ञान के प्राकट्य के लिए उपयुक्त आधारभूमि है। इस आधारभूमि में राम रूप आत्म-ज्ञान के प्रकटन की प्रक्रिया को वाल्मीकि रामायण में यद्यपि बहुत विस्तार से वर्णित किया गया है, परन्तु कथा का संक्षिप्त स्वरूप यह है –

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

वृद्धावस्था आ जाने पर भी जब दशरथ को कोई पुत्र प्राप्त नहीं हुआ, तब पुत्र-प्राप्ति की उत्कट लालसा से उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करने का विचार किया और वसिष्ठ तथा सुमन्त्र को अपने इस विचार से अवगत कराया। वसिष्ठ ने राजा के प्रस्ताव का अनुमोदन किया परन्तु सुमन्त्र ने कहा कि पहले आप रोमपाद राजा के यहाँ रहने वाले ऋष्यशृंग मुनि को अयोध्या में ले आइए। वही आपका यज्ञ कराएँगे। सुमन्त्र के कथनानुसार दशरथ ऋष्यशृंग को ले आए और उन्होंने पहले अश्वमेध तथा बाद में पुत्रकामेष्टि यज्ञ को सम्पन्न कराया।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यज्ञ की अग्नि से एक देदीप्यमान पुरुष प्रकट हुआ जिसके हाथ में पायस से भरी हुई सोने की थाली थी और वह थाली चांदी के ढक्कन से ढकी थी। पुरुष ने कहा कि मुझे प्रजापति लोक से आया हुआ प्राजापत्य पुरुष जानो। पुरुष ने थाली में रखा हुआ पायस दशरथ को प्रदान किया और दशरथ ने वह पायस अपनी तीनों रानियों में बांट दिया। सबसे पहले उन्होंने पायस का आधा भाग कौशल्या को दिया। फिर बचे हुए आधे भाग में से आधा भाग सुमित्रा को प्रदान किया तथा शेष बचे हुए आधे भाग में से भी आधा भाग कैकेयी को तथा आधा भाग पुनः सुमित्रा को दे दिया। तीनों रानियां गर्भवती हुई और समय आने पर कौशल्या से राम का, सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न का, कैकेयी से भरत का प्राकट्य हुआ।

कथा की प्रतीकात्मकता

सम्पूर्ण कथा प्रतीकात्मक है। अतः कथा के प्रतीकों को समझ लेने पर कथा का तात्पर्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

१. दशरथ के भीतर पुत्र-प्राप्ति की उत्कट लालसा उत्पन्न होने का अर्थ है–

शुद्ध, शान्त, स्थिर मन में आत्म-ज्ञान रूप श्रेष्ठतम गुण-प्राप्ति की प्रगाढ़ इच्छा का जाग्रत होना। पौराणिक साहित्य में पुत्र शब्द सर्वत्र गुण का वाचक है। आत्म-ज्ञान अर्थात् मैं अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– इस रूप में अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेना एक श्रेष्ठतम गुण है।

२. दशरथ के भीतर अश्वमेध यज्ञ करने का विचार जाग्रत होने का अर्थ है–

शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (मनुष्य) का आत्म-ज्ञान की प्राप्ति हेतु अपने मन को अधिक से अधिक श्रेष्ठ स्वरूप प्रदान करने के विचार से युक्त होना। अश्वमेध (अश्व- मेध) शब्द का अर्थ है– मन को श्रेष्ठ बनाना। अतः आत्म-ज्ञान का अवतरण तभी संभव है, जब शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (मनुष्य) आत्म-ज्ञान हेतु मन को श्रेष्ठ बनाने की दिशा में सतत प्रयासरत रहे।

३. वसिष्ठ द्वारा अश्वमेध यज्ञ का अनुमोदन–

वसिष्ठ शब्द ऊर्ध्वमुखी चेतना का वाचक है अर्थात् जो चेतना मनुष्य-मन को सर्वदा ऊँचाई की ओर ले जाना चाहती है, वह वसिष्ठ कहलाती है। शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) इस ऊर्ध्वमुखी चेतना (वसिष्ठ) से सदैव संयुक्त रहता है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और वसिष्ठ चेतना भी मन की श्रेष्ठता के लिए (अश्वमेध यज्ञ के लिए) सदैव उत्सुक तथा तत्पर रहती है। इसे ही कथा में यह कहकर इंगित किया गया है कि दशरथ ने जब वसिष्ठ के समक्ष अश्वमेध यज्ञ करने का विचार प्रस्तुत किया, तब वसिष्ठ ने उसका अनुमोदन किया।

४. रोमपाद तथा ऋष्यशृंग–

राजा रोमपाद (रोम-पात) का अर्थ है– रोमांच से रहित शान्त जीवात्मा। ऋष्यशृंग मुनि अन्तःस्फुरित चेतना को इंगित करते हैं। अन्तःस्फुरित चेतना का अर्थ है– किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए मनुष्य की अपनी चेतना में उस कार्य को करने की स्फुरणा (इच्छा और प्रेरणा) होना और शान्त अन्तस्तल में (राजा रोमपाद के राज्य में) विद्यमान इस स्फुरणा का व्यक्तित्व के तल पर भी प्रकट होना। इसे ही कथा में ऋष्यशृंग मुनि को रोमपाद राजा के राज्य से अयोध्या में लाना कहकर इंगित किया गया है।

५. सुमन्त्र का अर्थ है– श्रेष्ठ मन्त्रणा–

शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) को किसी बाह्य मन्त्रणा की आवश्यकता नहीं होती। वह आन्तरिक श्रेष्ठ मन्त्रणा से युक्त होता है। यह आन्तरिक मन्त्रणा (सुमन्त्र) ही मन (दशरथ) को परामर्श देती है कि जो भी कार्य तुम करने जा रहे हो– वह अन्तःस्फूर्त चेतना से प्रेरित होकर होना चाहिए, किसी बाह्य प्रभाव से प्रेरित होकर नहीं, क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य किसी व्यक्ति अथवा स्थिति के संग से अल्पकालिक आवेश में आकर कार्य को प्रारम्भ तो कर देता है परन्तु अपने भीतर की स्फुरणा न होने के कारण वह कार्य सम्पन्न नहीं हो पाता। इस तथ्य को ही कथा में यह कहकर इंगित किया गया है कि सुमन्त्र ने दशरथ को ऋष्यशृंग मुनि को अयोध्या में लाने तथा अश्वमेध यज्ञ कराने का परामर्श दिया।

६. यज्ञ की अग्नि का अर्थ है–

आत्म-ज्ञान-प्राप्ति की दिशा में प्रयत्नशील मनुष्य के भीतर प्रज्वलित चेतना रूप अग्नि।

७. यज्ञ की अग्नि से प्राजापत्य पुरुष के प्राकट्य का अर्थ है–

प्रज्वलित मनश्चेतना रूप अग्नि से एक प्रखर, तेजस्वी, देदीप्यमान विचार का प्रकट होना। प्राजापत्य का अर्थ है– प्रजापति से उत्पन्न और प्रजापति का अर्थ है–

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रजाओं का पति। आध्यात्मिक स्तर पर मनुष्य के संकल्प, विचार, इच्छाएँ तथा भावनाएँ ही उसकी प्रजाएँ कहलाती हैं और इन प्रजाओं का पति है– उसका अपना मन अथवा संकल्पों को रचने की उसकी शक्ति। इसी रचना शक्ति से मनुष्य एक अत्यन्त प्रभावी, तेजस्वी एवं देदीप्यमान विचार को रचता है, जिसे कथा में सूर्य के समान देदीप्यमान और अग्नि के समान तेजस्वी प्राजापत्य पुरुष कहा गया है।

८. स्वर्ण की थाली–

स्वर्ण की थाली मनुष्य के हिरण्ययकोश को इंगित करती है।

९. पायस–

पायस शब्द हिरण्यय कोश में विद्यमान आनन्दपूर्ण आत्मा (blissful soul) को इंगित करता है। पायस का सामान्य अर्थ है– खीर, जो पय:(दुग्ध) और अक्षत (चावल) के मिश्रण से तैयार होती है। आध्यात्मिक दृष्टि से आनन्दमय कोश की चेतना पय: (दुग्ध) कहलाती है और अक्षत (अ-क्षत अर्थात् जो कभी विनष्ट नहीं होता) तो केवल आत्मा ही है। इस प्रकार आध्यात्मिक स्तर पर पायस का अर्थ हुआ– आनन्दपूर्ण आत्मा।

१०. सोने की थाली में रखी पायस चांदी के ढ़क्कन से ढ़की होने का अर्थ है–

अपने ही हिरण्यय कोश में विद्यमान आनन्दपूर्ण आत्मा का विस्मृति के ढ़क्कन से ढ़क जाना। जैसे चांदी नामक धातु समय के प्रभाव से प्रभावित होकर कालिमा से ढ़क जाती है, उसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरों की यात्रा में देह-भाव में बंधकर आत्मा भी, जो मनुष्य का अपना स्वरूप है– विस्मृति रूपी कालिमा से ढ़क जाती है।

११. प्राजापत्य पुरुष द्वारा दशरथ को पायस देने का अर्थ है–

मनश्चेतना में प्रकट हुए एक प्रखर, तेजस्वी एवं देदीप्यमान विचार का मनुष्य मन (दशरथ) को इस भाव से भर देना कि तुम ही हो आनन्दपूर्ण आत्मा।

१२. दशरथ की तीन रानियाँ-

तीन रानियाँ मन की तीन शक्तियों को इंगित करती हैं। मन की ज्ञानशक्ति कौशल्या है, क्रियाशक्ति सुमित्रा है तथा भावशक्ति या इच्छाशक्ति कैकेयी है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१३. पायस ग्रहण कर रानियों के गर्भवती होने का अर्थ है–

मन:शक्तियों द्वारा इस आत्म-विचार को पूर्णत: आत्मसात् कर लेना कि मैं आनन्दपूर्ण आत्मा ही हूँ।

१४. एक पुत्र के स्थान पर ४ पुत्रों की प्राप्ति–

एक पुत्र के स्थान पर ४ पुत्रों की प्राप्ति इस आध्यात्मिक सत्य को इंगित करती है कि आत्म-ज्ञान के अवतरण (राम के अवतरण) के साथ तीन अन्य गुणों का अवतरण भी अवश्यम्भावी है।

जैसे ही मनुष्य को यह ज्ञान होता है कि मैं देह नहीं हूँ अपितु इस देह को चलाने वाली एक शक्ति हूँ, आत्मा हूँ (राम का अवतरण)– वैसे ही उसे तत्काल यह भी समझ में आ जाता है कि मैं शक्ति ही तो मन (creative power) होकर संकल्पों (thoughts) की रचना करती हूँ। अत: अपने समस्त संकल्पों की रचयिता मैं शक्ति (आत्मा) ही हूँ। अब प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति में मैं आत्मा अथवा शक्ति जैसा चाहूँ, वैसा संकल्प रचकर अपने भाग्य की निर्माता हो सकती हूँ। यह ज्ञान होना अर्थात् विचारों का निर्माता-नियन्ता होना ही लक्ष्मण नामक पुत्र का अवतरण है।

आत्म-ज्ञान के साथ ही साथ यह ज्ञान भी अवतरित होता है कि जब मैं आत्मा ही हूँ, तो आत्मा के गुणों (सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द) से भी मैं स्वाभाविक रूप से ओतप्रोत हूँ और इन गुणों को जीवन-व्यवहार में बांटना ही मुझ आत्मा के जीवन का उद्देश्य है। आत्म-गुणों की यह सहज स्वाभाविक स्थिति ही भरत नामक पुत्र का अवतरण है।

आत्म-ज्ञान के साथ ही साथ यह ज्ञान भी अवतरित होता है कि जब मैं आत्मा सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप आत्म-गुणों से स्वभावत: ओतप्रोत हूँ, तब मैं आत्मा देह-भाव के कारण उत्पन्न होने वाले सभी नकारात्मक विचारों, भावों अथवा संकल्पों (शत्रुओं) का भी नाश करने में समर्थ हूँ। इसे ही शत्रुघ्न का अवतरण कहकर इंगित किया गया है।

१५. पायस का असमान वितरण–

आत्म-ज्ञान (राम) के अवतरण के साथ क्रमश: अवतरित हुए उपर्युक्त वर्णित तीन गुणों (लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) के आधार पर ही पायस के असमान वितरण के रहस्य को सहज रूप से समझा जा सकता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१६. पुत्रों के प्राकट्य हेतु माताओं का चयन–

कौशल्या ज्ञानशक्ति है, इसलिए राम रूप आत्म-ज्ञान को कौशल्या से सम्बद्ध किया गया है। सुमित्रा क्रियाशक्ति है, इसलिए रचनात्मक और संहारक क्रियाशक्तियों अर्थात् संकल्पों को रचने वाली शक्ति लक्ष्मण तथा शत्रु-विनाशक शक्ति शत्रुघ्न को सुमित्रा से सम्बद्ध किया गया है। कैकेयी भावशक्ति या इच्छाशक्ति है, इसलिए सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द प्रभृति आत्म-भावों को कैकेयी से सम्बद्ध किया गया है।

कथा का अभिप्राय

आत्म-ज्ञान के अवतरण की प्रक्रिया को बतलाने वाले उपर्युक्त वर्णित प्रतीकों को समझ लेने पर यह तथ्य अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि अशुद्ध, अशान्त, अस्थिर मन (मनुष्य) कभी भी स्व-स्वरूप को जानने की ओर उन्मुख नहीं होता।

विभिन्न साधनाओं (विवस्वान, इक्ष्वाकु, ककुत्स्थ तथा रघु) को सम्पन्न करते हुए शुद्ध, शान्त तथा स्थिर मन (दषरथ) में ही स्व-स्वरूप को जानने की प्रगाढ़ इच्छा उत्पन्न होती है और इस इच्छापूर्ति के लिये वह आन्तरिक स्फुरणा से प्रेरित हुआ तत्सम्बन्धी साधना में प्रवृत्त होकर मन को अधिक से अधिक श्रेष्ठ बनाने के लिये प्रयत्न करता हे।

इस श्रेष्ठ मन में ही शनैः-शनैः यह तेजस्वी एवं दीप्त विचार (प्राजापत्य पुरुष) उदित होता है कि मनुष्य जिसे आत्मा कहता है, वही तो वह है। यह आत्मा शरीर की भाँति कोई अवयव या अंग नहीं है। यह आत्मा स्वर्णिम स्थान में स्थित एक शक्ति है, एक चेतना है, एक सत्ता है और इसका होना ही मनुष्य का होना है। इस शक्ति या आत्मा के होने से ही मनुष्य अपने होने का अनुभव करता है और इस शक्ति या आत्मा को ही शरीर अनेकानेक रूपों मे प्रकट कर रहा है।

केवल शरीर-भाव में रहने के कारण मनुष्य अपने इस होने को भूल गया है। अब अपने मन में इस स्मृति अथवा ज्ञान को आत्मसात् कर लेना है। जैसे-जैसे यह स्मृति अथवा ज्ञान मन में भलीभाँति आत्मसात् हो जाता है, वैसे-वैसे ही यह आत्म-स्मृति अथवा आत्म-ज्ञान कि "मैं देह नहीं हूँ अपितु इस देह को चलाने वाला आत्मा हूँ"– मनुष्य के जीवन में भी अवतरित हो जाता है, जिसे राम का अवतरण कहा गया है।

आत्म-ज्ञान (राम) के अवतरण के साथ ही मनुष्य को तत्काल यह ज्ञान भी हो जाता है कि मैं आत्मा ही मन होकर हर समय संकल्पों की रचना कर रहा हूँ। अतः मैं आत्मा जब चाहूँ जैसा चाहूँ– वैसा संकल्प रच सकता हूँ अर्थात समस्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कर्मों के बीज रूप संकल्प की रचना करना अब पूर्णतः मेरे अधिकार में है। यही लक्ष्मण नामक पुत्र का अवतरण है।

आत्म-ज्ञान (राम) के साथ ही साथ यह ज्ञान भी अवतरित होता है कि मैं आत्मा हूँ तो आत्मा के सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द आदि गुणों से भी मैं स्वाभाविक रूप से ओतप्रोत हूँ। यही भरत नामक पुत्र का अवतरण है।

तथा आत्म-ज्ञान (राम) के साथ यह ज्ञान भी अवतरित होता है कि जब मैं आत्मा आत्म-गुणों से स्वभावतः ओतप्रोत हूँ, तब देह-भाव के कारण उत्पन्न होने वाले सभी नकारात्मक संकल्पों (शत्रुओं) का भी नाश करने में मैं समर्थ हूँ। इसे ही शत्रुघ्न का अवतरण कहकर इंगित किया गया है।

आत्म-ज्ञान (राम) के अवतरण के साथ अवतरित हुए उपर्युक्त वर्णित तीन गुणों (लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न) के आधार पर ही पायस के असमान वितरण की संकल्पना को सहज रूप से समझा जा सकता है। महत्त्व की दृष्टि से सबसे प्रमुख है– आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरुप का ज्ञान (राम), जिसे आधे पायस के रूप में इंगित किया गया है। दूसरे स्थान पर है– विचारों का निर्माता-नियन्ता होना (लक्ष्मण), जिसे आधे पायस के आधे भाग के रूप में इंगित किया गया है तथा तीसरे एवं चौथे स्थान पर हैं– आत्म-गुणों से युक्त होना (भरत) तथा शत्रुओं का विनाशक होना (शत्रुघ्न), जिसे आधे पायस के आधे भाग के भी आधे-आधे भागों के रूप में इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Manifestation Process of Self-Knowledge through the manifestation Process of Rama

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Bālakāṇḍa, chapter 16), it is said that king Daśaratha grew older but did not get a son. Inspired from his great desire, he decided to perform Aśvamedha yajña. Guru Vaśiṣṭha agreed but his minister Sumantra suggested him that he should first bring Ṛṣi Ṛṣyaśṛṅga from the kingdom of king Romapāda. Daśaratha accepted and the yajña was performed.

From the fire of yajña a handsome person (Prājāpatya Puruṣa) appeared with a golden plate in his hand. There was Pāyasa in the plate which was covered with a silver covering. He offered Pāyasa to Daśaratha and Daśaratha distributed it to his three queens– Kauśalyā, Kaikeyī and Sumitrā. All the queens became pregnant and gave birth to four sons. Rāma was born from Kauśalyā, Bharata from Kaikeyī and Lakṣmaṇa and Śatrughna from Sumitrā.

In previous article, it was made clear that manifestation of Rāma is the manifestation of Self Knowledge and this Knowledge of Self (I am soul, not a body) manifests only through a pure, peaceful and stable mind called Daśaratha.

To describe it's process, now the story tells that this pure, peaceful and stable mind strongly desires to know his own Real Self and being inspired by his inner consciousness, this pure and stable mind again moves towards attaining higher purity called Aśvamedha yajña.

Slowly a very beautiful, shining thought immerges in consciousness symbolized as Prājāpatya Puruṣa. This shining thought makes mind aware of the truth that true Self always lies within. It is the Energy or Soul (Pāyasa) situated in the golden chamber (Hiraṇyamaya Koṣa) which a person forgets in the long journey of birth and death. Therefore we should be aware and remember this.

As soon as pure, peaceful and stable mind digests this truth (Pāyasa) through his three powers – Kauśalyā, Sumitrā and Kaikeyī. Knowledge of Self (Rama) manifests with three more powers called Lakṣmaṇa, Bharata and Śatrughna simultaneously.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

When a person knows his own Self as Energy or Soul, he immediately knows himself a creator of his thoughts through his creative power called mind. Now, in every situation, he becomes able to choose and create desired kind of thought. This power is called Lakṣmaṇa.

Secondly, knowing himself as an Energy or soul, a person automatically associates with the qualities of Soul such as love, happiness, bliss, peace, purity, power and knowledge. This power is called Bharata.

Thirdly, knowing himself a loveful, happy, blissful, peaceful, powerful, pure soul, a person easily destroys all the evils. This power is called Śatrughna.

The secret of unequal distribution of energy (Pāyasa) stated in the story is clarified through the above manifestation.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

५. विश्वामित्र-यज्ञ-कथा

(विश्व का मित्र होने के लिये आत्म-ज्ञान की अनिवार्यता का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विश्वामित्र-यज्ञ-कथा के माध्यम से विश्व का मित्र अर्थात् सबके प्रति प्रेमपूर्ण होने के लिये आत्म-ज्ञान की अनिवार्यता का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड में (सर्ग १ से २२ तक) विश्वामित्र के यज्ञ की कथा विस्तार से वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

ब्रह्मा जी के मानस पुत्र थे कुश। कुश से कुशनाभ का जन्म हुआ और कुशनाभ के पुत्र हुए गाधि। गाधि से विश्वामित्र की उत्पत्ति हुई, इसलिए विश्वामित्र गाधि-नन्दन कहलाए। कुश वंश में जन्म लेने के कारण उन्हें कौशिक भी कहा गया।

एक बार विश्वामित्र ने सिद्धि हेतु एक यज्ञ का अनुष्ठान किया परन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी वह यज्ञ पूर्णता को प्राप्त न हो सका क्योंकि यज्ञ की पूर्णता के समय रावण .रा प्रेरित हुए मारीच और सुबाहु नामक दो राक्षस अपने सहयोगियों के साथ आकर उस यज्ञ में विघ्न उपस्थित कर देते। अत: यज्ञ की पूर्णता हेतु एक दिन विश्वामित्र अयोध्यापति दशरथ के पास गए और उनसे उनके ज्येष्ठ पुत्र राम की याचना की। राम की किशोरावस्था तथा राक्षसों की प्रबलता को ध्यान में रखते हुए दशरथ ने विश्वामित्र के साथ राम को भेजने में अपनी असमर्थता व्यक्त की परन्तु बाद में वसिष्ठ जी के समझाने पर पुत्र-हित को भी ध्यान में रखते हुए उन्होंने राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र को सौंप दिया।

अयोध्या से निकलकर विश्वामित्र ने राम को बला और अतिबला नामक दो विद्याएँ प्रदान की जो ब्रह्मा जी की तेजस्विनी पुत्रियां थी। राम ने भी विश्वामित्र के आदेशानुसार सरयू के जल से आचमन करके बला और अतिबला नामक दोनों विद्याओं को ग्रहण किया।

मार्ग में जाते समय विश्वामित्र ने राम के प्रश्नों का समाधान करते हुए उन्हें सरयू-गंगा संगम के समीप निर्मित पुण्य आश्रम का परिचय दिया, संगम के जल में उठती हुई तुमुल ध्वनि के कारण को स्पष्ट किया, मलद और करूष जनपदों को समझाया तथा ताटका वन का परिचय देते हुए ताटका की उत्पत्ति का वर्णन किया। उन्होंने बताया कि सुकेतु यक्ष की यक्षिणी कन्या ताटका ही सुन्द नामक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दैत्य से विवाह करके राक्षसी ताटका बन गई और उसके मारीच तथा सुबाहु नामक दो पुत्र हुए। ये सब मिलकर ऋषि अगस्त्य के सुन्दर देश को उजाड़ने के कारण अगस्त्य द्वारा भी शापित होकर राक्षस भाव को प्राप्त हुए।

ताटका वन में पहुँचकर विश्वामित्र ने राम को मारीच तथा सुबाहु की माता ताटका की गति को अवरुद्ध करते हुए उसका वध करने की आज्ञा दी, अत: राम ने ताटका का वध कर दिया। ताटका-वध से प्रसन्न हुए विश्वामित्र ने राम को अनेकानेक दिव्यास्त्र प्रदान किए जो प्रजापति दक्ष की जया और सुप्रभा नामक दो कन्याओं के पुत्र थे। राम ने सभी दिव्यास्त्रों को अपने मन में धारण कर लिया और उन दिव्यास्त्रों से आवश्यकता के समय मन में उपस्थित होकर सहायता करने का आग्रह किया।

ताटका वन से बाहर निकलकर राम और लक्ष्मण विश्वामित्र की यज्ञस्थली और वामन भगवान् की निवासस्थली सिद्धाश्रम में पहुँचे तथा विश्वामित्र के यज्ञ में दीक्षित हो जाने पर उस यज्ञ की रक्षा करने लगे। लक्ष्मण की सहायता से राम ने यज्ञ का विध्वंस करने वाले मारीच और सुबाहु नामक राक्षसों में से मारीच को तो एक ही बाण से सौ योजन दूर समुद्र में फेंक दिंया और सुबाहु को उसकी सेना सहित मार ड़ाला।

कथा की प्रतीकात्मकता

१. कुश–

कुश शब्द में कु का अर्थ है– अपवित्रता और श का अर्थ है शमन, समाप्ति। अत: कुश का अर्थ हुआ– अपवित्रता का शमन अर्थात् मन की ऐसी स्थिति जहाँ पवित्रता विद्यमान हो। पवित्रता (कुश) मन का एक विशिष्ट गुण है, इसलिए कथा में कुश को ब्रह्मा जी का पुत्र कहा गया है।

२. कुशनाभ–

कुश के पुत्र हैं- कुशनाभ। कुशनाभ शब्द में कुश का अर्थ है– पवित्र मन और नाभ का अर्थ है– नाभि या केन्द्र। मन अथवा विचारों की पवित्रता जब जीवन के केन्द्र में स्थापित हो जाती है, तब वाणी और कर्म में भी पवित्रता का प्रादुर्भाव होता है। अत: मनसा-वाचा-कर्मणा शुद्ध व्यक्तित्व को कुशनाभ शब्द द्वारा इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. गाधि–

कुशनाभ के पुत्र हैं– गाधि। गाधि शब्द गाध् से बना है, जिसका अर्थ है– खड़े रहना अथवा डुबकी लगाना। मन-वचन तथा कर्म की शुद्धता (कुशनाभ स्थिति) के फलस्वरूप ही मनुष्य अपने जीवन में पूर्ण आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान के साथ खड़ा रहता है। आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान की स्थिति ही गाधि कहलाती है।

४. विश्वामित्र–

गाधि के पुत्र को विश्वामित्र कहा गया है। विश्वामित्र शब्द विश्व और मित्र से बना है जिसका अर्थ है– सबके साथ मैत्री अथवा प्रेम। विश्वामित्र को गाधि का पुत्र कहकर यह संकेत किया गया है कि सबके साथ मैत्री अथवा प्रेम केवल तभी सम्भव है जब मनुष्य पहले अपने प्रति विश्वास और सम्मान से भरा हो। अपने प्रति विश्वास और सम्मान ही शनैः-शनैः सबके प्रति विश्वास, सम्मान, मैत्री अथवा प्रेम को उत्पन्न करता है।

विश्वामित्र को कुशवंशी (कौशिक) कहकर यह इंगित किया गया है कि सबके प्रति मैत्री अथवा प्रेम का भाव मनुष्य के भीतर अकस्मात् उत्पन्न नहीं होता। सबसे पहले मन की शुद्धता (कुश-स्थिति) चाहिए। मन की शुद्धता से ही वाणी और कर्म में शुद्धता आती है (कुशनाभ- स्थिति)। मन-वचन तथा कर्म की शुद्धता से मनुष्य में आत्म-विश्वास और आत्म-सम्मान पैदा होता है (गाधि-स्थिति)। अपने प्रति विश्वास और सम्मान को धारण करने वाले मनुष्य के भीतर ही एक न एक दिन सबके प्रति सम्मान, विश्वास, प्रेम अथवा मैत्री का भाव जाग्रत होता है (विश्वामित्र-स्थिति)।

५. वसिष्ठ–

मनुष्य का ऊर्ध्व विकास (आध्यात्मिक ऊँचाई) चाहने वाली चेतना वसिष्ठ तथा क्षैतिज विकास चाहने वाली चेतना विश्वामित्र कहलाती है अर्थात् वसिष्ठ चेतना सर्वदा यह चाहती है कि मनुष्य सतत आत्मा-परमात्मा की ओर बढ़ता चला जाए तथा विश्वामित्र चेतना चाहती है कि मनुष्य सबके साथ मैत्री स्थापित करे।

६. राम–

जैसा कि पिछली टिप्पणियों में स्पष्ट किया जा चुका है, अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेना और उसमें स्थित होना अर्थात् आत्म-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ज्ञान ही मनुष्य के भीतर राम-चेतना का अवतरण है। कथा में राम को बालक कहकर यह संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान की अपरिपक्व अवस्था भी अवचेतन मन में रहने वाली देह-मान्यता अर्थात् मैं देह हूँ– इस मान्यता (ताटका) को समाप्त करने में समर्थ है।

७. सरयू जल में आचमन–

सरयू शब्द सृ (सरति अर्थात् बहना) तथा ऊ के योग से बना प्रतीत होता है। वेद में ऊ तथा ई अक्षर क्रमशः पुरुष (आत्मा) तथा प्रकृति के वाचक हैं तथा जल शब्द चेतना को इंगित करता है। इस आधार पर सभी के भीतर एक समान आत्म-चेतना प्रवहमान है– इस चिन्तन अथवा भाव में स्थित होना सरयू के जल में आचमन करना है।

८. विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त बला और अतिबला विद्याएँ–

बला और अतिबला विद्याएँ बलशाली (बला) और अत्यन्त बलशाली (अतिबला) क्षमा-शक्ति तथा स्वीकार-शक्ति को इंगित करती हैं। आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य भी जब कर्मक्षेत्र में रहता है और अन्य मनुष्यों के साथ सम्बन्ध-सम्पर्क में आता है, तब सबके साथ प्रेमपूर्ण अथवा मैत्रीपूर्ण बने रहने के लिए उसे क्षमा-शक्ति तथा स्वीकार-शक्ति की सबसे पहले आवश्यकता होती है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य की सोच और तदनुसार व्यवहार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न ही होते हैं। इन दोनों शक्तियों को व्यक्तित्व में आत्मसात् कर लेने पर मनुष्य का मन व्यर्थ, अनुपयोगी तथा नकारात्मक विचारों के संग्रह से बचा रहकर उपयोगी तथा सकारात्मक विचारों से संयुक्त रहता है और फिर जैसा मन वैसा तन के अनुसार मन के स्वस्थ होने पर शरीर भी स्वस्थ बना रहता है। इसीलिए कथा में बला-अतिबला विद्याओं की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि इन विद्याओं को ग्रहण कर लेने पर श्रम का अनुभव, रूप का विपर्यय तथा राक्षसी वृत्तियों का आक्रमण नहीं होता और मनुष्य शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक सभी स्तरों पर बलशाली बना रहता है। चूँकि सबके साथ प्रेमपूर्ण अथवा मैत्रीपूर्ण बने रहने की इच्छा (विश्वामित्र) ही उसे स्वीकार तथा क्षमा रूप शक्तियों से सम्पन्न बनाती है, इसलिए कथा में इस तथ्य को यह कहकर निरूपित किया गया है कि विश्वामित्र ने राम को बला और अतिबला विद्याएँ प्रदान की।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

९. ताटका–

ताटका शब्द तारका शब्द का अपभ्रंश रूप प्रतीत होता है। तारका का अर्थ है– आगे ले जाने वाली अथवा कर्णधार। अवचेतन मन में विद्यमान मान्यता ही मनुष्य की जीवन रूपी नौका को आगे बढ़ाती है क्योंकि अवचेतन मन के स्तर पर विद्यमान विचार मनुष्य के चेतन मन को प्रभावित करते हैं और चेतन मन के आधार पर मनुष्य का जीवन-व्यवहार चलता है। आत्म-चेतना की स्थिति में मनुष्य के अवचेतन मन में यह मान्यता प्रबल रूप में विद्यमान होती है कि मैं आत्मा हूँ। परन्तु देह-चेतना की स्थिति में भोगी मन (सुन्द दैत्य) से जुड़कर उपर्युक्त मान्यता का रूपान्तरण होकर यह विपरीत मान्यता प्रबल रूप में विद्यमान हो जाती है कि मैं देह हूँ। मान्यता के इस रूपान्तरण को ही कथा में सुकेतु यक्ष की यक्षिणी कन्या ताटका का राक्षसी ताटका में रूपान्तरित हो जाना कहा गया है।

मैं आत्मा हूँ– यह मान्यता मनुष्य के अवचेतन मन में रहने वाली सभी धनात्मक मान्यताओं में श्रेष्ठतम है, इसीलिए इसे सुकेतु यक्ष की कन्या कहा गया है। सुकेतु यक्ष का अर्थ है– श्रेष्ठतम धनात्मक विचार क्योंकि पौराणिक साहित्य में कुबेर देवता के अनुचरों को यक्ष कहा जाता है और कुबेर का अर्थ है– धन, धनात्मकता के देवता अथवा अधिपति।

१०. अगस्त्य–

यह शब्द अग तथा स्त्य से बना है। अग का अर्थ है– अगति अर्थात् स्थिरता और स्त्य का अर्थ है– फैलाव। अत: अगस्त्य का अर्थ हुआ– स्थिरता का फैलाव अर्थात् व्यक्तित्व में स्थिरता गुण का बढ़ना। मैं देह हूँ– इस देह-ज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह (मारीच) तथा उसके साथ उत्पन्न हुआ नाम-रूप-पद-धन आदि का अहंकार (सुबाहु) मनुष्य के चेतन मन की स्थिरता को समाप्त करके उसे चंचल बना देते हैं। इसे ही कथा में मारीच-सुबाहु द्वारा अगस्त्य के सुन्दर देश को उजाड़ना कहकर संकेतित किया गया है।

११. विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त दिव्यास्त्र–

कथा में कहा गया है कि विश्वामित्र द्वारा राम को प्रदत्त दिव्यास्त्र दक्ष प्रजापति की जया और सुप्रभा नामक पुत्रियों के पुत्र थे। दक्ष प्रजापति मनुष्य के दक्ष (कुशल) मन को इंगित करते हैं। इस दक्ष मन की दो विशेषताएँ हैं। एक है जया

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्थात् विजय प्रदान करने वाली और दूसरी है सुप्रभा अर्थात् आभा प्रदान करने वाली। मनुष्य का दक्ष मन इन जया तथा सुप्रभा नामक विशेषताओं से उत्पन्न हुए अनेकानेक दिव्य गुणों से भरा हुआ है परन्तु यह गुण व्यक्तित्व में प्रकट तभी होते हैं, जब मनुष्य आत्मस्थ होकर विश्वमैत्री हेतु प्रवृत्त होता है।

१२. मारीच और सुबाहु–

मारीच शब्द मरीचि से बना है, जिसका अर्थ है– मृगतृष्णा अर्थात् भ्रम। मनुष्य है तो अजर-अमर-अविनाशी ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप चैतन्य-शक्ति आत्मा परन्तु भ्रम से उसने स्वयं को शरीर समझ लिया है। इस भ्रम के कारण ही शनैः-शनैः जो मोह (मैं-मेरा) उत्पन्न हो जाता है, उसे ही कथा में मारीच नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मोह की स्थिति में ही मन के भीतर नाम-रूप-पद तथा धन आदि का अहंकार भी सहज रूप से उद्भूत हो जाता है, जिसे कथा में मारीच का भाई सुबाहु कहा गया है। सुबाहु (सु-बाहु) अर्थात् बहुत बलशाली।

१३. विश्वामित्र का भगवान् वामन की निवास स्थली सिद्धाश्रम में निवास–

इस कथन द्वारा विश्वमैत्री चेतना की इस विशेषता की ओर इंगित किया गया है कि विश्वमैत्री चेतना दैहिक भोगों से निवृत्त हो चुके उच्च मन में ही निवास करती है। वामन शब्द वा-मन से बना है। मन का अर्थ है– दैहिक-जागतिक भोगों में प्रवृत्त तथा काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि में लिपटा हुआ निम्न मन तथा वा एक अव्यय है, जो इस सामान्य मन की पूर्णतः रूपान्तरित स्थिति को इंगित करता है अर्थात् दैहिक-जागतिक भोगों से सर्वथा निवृत्त हो चुका लोभ-मोह से मुक्त शुद्ध मन वामन है। मन की इस विशिष्ट शुद्ध स्थिति को ही पौराणिक साहित्य में भगवान् वामन का अवतरण कहकर इंगित किया गया है।

१४. सरयू-गंगा संगम के समीप निर्मित पुण्य आश्रम–

आश्रम का परिचय देकर मनुष्य-शरीर की उपादेयता को इंगित किया गया है क्योंकि इसी शरीर में स्थाणु शिव रूप आत्मा का निवास है।

१५. मलद-करूष जनपद–

ये दोनों जनपद चेतन और अवचेतन मन को इंगित करते प्रतीत होते हैं। आत्म-चेतना की स्थिति में ये दोनों चेतन-अवचेतन मन रूप जनपद समृद्ध बने रहते हैं परन्तु देह-चेतना के कारण उद्भूत हुई देह-मान्यता (ताटका) इन समृद्धिशाली जनपदों का भी विनाश करती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१६. सरयू-गंगा संगम के जल में उठने वाली तुमुल ध्वनि–

मैं आत्मा हूँ और मेरे समान सभी आत्मस्वरूप हैं- मनुष्य के मन में प्रतिपल उठने वाले इन दो प्रकार के विचारों के संयुक्त स्पन्दन को ही सम्भवतः सरयू-गंगा संगम के जल में उठने वाली तुमुल ध्वनि कहकर इंगित किया गया है।

कथा का अभिप्राय

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अकेला नहीं रहता। किसी न किसी रूप में उसका परिवार, समाज, राष्ट्र अथवा विश्व के साथ सम्बन्ध-सम्पर्क होता ही है। मन के विकसित अथवा श्रेष्ठ हो जाने पर मनुष्य यह चाहता है कि उसके सम्बन्ध सभी के साथ सर्वदा मैत्रीपूर्ण अथवा प्रेमपूर्ण बने रहें। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु वह यथासम्भव प्रयास करता है और काफी हद तक प्रेमपूर्ण रहता भी है परन्तु पूर्णरूपेण सफल नहीं हो पाता क्योंकि स्वयं को देह मान लेने के कारण उत्पन्न हुआ मोह-भाव (मैं-मेरा) तथा नाम-रूप-पद-धन आदि का अहंकार सबके साथ मैत्रीपूर्ण अथवा प्रेमपूर्ण होने के उसके अनुष्ठान में बाधा उपस्थित कर देता है, जिसे कथा में ताटका के पुत्र मारीच-सुबाहु द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ में बाधा उपस्थित करना कहकर इंगित किया गया है।

विश्वामित्र-यज्ञ-कथा के माध्यम से इसी महत्त्वपूर्ण तथ्य को निरूपित किया गया है कि सबके प्रति मैत्रीपूर्ण अथवा प्रेमपूर्ण होने के लिये मनुष्य क्या करे।

कथा संकेत करती है कि सबके साथ मैत्री चाहने वाला मनुष्य (विश्वामित्र) सबसे पहले अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचाने और उसमें स्थित हो। आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाने को ही कथा में विश्वामित्र द्वारा राम को अपने साथ लाना कहकर इंगित किया गया है।

आत्म-स्वरूप में स्थित (अर्थात् मैं अजर-अमर-अविनाशी, ज्योतिर्बिन्दुस्वरूप आत्मा हूँ और इस देह के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है– इस ज्ञान में स्थित) मनुष्य दूसरों को भी आत्म-दृष्टि से देखने का प्रयास करता है और शरीर तथा व्यवहार के तल पर सभी मनुष्यों के बीच जो अतिभिन्नता दिखाई देती है– उसमें क्षमा-भाव तथा स्वीकार-भाव को धारण करके सबके प्रति प्रेमपूर्ण बना रहता है।

तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य की चेतना-यात्रा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। चेतना-यात्रा की भिन्नता के कारण प्रत्येक मनुष्य का स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर तथा कारण शरीर भी गुणवत्ता की दृष्टि से एक दूसरे से सर्वथा भिन्न है। इसी भिन्नता के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कारण प्रत्येक मनुष्य की सोच तथा पसन्द-नापसन्द भी हर स्तर पर भिन्न होती है। सोच तथा पसन्द-नापसन्द की भिन्नता के कारण मनुष्य का व्यवहार भी भिन्न हो जाता है।

शरीर-भाव में स्थित मनुष्य इस ज्ञान से सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण दूसरे मनुष्य के अपने से भिन्न व्यवहार को सहन नहीं कर पाता और परस्पर द्वेष, घृणा अथवा असहमति जैसे नकारात्मक भावों से भर जाता है। इसके विपरीत आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य प्रत्येक को वह जैसा है– उसी रूप में स्वीकार करता हुआ उसके व्यवहारों से विचलित अथवा व्यग्र नहीं होता प्रत्युत प्रत्येक स्थिति-परिस्थिति में यथायोग्य क्षमा-भाव तथा स्वीकार-भाव को धारण करते हुए प्रत्येक मनुष्य के प्रति पूर्णत: प्रेमपूर्ण अथवा मैत्रीपूर्ण बना रहता है।

चूँकि सबके प्रति मैत्रीपूर्ण होने का भाव ही आत्मस्थ मनुष्य को क्षमा तथा स्वीकार जैसी अद्भुत विषेषताओं से सम्पन्न बनाता है, इसीलिये कथा में इस तथ्य को यह कहकर इंगित किया गया है कि विष्वामित्र ने राम को बला और अतिबला विद्याएँ प्रदान की।

सरयू-गंगा संगम के समीप निर्मित पुण्य आश्रम, मलद-करूष जनपद, ताटका वन की भयंकरता तथा ताटका की उत्पत्ति कथाओं के माध्यम से कथा यह महत्त्वपूर्ण संकेत करती है कि प्रत्येक मनुष्य आत्मा तथा शरीर का एक अद्भुत योग है। आत्मा रूप शक्ति से यह शरीर रूप यंत्र चलता है। अत: दोनों का अन्योन्याश्रित प्रगाढ़ सम्बन्ध है। सबके प्रति मैत्रीपूर्ण अथवा प्रेमपूर्ण होने के लिये आत्मस्थ होना तो अपरिहार्य है परन्तु प्रेमपूर्ण होने में मनुष्य को प्राप्त यह शरीर कदापि बाधक नहीं है। शरीर तो आत्मा के रहने के लिए एक पवित्र आश्रम की भाँति है। इसी में दिव्य शक्तियों से सम्पन्न एक शक्तिशाली मन भी निवास करता है। अत: शरीर की उपादेयता स्वयंसिद्ध ही है।

कठिनाई तब उपस्थित होती है, जब अवचेतन मन के स्तर पर रहने वाली यह मान्यता कि मैं अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– एक दिन भोगवादी मन (सुन्द दैत्य) से जुड़कर मैं देह हूँ– इस राक्षसी मान्यता में रूपान्तरित हो जाती है। मान्यता के इस रूपान्तरण को ही कथा में यक्षिणी ताटका का राक्षसी ताटका हो जाना कहा गया है।

मनुष्य का चेतन मन अपने ही अवचेतन मन से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अत: मान्यता के इस रूपान्तरण से मनुष्य स्वयं को पूरी तरह से शरीर ही समझने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लगता है और तदनुसार व्यवहार करता हुआ शनैः-शनैः मोह (मैं-मेरा) तथा नाम-रूप-पद-धन आदि के प्रबल अहंकार से ग्रस्त हो जाता है। अवचेतन मन में विद्यमान देह-मान्यता के फलस्वरूप चेतन मन में उत्पन्न हुए इस मोह-भाव तथा प्रबल अहंकार को ही कथा में राक्षसी ताटका से मारीच-सुबाहु नामक राक्षसों का उत्पन्न होना कहकर इंगित किया गया है।

सबके प्रति मैत्रीपूर्ण अथवा प्रेमपूर्ण होने में यद्यपि यह मोह-भाव तथा अहंकार ही बाधा ड़ालता है, परन्तु इन दोनों की समाप्ति से पहले इनकी उत्पत्ति की कारणभूता तथा अवचेतन मन के स्तर पर विद्यमान देह-मान्यता रूपी राक्षसी ताटका का वध करना अनिवार्य है और इस देह-मान्यता का वध अब केवल आत्म-स्वरूप में स्थित होकर ही किया जा सकता है, जिसे कथा में राम द्वारा राक्षसी ताटका का वध कहकर इंगित किया गया है।

कथा इस विशिष्ट तथ्य को प्रतिपादित करती है कि आत्मस्थ होकर देह-मान्यता (ताटका) का वध हो जाने पर मनुष्य की ही विश्वामैत्री चेतना (सबके प्रति प्रेमपूर्ण होने की इच्छा) आत्मस्थ मनुष्य को अनेकानेक अद्भुत गुणों से सम्पन्न बना देती है और ये गुण कहीं बाहर से नहीं आते, प्रत्युत उसी के कुशल मन से निकलकर व्यक्तित्व में प्रकट हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर एक कुशल (दक्ष) मन विद्यमान है। यह कुशल मन अनेकानेक गुणों और विशेषताओं से भरा पड़ा है। जब मनुष्य आत्मस्थ होकर सबके साथ मैत्रीपूर्ण अथवा प्रेमपूर्ण होना चाहता है, तब उसका यह बन्द पड़ा हुआ कुशल मन ही मानों खुल जाता है और अद्भुत गुण जीवन में प्रकट हो जाते हैं। कथा की प्रतीक शैली में इस सम्पूर्ण तथ्य को यह कहकर इंगित किया गया है कि राक्षसी ताटका का वध हो जाने पर विश्वामित्र ने राम को जो अनेकानेक दिव्यास्त्र प्रदान किए, वे महाराज दक्ष की कन्याओं से उत्पन्न हुए पुत्र थे।

अवचेतन मन में रहने वाली देह-मान्यता रूपी ताटका का वध हो जाने के पश्चात् अनेकानेक दिव्य गुणों से सम्पन्न हुआ आत्मस्थ मनुष्य (राम) अपने विचारों का निर्माता-नियन्ता होने से विश्व-मैत्री में बाधक बने हुए मोह-भाव (मैं तथा मेरा) को अत्यन्त सहज रूप से अपनी चेतना से बहुत दूर छिटक देता है, जिसे कथा में राम के एक ही बाण से मारीच का सौ योजन दूर समुद्र में गिरना कहकर इंगित किया गया है। मोह-भाव के दूर छिटक जाने से उसके साथ उत्पन्न हुआ प्रबल अहंकार भी नष्ट हो जाता है, जिसे कथा में सुबाहु का वध होना कहा गया है। अब विश्वमैत्री का अनुष्ठान सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कथा के अन्त में विश्वामित्र को वामनस्थली अथवा सिद्धाश्रम का निवासी कह कर यह संकेतित किया गया है कि सबके साथ मैत्री अथवा प्रेम का भाव (विश्वामित्र) केवल वामन (शुद्ध) मन में निवास करता है। एक है– सामान्य मन जो काम-क्रोध-लोभ-मोह से जुड़ा रहने के कारण अशुद्ध बना रहता है तथा दूसरा है– वामन मन जो उपर्युक्त दोषों से रहित होकर शुद्ध हो गया है।

विश्वामित्र को कुशवंशी अथवा कौशिक कहकर भी प्रकारान्तर से उपर्युक्त तथ्य को ही व्यक्त किया गया है। कथा में कुशवंश का विस्तृत वर्णन यह संकेत करता है कि जब मनुष्य मनसा-वाचा-कर्मणा शुद्ध होकर आत्म-सम्मान में स्थित होता है, तब ही विश्वामित्र अर्थात् विश्व के साथ मैत्रीभाव का जन्म होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Self- Knowledge is compulsory to be loveful to all as described through the story of Viśvāmitra Yajña

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Bālakaṇḍa, chapters 18-34), it is said that once when Ṛṣi Viśvāmitra was performing a yajña, two demons– Mārīca and Subāhu started troubling him. So he went to Ayodhyā for help. He requested king Daśarath to send Rāma with him but Daśarath did not agree. Later on when muni Vaśiṣṭha advised him, he handed over his sons– Rāma and Lakṣmaṇa to Ṛṣi Viśvāmitra.

On the way Viśvāmitra gifted Rāma with the two powers named Balā and Atibalā – two daughters of Brahmā. When they passed through the forest of Demoness Tāṭakā, Viśvāmitra told that earlier this Demoness Tāṭakā was not a Demoness. She was a daughter of Suketu Yakṣa but after marrying with Demon Sunda, she became a Demoness. Mārīca and Subāhu are her two sons. As Viśvāmitra ordered Rāma to kill Demoness Tāṭakā, Rāma killed her. Viśvāmitra offered Rāma many more divine weapons which were the sons of Jayā and Suprabhā – the two daughters of king Dakṣa.

Now they reached the place where yajña was to be performed. Rāma and Lakṣmaṇa started protecting the place. Rāma killed Subāhu and threw Mārīca across the sea.

The story is totally symbolic. It says that a person with pure mind always wishes to be loveful with everyone. He tries his best and becomes loveful to a large extent but fails at last as Delusion (a strong feeling of Me and Mine) and Ego overpower him again and again.

This story tells that the only way of being loveful is Self-Knowledge. A person knowing his own Real Self not only sees others with soul perception but he also knows that every person is carrying his own Saṁskāras (impressions) and these Saṁskāras make him different on both levels – gross or subtle. Every person thinks and behaves differently, therefore instead of expecting everyone to behave like him, he accepts him as he is

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

and forgives him if required. These two powers of Acceptance and Forgiveness are symbolized as Balā and Atibalā sciences in the story.

The story describes that every person possesses a powerful mind. This mind lies in two layers – upper and lower. Upper layer is called conscious mind and lower layer is called sub-conscious mind. Conscious mind mostly acts according to sub-conscious mind, therefore the sub-conscious mind demands more attention. Living in soul-consciousness, a strong Belief of Being a Soul lies in sub-conscious mind but the transformation of consciousness from Soul to Body transforms this Belief also and a New Belief emerges that he is a body. This transformation of Belief is symbolized as Yakṣiṇī Tāṭakā getting converted into Demoness Tāṭakā.

This new Demon Belief affects the conscious mind and Delusion – a strong feeling of Me and Mine emerges at conscious level. Now a person also gets filled with Ego. The story tells that both of these vices (Delusion and Ego) – namely Mārīca and Subāhu have their roots in the Demon Belief (Demoness Tāṭakā) lying in sub-conscious mind, therefore uprooting this Belief is the first priority and this uprooting can be done only by Knowing his Real Self called Ātmā.

Uprooting of Demon Belief (Demoness Tāṭakā) fills a person with lots of qualities symbolized as divine weapons and enables him to sweep Delusion and Ego from the conscious level. Now this pure conscious mind makes a person peaceful to all.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

६. सगर कथा

(शुद्ध मन की प्राप्ति हेतु आचरण-परक ज्ञान
की अनिवार्यता का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

and forgives him if required. These two powers of Acceptance and Forgiveness are symbolized as Balā and Atibalā sciences in the story.

The story describes that every person possesses a powerful mind. This mind lies in two layers – upper and lower. Upper layer is called conscious mind and lower layer is called sub-conscious mind. Conscious mind mostly acts according to sub-conscious mind, therefore the sub-conscious mind demands more attention. Living in soul-consciousness, a strong Belief of Being a Soul lies in sub-conscious mind but the transformation of consciousness from Soul to Body transforms this Belief also and a New Belief emerges that he is a body. This transformation of Belief is symbolized as Yakṣiṇī Tāṭakā getting converted into Demoness Tāṭakā.

This new Demon Belief affects the conscious mind and Delusion – a strong feeling of Me and Mine emerges at conscious level. Now a person also gets filled with Ego. The story tells that both of these vices (Delusion and Ego)– namely Mārīca and Subāhu have their roots in the Demon Belief (Demoness Tāṭakā) lying in sub-conscious mind, therefore uprooting this Belief is the first priority and this uprooting can be done only by Knowing his Real Self called Rāma.

Uprooting of Demon Belief (Demoness Tāṭakā) fills a person with lots of qualities symbolized as divine weapons and enables him to sweep Delusion and Ego from the conscious level. Now this pure conscious mind makes a person loveful to all.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

६. सगर कथा

(शुद्ध मन की प्राप्ति हेतु आचरण-परक ज्ञान की अनिवार्यता का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
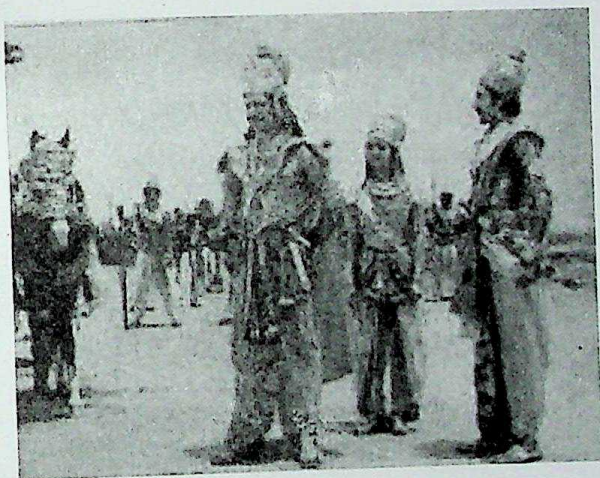
सगर कथा के माध्यम से शुद्ध मन की प्राप्ति हेतु आचरण-परक ज्ञान की अनिवार्यता का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड में (सर्ग ३८ से ४१ तक) राजा सगर की कथा वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है--

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

अयोध्या के धर्मात्मा राजा सगर की केशिनी तथा सुमति नामक दो पत्नियाँ थी परन्तु उन्हें कोई पुत्र नहीं था। सगर ने पुत्र हेतु हिमालय के भृगु प्रस्रवण शिखर पर तप किया जिसके फलस्वरूप भृगु ऋषि ने उन्हें केशिनी नामक पत्नी से असमंजस नामक पुत्र तथा सुमति नामक पत्नी से साठ हजार पुत्रों की प्राप्ति का वरदान दिया। वरदान के अनुसार सगर को पुत्रों की प्राप्ति हुई एवं सभी पुत्र युवावस्था को प्राप्त हुए।

असमंजस नामक पुत्र नगर के बालकों को पकड़कर सरयू के जल में फेंक देता था, अतः क्रुद्ध हुए पिता ने उन्हें राज्य से बाहर निकाल दिया। असमंजस के पुत्र अंशुमान् अत्यन्त पराक्रमी एवं सबके प्रिय थे। अतः एक बार जब सगर के मन में यज्ञ करने की इच्छा हुई, तब यज्ञ के अश्व की रक्षा का भार उन्होंने अंशुमान् को सौंपा। यज्ञ प्रारम्भ हुआ परन्तु इन्द्र ने यज्ञ के अश्व को चुरा लिया और उसे रसातल में ले जाकर कपिल मुनि के आश्रम के समीप खड़ा कर दिया।

सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों को अश्व को ढूँढ़ने और चोर का पता लगाने की आज्ञा दी। अतः पिता की आज्ञा पाकर वे साठ हजार पुत्र पृथ्वी को खोदते गए परन्तु अश्व का तथा उसके चोर का पता न लगा सके। उनके अति खनन से पृथ्वी भी आर्तनाद करने लगी। सगर की आज्ञा से पुनः खुदाई करते-करते वे राजकुमार रसातल की ओर बढे और उन्होंने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर, चारों दिशाओं में क्रमशः विरूपाक्ष, महापद्म, सौमनस तथा श्वेतभद्र नामक चार दिग्गजों को देखा। अन्त में पूर्वोत्तर दिशा की ओर बढ़ते हुए उन्हें यज्ञ का वह अश्व दिखाई पड़ा, जो भगवान् कपिल के आश्रम के पास ही खड़ा था। कपिल को न पहचानने के कारण तथा उन्हीं को चोर समझकर सगर-पुत्रों ने जैसे ही उन्हें मारना चाहा, वैसे ही कपिल की रोषपूर्ण हुँकार से वे सगर-पुत्र वहीं जलकर राख के ढेर हो गए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बहुत समय तक प्रतीक्षा करने के बाद भी सगर के वे पुत्र जब नहीं लौटे, तब सगर ने पौत्र अंशुमान् को आज्ञा दी कि वह अश्व को तथा उसके चोर को ढूंढे। अंशुमान ने शस्त्रादि से सुसज्जित होकर उसी पथ का अनुसरण किया, जिसे उसके चाचाओं ने खनन द्वारा बनाया था। चारों पूर्वोक्त दिग्गजों का दर्शन करके तथा उनका आशीर्वाद लेकर अंशुमान् अन्तत: उस स्थान पर पहुँच गया, जहाँ उसके चाचा भस्म रूप में पड़े हुए थे। यज्ञीय अश्व को भी उसने पास में ही चरता हुआ पाया। भस्म रूप में पड़े हुए चाचाओं को जलांजलि देने के लिए जब दु:खी अंशुमान ने जल लेने की इच्छा की, तभी वहाँ चाचाओं के मामा पक्षिराज गरुड़ दिखाई दिए और गरुड़ ने कहा कि सामान्य जलांजलि से अब इनका उद्धार नहीं हो सकता। लोकपावनी गंगा ही जब अपने जल से इस भस्म-राशि को आप्लावित करेंगी, तब तुम्हारे चाचाओं को स्वर्गलोक पहुँचा देंगी। अत: अब तुम अश्व को ले जाओ और पितामह के यज्ञ को पूर्ण करो।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूप से प्रतीकात्मक है। अत: प्रतीकों को समझकर ही कथा के अभिप्राय को समझा जा सकता है।

१. सगर–

सगर शब्द स तथा गर नामक दो शब्दों के योग से बना है। स का अर्थ है– सहित और गर का अर्थ है विष। अत: धर्मात्मा राजा सगर ऐसे मनुष्य का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है, जो अज्ञान अथवा अज्ञान से उत्पन्न हुए अभिमान रूपी विष से युक्त है। अभिमान का अर्थ है– अपनी सही पहचान न होने के कारण गलत पहचान को ही सही पहचान मानकर उसमें आसक्त हो जाना अर्थात् 'मैं अजर-अमर-अविनाशी, चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ'– अपनी इस सही पहचान को भूल जाने के कारण विभिन्न भूमिकाओं (roles), पदों (designations) तथा छवियों (images) आदि को ही अपनी सही पहचान मान लेना और उसी में आसक्त हो जाना।

२. सगर की दो पत्नियाँ– सुमति और केशिनी–

सुमति और केशिनी नामक पत्नियों के रूप में यहाँ मनुष्य की बुद्धि और प्रज्ञा रूप दो शक्तियों की ओर संकेत किया गया है। सुमति (सु मति) का अर्थ है– सुन्दर बुद्धि। सुन्दर बुद्धि के सैंकड़ों प्रकार के व्यापार/वृत्तियां (साठ हजार पुत्र)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

शुद्ध मन (यज्ञीय अश्व) की प्राप्ति जैसे किसी विशिष्ट तथ्य की खोज में तथ्य की गहराई तक तो पहुँच जाते हैं (जिसे कथा में सुमति-पुत्रों द्वारा पृथ्वी का खनन कहकर इंगित किया गया है), परन्तु तथ्य की गहराई में पहुँचकर भी शुद्ध मन (यज्ञीय अश्व) की प्राप्ति में सफल नहीं हो पाते और तुच्छ प्राय हो जाते हैं क्योंकि बुद्धि के ये व्यापार आचरण-परक ज्ञान (कपिल मुनि) से अनभिज्ञ होते हैं और आचरण-परक ज्ञान की अवहेलना भी करते हैं।

केशिनी का अर्थ है– पराशक्ति अर्थात् बुद्धि से परे की शक्ति (प्रज्ञा)। यह पराशक्ति मनुष्य की वह शक्ति है, जो प्रारम्भ में तो मनुष्य के भीतर ज्ञान-विषयक असमंजस अर्थात् दुविधा(dilemma)को उत्पन्न करती है परन्तु बाद में उसी असमंजस स्थिति से ज्ञान की किरण पैदा होती है, जिसे कथा में असमंजस से अंशुमान् नामक पुत्र का उत्पन्न होना कहा गया है। ज्ञान की यह किरण आचरण-परक ज्ञान (कपिल मुनि) से परिचित होने और उसका सम्मान करने के कारण शुद्ध मन (यज्ञीय अश्व) की प्राप्ति में समर्थ होती है, जिसे कथा में अंशुमान् द्वारा यज्ञीय अश्व को यज्ञ हेतु वापस लाने के रूप में इंगित किया गया है।

३. यज्ञ का अश्व–

यज्ञीय अश्व शुद्ध मन को इंगित करता है। शुद्ध मन का अर्थ है– अनासक्त मन। मनुष्य के चारों ओर विभिन्न नाम, रूप, पद तथा धन-सम्पत्ति आदि के रूप में अनेकानेक आकर्षण विद्यमान हैं, जिनके प्रति मन सतत आसक्त बना रहता है। जो मन इन सबके बीच में रहकर भी कहीं आसक्त न हो– वही अनासक्त अर्थात् शुद्ध मन है।

ज्ञान को सतत आचरण में लाने पर ही मन की उपर्युक्त आसक्ति समाप्त होती है और सभी कर्त्तव्य कर्मों का सम्यक् निर्वाह करते हुए भी मन शुद्ध बना रहता है। इसीलिए शुद्ध मन की प्राप्ति के लिए ज्ञानयुक्त आचरण अनिवार्य है। कपिल मुनि के पास यज्ञीय अश्व को खड़ा करके इसी तथ्य को इंगित किया गया है।

४. इन्द्र का राक्षस रूप धारण करके यज्ञीय अश्व को चुरा लेना और रसातल में बाँध देना–

प्रस्तुत कथन द्वारा इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि जैसे किसी स्वच्छ दर्पण पर पड़ी हुई धूल की पर्तें उस स्वच्छ दर्पण को ढ़क लेती हैं,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उसी प्रकार अभिमान रूप अज्ञान से उत्पन्न हुए विकारों की पर्तें भी शुद्ध मन को ढ़क लेती हैं और शुद्ध मन इतनी गहराई में (रसातल में) चला जाता है कि दिखाई नहीं देता। केवल ज्ञान का सहारा लेकर उसे पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

५. रसातल–

गहरे मन अर्थात् अवचेतन मन (चित्त) को ही पुराणों में रसातल तथा पाताल आदि नामों से सम्बोधित किया गया है।

६. कपिल मुनि–

कपिल शब्द कम्प् धातु में ल एकाक्षर के योग से बना है। कम्प का अर्थ है– कम्पन और ल का अर्थ है– लाना। अतः कपिल का अर्थ है– जड़ता में कम्पन लाना। देह को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेना पूर्ण जड़ता अर्थात् अज्ञान की स्थिति है। अतः आचरण-परक जो ज्ञान मनुष्य की इस जड़ता अथवा अज्ञानता को हिलाकर उसे उसके सही स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानने की ओर अग्रसर कर दे– वही कपिल मुनि है। जिस दिन मनुष्य इस आचरण-परक ज्ञान (कपिल मुनि) को और उसके महत्त्व को पहचान लेता है, उसी दिन मन के शुद्धत्व (यज्ञीय अश्व) को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। अंशुमान द्वारा यज्ञीय अश्व को वापस लाने के रूप में इसी तथ्य को इंगित किया गया है।

७. सरयू नदी–

सरयू शब्द सृ (सरति) धातु में ऊ शब्द के योग से बना प्रतीत होता है। सरति का अर्थ है– बहना और ऊ का अर्थ है– परमात्मा। अतः परमात्म-विषयक जो चिन्तना-धारा मनुष्य के भीतर बह रही है, वही सरयू नदी है।

८. असमंज अथवा असमञ्जस–

असमंजस नामक पात्र दुविधा (dilemma) की स्थिति को इंगित करता है। असमंजस द्वारा सरयू नदी में बालकों को डुबोना कहकर यह इंगित किया गया है कि ब्रह्माण्ड में क्रियाशील नियमों का सही ज्ञान न होने के कारण ही जब मनुष्य असमंजस अथवा दुविधा की स्थिति में रहता है, तब जीवन में घटित छोटी-छोटी बातों को परमात्मा से सम्बद्ध करता रहता है अर्थात् अच्छी अथवा बुरी प्रत्येक परिस्थिति में वह किसी भी नियम (कर्मफल नियम) को उत्तरदायी न ठहराकर परमात्मा को ही उत्तरदायी मानता है। परन्तु दुविधा की यह स्थिति अधिक समय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तक नहीं टिकती और जल्दी ही मनुष्य के भीतर ज्ञान की किरण जन्म ले लेती है। इसे ही कथा में असमंजस से अंशुमान नामक पुत्र का उत्पन्न होना और असमंजस का राज्य से बाहर होना कहा गया है।

९. सगर द्वारा भृगु प्रस्त्रवण शिखर पर तप तथा भृगु ऋषि के वरदान से केशिनी एवं सुमति को पुत्रों की प्राप्ति–

भृगु ऋषि कर्मफलों को भूनने वाली विशिष्ट चेतना के प्रतीक हैं तथा वरदान एवं अभिशाप शब्द अवश्य भवितव्यता अर्थात् अवश्य घटित होने को इंगित करते हैं।

उपर्युक्त कथन द्वारा यह संकेतित करने का प्रयास किया गया है कि यद्यपि प्रत्येक मनुष्य के पास केशिनी रूपी पराशक्ति (प्रज्ञा) तथा सुमति रूपी सुन्दर बुद्धि विद्यमान है, परन्तु दोनों ही शक्तियाँ क्रियाशील न होने के कारण गुण-सम्पत्ति रूप पुत्रों को उत्पन्न नहीं कर पाती अर्थात् न तो पराशक्ति के फलस्वरूप मनुष्य के भीतर कोई ज्ञान-किरण उदित हो पाती है और न ही सुन्दर बुद्धि के फलस्वरूप तथ्य की गहराई तक पहुँचने वाली बुद्धि-वृत्तियाँ क्रियाशील हो पाती हैं। मनुष्य के पास विद्यमान उसी की ये दोनों शक्तियाँ निश्चित रूप से तभी क्रियाशील होती हैं, जब उसके कर्मफल भुनते अर्थात् समाप्त होते हैं और पुण्य का उदय होता है। कर्मफलों के भुनने पर ही मनुष्य में अभ्युदय-प्रदायक आवश्यक पात्रता विकसित होती है, जिसे कथा में भृगु ऋषि का वरदान कहकर इंगित किया गया है।

१०. पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर दिशाओं में चार दिग्गजों का दर्शन–

सुमति के साठ हजार पुत्रों द्वारा चार दिशाओं में चार दिग्गजों का दर्शन कहकर मनुष्य की बौद्धिक क्षमता की ओर ध्यान आकृष्ट किया गया है। मनुष्य की बौद्धिक क्षमता अद्भुत है। उसे जिस दिशा में भी लगाया जाएगा, वह उसी दिशा से अद्भुत परिणाम लाएगी।

पूर्व दिशा ज्ञान के उदय की दिशा कही गई है। इस दिशा में बुद्धि-वृत्तियों के उन्मुख हो जाने पर इन्द्रियों अथवा इन्द्रिय-विषयों में गुणात्मक परिवर्तन अवश्य घटित होगा, जिसे कथा में विरूपाक्ष नामक दिग्गज के दर्शन होना कहा गया है। विरूपाक्ष शब्द विरूप और अक्ष नामक दो शब्दों के योग से बना है। अक्ष का अर्थ है– इन्द्रिय अथवा इन्द्रिय-विषय और विरूप का अर्थ है– रूप परिवर्तन। अतः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विरूपाक्ष का अर्थ हुआ– इन्द्रिय अथवा इन्द्रिय-विषय का रूप (गुणात्मक) परिवर्तन। सरल शब्दों में ऐसा कह सकते हैं कि पूर्व दिशा अर्थात् ज्ञानोदय की ओर बुद्धि-वृत्तियों के उन्मुख हो जाने पर इन्द्रियों में गुणात्मक परिवर्तन अवश्य घटित होता है।

दक्षिण दिशा दक्षता-प्राप्ति की दिशा कही गई है। इस दिशा में बुद्धि-वृत्तियों के उन्मुख हो जाने पर धनात्मक (सकारात्मक) दृष्टिकोण की प्राप्ति अवश्य होगी, जिसे कथा में महापद्म नामक दिग्गज के दर्शन होना कहा गया है। कुबेर की नौ निधियों में सबसे पहली निधि है– महापद्म। चूँकि कुबेर देवता धनात्मक (सकारात्मक) शक्ति के प्रतीक हैं, अतः धनात्मक दृष्टिकोण को महापद्म नामक पहली निधि कहा जा सकता है।

पश्चिम दिशा कर्मफलों के अस्त होने की दिशा है। इस दिशा में बुद्धि-वृत्तियों के उन्मुख हो जाने पर मनुष्य को सौमनस्यता रूप श्रेष्ठ गुण की प्राप्ति अवश्य होगी, जिसे कथा में सौमनस नामक दिग्गज के दर्शन होना कहा गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य का कर्म केवल वाचिक अथवा कायिक नहीं होता। मनुष्य का प्राथमिक कर्म मानसिक होता है। मानसिक कर्म (सोच) यदि अच्छा है, तब वाचिक तथा कायिक तो अच्छा होगा ही। इस समझ की ओर बुद्धि-वृत्तियों के उन्मुख होने पर मनुष्य का मन सु मन (सौमनस) अवश्य बनता है और कर्मफलों के अस्त होने का सर्वाधिक सम्बन्ध इस सु मन से ही है।

उत्तर दिशा ऊपर की ओर बढ़ने की दिशा है। इस दिशा में बुद्धि-वृत्तियों के उन्मुख हो जाने पर मनुष्य को समुचित कल्याण के दर्शन अवश्य होंगे, जिसे कथा में श्वेतभद्र नामक दिग्गज के दर्शन होना कहा गया है।

११. पूर्वोत्तर दिशा में अश्व और कपिल मुनि का दर्शन परन्तु अश्व को लौटाने में बुद्धि-वृत्तियों की असमर्थता–

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, पूर्व दिशा ज्ञान के उदय की तथा उत्तर दिशा ऊपर की ओर बढ़ने की दिशा है। मनुष्य जब अपनी बौद्धिक क्षमता का उपयोग इन दोनों दिशाओं में समवेत रूप से करता है, तब उसे शुद्ध मन (यज्ञीय अश्व) और आचरण-परक ज्ञान (कपिल मुनि) के दर्शन अवश्य होते हैं, जिसे कथा में यज्ञीय अश्व और कपिल मुनि के दर्शन कहकर इंगित किया गया है। परन्तु बुद्धि-वृत्तियों का यह दर्शन मात्र सैद्धान्तिक होता है और केवल सिद्धान्त से मन की शुद्धता का अवतरण जीवन में कभी नहीं होता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१२. अति खनन से पृथ्वी का आर्त्तनाद–

प्रस्तुत कथन द्वारा अज्ञानी अर्थात् आचरणात्मक ज्ञान से रहित बुद्धि के दुष्परिणाम की ओर संकेत किया गया है। अनुभवात्मक ज्ञान को साथ लिए बिना केवल बुद्धि–वृत्तियों के सहारे मनुष्य क्या–क्यों–कैसे आदि के रूप में इतने प्रश्न और इतना संशय उपस्थित करता है कि व्यक्तित्व का शम ही नष्ट हो जाता है, जिसे कथा में पृथ्वी का आर्त्तनाद कहकर इंगित किया गया है।

कथा का अभिप्राय

कथा में सबसे पहले यह संकेत किया गया है कि अज्ञान में रहते हुए ही अर्थात् अपने आपको शरीर समझते हुए ही एक न एक दिन मनुष्य के भीतर शुद्ध मन की प्राप्ति हेतु जो प्रबल इच्छा जाग्रत होती है, वही प्रबल इच्छा उसकी चेतना के विकास का प्रथम सोपान (सीढ़ी) बनती है, जिसे कथा में राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन के रूप में दर्शाया गया है। परन्तु अज्ञानी मनुष्य शुद्धता–प्राप्ति हेतु अपनी सुन्दर बुद्धि के जिन सैंकड़ों व्यापारों (वृत्तियों) का सहारा लेता है, वे व्यापार ज्ञान (आचरण–परक ज्ञान) से परिचित नहीं होते। इसीलिए उस सुन्दर बुद्धि के सैकड़ों व्यापार भी शुद्धता–प्राप्ति में मनुष्य के सहायक नहीं हो पाते। सगर के साठ हजार पुत्रों की यज्ञीय अश्व को खोज कर यज्ञ हेतु वापस लाने की असमर्थता के रूप में इसी तथ्य को इंगित किया गया है।

चूँकि अज्ञानी मनुष्य को यह दृढ़ विश्वास होता है कि बौद्धिक क्षमता अद्भुत और अपरिमेय होती है और वह किसी भी तथ्य की गहराई तक जाने में पूर्ण समर्थ भी होती है, अत: वह अपनी उसी बौद्धिक क्षमता को शुद्धता–प्राप्ति के कार्य में नियोजित करके लक्ष्य को प्राप्त कर लेना चाहता है। परन्तु कथा में इस सत्य का उद्घाटन बड़ी सुन्दरता से किया गया है कि मनुष्य की बौद्धिक क्षमता भले ही अद्भुत और अपरिमेय हो, वह उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति हेतु (शुद्धता–प्राप्ति हेतु) पर्याप्त नहीं है। मनुष्य अपनी बौद्धिक क्षमता के सहारे किसी भी तथ्य से पूर्ण परिचित तो हो सकता है परन्तु मन की शुद्धता को नहीं पा सकता। शुद्धता तो ज्ञान–परक आचरण की माँग करती है। उदाहरण के लिए– बौद्धिक क्षमता द्वारा सच के महत्त्व को पढ़ा अथवा समझा जा सकता है परन्तु शुद्धता की प्राप्ति तो सच को आचरण में उतारकर ही सम्भव है। सच के सम्बन्ध में भले ही विश्व की सारी जानकारियाँ इकठ्ठी कर ली जाएँ परन्तु उपर्युक्त लक्ष्य की प्राप्ति में उनका महत्त्व नहीं है। मनुष्य अपने जीवन में यदि असत्यता का ही निरन्तर आचरण करता है, तब उस असत्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

आचरण की छापें ही अवचेतन मन (चित्त) में जमा होती हैं और यही छापें शरीर छोड़ते समय मनुष्य के साथ-साथ निश्चित रूप से आगे चली जाती हैं। एक शरीर को छोड़ते जाने तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करते जाने की निरन्तर यात्रा में ये छापें इकठ्ठी होती जाती हैं और सुन्दर बुद्धि के सैकड़ों व्यापार भी शुद्धता-प्राप्ति रूप लक्ष्य को प्राप्त कराने में तुच्छ-प्राय हो जाते हैं। इसी तथ्य को कथा में सगर के साठ हजार पुत्रों के रसातल में जाकर भस्म रूप हो जाने के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा पुनः संकेत करती है कि धीरे-धीरे जब मनुष्य प्रज्ञा अथवा विवेक का सहारा लेकर और श्रेष्ठ चिन्तन में प्रवृत्त होकर सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ प्रयोगात्मक पक्ष का भी सम्मान करता है अर्थात् ज्ञानयुक्त आचरण की किंचित् भी अवहेलना नहीं करता, तब उसका यही व्यवहार चेतना के विकास का दूसरा सोपान बन जाता है, जिसे कथा में अंशुमान द्वारा पक्षिराज गरुड़ के दर्शन के रूप में चित्रित किया गया है। अब मनुष्य जीवन में सच्चाई का आचरण करता है, जिसका स्पष्ट एवं निश्चित परिणाम होता है– शुद्ध मन की प्राप्ति। अंशुमान द्वारा यज्ञीय अश्व की प्राप्ति कें रूप में इसी तथ्य को इंगित किया गया है।

सिद्धान्त और आचरण के इस मिलन बिन्दु पर खड़ा हुआ और शुद्ध मन को प्राप्त हुआ विवेकी मनुष्य ही अब इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को समझ पाता है कि सिद्धान्त और आचरण के मेल से शुद्ध मन की प्राप्ति रूप जो निर्धारित लक्ष्य था, वह तो पूरा हुआ परन्तु अवचेतन मन (चित्त) में जमा हुई उन छापों का क्या, जिनका उद्धार आत्म-ज्ञान के बिना सम्भव नहीं। गरुड़ के मुख से यज्ञीय अश्व को वापस ले जाने परन्तु रसातल में पड़े हुए पूर्वजों के उद्धार हेतु गंगा-अवतरण की अनिवार्यता के रूप में इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

कथा के प्रमुख बिन्दु

१. मनुष्य की बौद्धिक क्षमता किसी भी तथ्य को भलीभाँति समझने अथवा जानने (ज्ञान) तक सीमित है।

२. मन की शुद्धि हेतु यह समझना अथवा जानना (केवल ज्ञान) पर्याप्त नहीं है।

३. शुद्धता हेतु समझ अथवा ज्ञान को आचरण में उतारना आवश्यक है।

४. आचरण में उतरा हुआ ज्ञान निश्चित रूपेण मन को शुद्ध बना देता है परन्तु चित्त में जमा हुए विकार इस शुद्धता को टिकने नहीं देते।

५. अतः चित्तगत विकारों से मुक्ति हेतु समस्त ज्ञानों का भी ज्ञान आत्म-ज्ञान आवश्यक है।

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Implementation of Knowledge is neccessary for Purity as described through the story of King Sagara

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Bālakāṇḍa, chapters 38-41), it is said that there was a king named Sagara in Ayodhya. He had two wives but no child. When he performed penances on Bhṛgu top of Himālaya, Ṛṣi Bhṛgu gave him boon to get children. Consequently he got one son Asamañjasa from his wife Keśinī and sixty thousand sons from his wife Sumati.

As Asamañjasa used to throw children in river Saryū, Sagara expelled him from his kingdom. Once king Sagara decided to perform Aśvamedha Yajña. He appointed his grandson – Aṁśumāna to protect the horse of that Yajña but during this process, Indra stole away the horse and tied him in Rasātala. Ṛṣis of Yajña informed king Sagara about this theft and asked that the horse should be brought back. Accordingly Sagara sent his sixty thousand sons to search the thief and the horse. All the sons reached in all directions but could not succeed and reported back to him. Thereupon Sagara asked them to dig the earth. They dug it deeper and deeper and reached Rasātala. There they found the horse standing near Kapila Muni. Understanding Kapila Muni to be the thief, they proceeded to kill him. But as soon as Kapila Muni became angry, all the sons turned into ashes.

King Sagara waited for a long time. But when his sons did not return, he instructed his grandson – Aṁśumāna to go for search. Aṁśumāna followed the same route, in which his uncles had gone and reached Rasātala. When he saw that his uncles had turned into ashes, he became very sad. He looked all around for water to offer them libation. But in the meantime Garuḍa suddenly appeared and advised him to bring Gaṅgā water which alone could liberate them. He further advised him to return back with the horse and perform Aśvamedha.

The story is symbolic and describes that the long journey of

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

births and deaths makes a person impure but one day or the other, he strongly wishes to restore his insintric purity and moves in this direction which is symbolized as king Sagara performing Aśvamedha Yajña.

The story tells that every person has two Powers. First is his Intellectual Power and second is his Supernatural Power or Wisdom. It is true that the Power of Intellect is amazing and makes him able to achieve all possible informations regarding Purity but fails in cultivating it in one's personality as this ignores the Implementation of Knowledge symbolized as the failure of Sumati's sons in bringing back the horse ignoring Kapila Muni.

On the other hand, the second Power-Supernatural Power or Wisdom although creates dilemma in the beginning but soon takes a person towards Knowledge. This Knowledge symbolized as Aṁśumāna properly uses all previous informations collected by intellect and cultivates Purity in one's personality symbolized as the bringing back of the horse by Aṁśumāna.

Describing the accumulation of Saṁskāras in Sub-conscious mind, the story tells that an intellectual person strongly wishes to acquire purity but he is ignorant of the fact that purity can come only by Implementing Knowledge in life. For example everybody likes truthfulness and he knows everything about the truth but he himself does not speak the truth. This impure behaviour creates impure Saṁskāras in his Sub-conscious mind symbolized as the lying of Sixty thousand sons into ashes in Rasātala.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

७. गंगा-अवतरण कथा

(आत्म-ज्ञान की आवश्यकता एवं महत्त्व का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
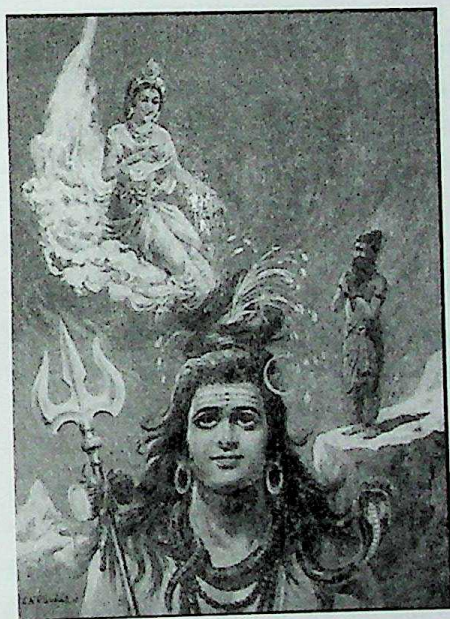
गंगा-अवतरण की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान की आवश्यकता एवं महत्त्व का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड (सर्ग ४१ से ४३ तक) में गंगा-अवतरण से सम्बन्धित जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

कपिल की क्रोधाग्नि से सगर-पुत्रों के भस्म हो जाने और गरुड़ द्वारा यह निर्देश दिये जाने पर कि सामान्य जलांजलि से इनका उद्धार नहीं हो सकता तथा लोकपावनी गंगा ही अब इनका उद्धार कर सकती हैं, अंशुमान यज्ञीय अश्व को लेकर लौट गया और समस्त समाचार राजा सगर से निवेदित किया। राजा सगर ने पहले अपने यज्ञ (अश्वमेध यज्ञ) को पूर्ण किया और फिर गंगा को लाने के विषय में विचार किया। परन्तु दीर्घकाल तक बहुत विचार करने पर भी उन्हें कोई उपाय न सूझा और वे स्वर्गलोक को चले गए।

राजा सगर की मृत्यु हो जाने पर अंशुमान ने भी गंगा को लाने के लिए तप किया परन्तु वे भी गंगा को लाने में समर्थ न हो सके। तत्पश्चात् अंशुमान के पुत्र राजा दिलीप भी पितरों के उद्धार हेतु चिन्ता में पड़े रहे परन्तु पितरों के उद्धार में सफल न हो सके। दिलीप के पुत्र राजा भगीरथ हुए, जो राज्य की रक्षा का भार मन्त्रियों पर रखकर गंगा के अवतरण हेतु तप करने लगे। तप से प्रसन्न हुए ब्रह्मा जी ने भगीरथ को कहा कि यह पृथ्वी गंगा के वेग को धारण करने में समर्थ नहीं है। अतः तुम पहले शिव को प्रसन्न करो। शिव ही अपने मस्तक पर गंगा को धारण करने में समर्थ हैं।

तदनुसार राजा भगीरथ ने तप द्वारा शिव को प्रसन्न किया और शिव ने भी गंगा के प्रबल वेग को अपने मस्तक पर धारण कर लिया। गंगा बहुत समय तक शिव के जटाजूट में अदृश्य बनी रही परन्तु भगीरथ के पुनः तप करने पर शिव ने उन्हें छोड़ दिया। पृथ्वी पर आई हुई गंगा अब भगीरथ के पीछे-पीछे चलने लगी। जिधर भगीरथ जाते, गंगा भी उनका अनुसरण करती। मार्ग में राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गंगा अपने जल-प्रवाह से उनके यज्ञ-मंडप को बहा ले गई। जह्नु ने क्रुद्ध होकर गंगा के समस्त जल को पी लिया परन्तु ऋषियों के प्रार्थना करने पर श्रोत्रों के छिद्र से उन्हें पुनः प्रकट

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कर दिया। अब भगीरथ गंगा को लेकर रसातल में गए। वहाँ विद्यमान भस्म-राशि से जब गंगाजल का स्पर्श हुआ, तब सब पूर्वज निष्पाप होकर स्वर्गलोक में चले गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है। अतः कथा के तात्पर्य को समझने के लिए प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी है।

१. राजा सगर और उनके साठ हजार पुत्र—

देहाभिमानी मनुष्य को ही यहाँ राजा सगर के रूप में चित्रित किया गया है। इस देहाभिमानी मनुष्य को जो बुद्धि-शक्ति (बौद्धिक क्षमता) प्राप्त है, वह अद्भुत और अपरिमेय है। उस बुद्धि-शक्ति के हजारों व्यापारों (वृत्तियों) को ही यहाँ राजा सगर के हजारों पुत्रों के रूप में चित्रित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि शास्त्रों में कहीं-कहीं बुद्धि की जिन साठ वृत्तियों का उल्लेख हुआ है, उन साठ वृत्तियों तथा उनके विस्तार को ही यहाँ प्रच्छन्न रूप में साठ हजार कहकर प्रस्तुत किया गया है।

२. कपिल की क्रोधाग्नि से सगर-पुत्रों का भस्म होना—

शुद्ध मन की प्राप्ति में मनुष्य को प्राप्त बुद्धि-वृत्तियां (बौद्धिक क्षमता) कभी समर्थ नहीं हो पाती क्योंकि वे केवल सैद्धान्तिक होती हैं और आचरण-परक ज्ञान (कपिल मुनि) से सर्वथा अनभिज्ञ। इसी अनभिज्ञता के कारण वे समस्त वृत्तियां आचरण-परक ज्ञान (कपिल मुनि) का तिरस्कार करके विपरीत आचरण भी करती हैं, अतः शुद्धता-प्राप्ति (यज्ञीय अश्व की प्राप्ति) में तो असमर्थ होती ही हैं, अपने विपरीत आचरण के कारण अवचेतन मन के भीतर भी संस्कार रूप (छाप रूप) में विद्यमान हो जाती हैं।

३. सगर द्वारा अश्वमेध यज्ञ की पूर्णता—

मन रूपी अश्व को मेध्य अर्थात् शुद्ध बनाना ही अश्वमेध यज्ञ कहलाता है। इस शुद्ध मन की सबसे बड़ी पहचान यही होती है कि किसी भी प्रकार की वृत्ति (सकारात्मक अथवा नकारात्मक) इसे बांध नहीं सकती। देहाभिमानी मनुष्य एक न एक दिन ज्ञान का सहारा लेकर अपने मन रूपी अश्व को निश्चित रूप से शुद्ध बना लेता है, जिसे कथा में सगर द्वारा अंशुमान की सहायता से अश्वमेध यज्ञ की पूर्णता के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४. गरुड़ पक्षी–

श्रेष्ठ विचार अथवा श्रेष्ठ चिन्तन को ही पौराणिक साहित्य में गरुड़ नामक पक्षी के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

५. राजा दिलीप–

दिलीप शब्द दलीप शब्द का ही तद्भव स्वरूप प्रतीत होता है। दलीप शब्द टूटना अथवा फटना अर्थ वाली दल् धातु में ईप प्रत्यय लगने से बना है। अत: राजा दिलीप मन की उस स्थिति का वाचक है, जब मन में विद्यमान यह संकल्प कि 'मैं शरीर हूँ' टूट जाता है।

६. राजा भगीरथ–

भगीरथ शब्द भग और रथ नामक दो शब्दों के मेल से बना है। भग का अर्थ है– श्रेष्ठता, प्रयत्न, सामर्थ्य आदि। अत: जो मन 'मैं आत्मा हूँ' इस आत्म-ज्ञान रूप श्रेष्ठ संकल्प के रथ पर आरूढ़ हो जाता है– वह भगीरथ कहलाता है।

७. शिव के मस्तक पर गंगा का उतरना–

प्रत्येक मनुष्य शिव अर्थात् आत्म-स्वरूप ही है। इस आत्म-स्वरूपता को वह केवल भूल गया है। अत: आत्म-स्वरूपता के पुन: स्मरण को ही कथा में शिव के मस्तक पर गंगा का उतरना कहा गया है।

८. शिव के जटाजूट में गंगा का अदृश्य होना–

जटाजूट शब्द मान्यता को इंगित करता है। आत्म-स्वरूप अर्थात् शिव-स्वरूप होते हुए भी जन्मों-जन्मों की यात्रा में मनुष्य की सोच में यह मान्यता निर्मित हो गई है कि वह एक शरीर है। इसी मान्यता (जटाजूट) के भीतर नई-नई निर्मित हुई यह आत्म-परक सोच कि 'वह चैतन्य-शक्ति आत्मा है' छिप जाती है, जिसे अब बार-बार प्रयत्न करके ही प्रकट किया जा सकता है।

९. राजा जह्नु–

जह्नु शब्द त्यागना अथवा छोड़ना अर्थ वाली जह् धातु (अथवा हा धातु) से निष्पन्न हुआ है। अत: राजा जह्नु एक ऐसे शुद्ध, श्रेष्ठ मन को इंगित करता है, जो शरीर-दृष्टि का परित्याग कर चुका है। ऐसा शुद्ध, श्रेष्ठ मन (जह्नु) ही आत्म-ज्ञान (गंगा) को आत्मसात् करके उसे आचरण में उतार लेता है। अत: आत्म-ज्ञान (गंगा) को आत्मसात् करके उसे आचरण में उतारने के कारण ही राजा जह्नु को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कथा में गंगा को पीकर श्रोत्रों से बाहर निकाल देने वाले के रूप में इंगित किया गया है। श्रोत्र शब्द श्रुति को इंगित करता प्रतीत होता है। इन्द्रियों द्वारा गृहीत जो बाह्य-ज्ञान मन के भीतर शोर को उत्पन्न करता है– उसे श्रव कहा जाता है। इसके विपरीत, जो आत्म-ज्ञान शान्ति को लाता है– वह श्रुत ज्ञान कहलाता है। यह श्रुत ज्ञान (अनुभवात्मक अथवा आचरणात्मक ज्ञान) ही अवचेतन मन (चित्त) को विकार रूप संस्कारों से मुक्त करने में समर्थ होता है, जिसे कथा में राजा जह्नु के श्रोत्रों से निकली हुई गंगा द्वारा सगर-पुत्रों के उद्धार के रूप में वर्णित किया गया है।

कथा का तात्पर्य

पौराणिक कथाएँ जीवन की सच्चाईयों का ऐसा जीवन्त चित्र प्रस्तुत करती हैं कि वे चित्र ही सच्ची घटना से प्रतीत होने लगते हैं। अन्ततः मनुष्य उन्हें ही इतिहास मान कर उनमें ऐसा भटक जाता है कि सच्चाई दूर होती चली जाती है और फिर उस सच्चाई को पकड़ना भी अत्यन्त कठिन हो जाता है। रामायण तथा अनेक पुराणों में वर्णित गंगा-अवतरण की कथा भी इसका अपवाद नहीं है। स्थूल दृष्टि से देखने पर जो कथा गंगा नामक नदी के अवतरण की कथा मान ली गई है, वही कथा सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर आत्म-ज्ञान रूपी गंगा के अवतरण को इंगित करती है। अतः सबसे पहले हमें आत्म-ज्ञान के अभिप्राय को समझ लेना आवश्यक है, जिसके लिए गंगा को प्रतीक रूप में चुना गया है।

आत्म-ज्ञान का सरल सा तात्पर्य है– आत्म का ज्ञान अर्थात् स्वयं का ज्ञान। मैं कौन हूँ– इसका ज्ञान मनुष्य को सबसे पहले होना चाहिए। यही प्राथमिक ज्ञान है– शेष सारा ज्ञान इसी ज्ञान का अनुगमन करता है। मैं कौन हूँ– इसका ज्ञान न होना ही अज्ञान है और इस प्राथमिक अज्ञान के पीछे-पीछे ही शेष सारा अज्ञान उत्पन्न होता है।

'मैं एक ज्योतिर्बिन्दुरूप, भ्रू-मध्य में स्थित, अजर-अमर-अविनाशी, सुख-शान्ति-शुद्धता-शक्ति-ज्ञान-प्रेम तथा आनन्द से भरपूर चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ' यह जान लेना और उसमें स्थित हो जाना ही आत्म-ज्ञान है। अपनी इस सही पहचान का ज्ञान होने पर ही मनुष्य अपने प्राप्त हुए शरीर (स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण शरीर) को उपकरण-स्वरूप समझकर उसका स्वामी बन पाता है और तब ही अपने इस उपकरण-स्वरूप अथवा सेवक-स्वरूप शरीर का नियन्ता होकर उसे अभीष्ट दिशा में गतिमान कर सकता है। ठीक वैसे ही जैसे एक रथी अपने रथ को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अभीष्ट दिशा में ले जाता है।

प्राप्त हुए शरीर को उपकरण-स्वरूप न समझकर उसे ही अपना स्वरूप समझ लेना अर्थात् यह शरीर ही मैं हूँ– ऐसा समझ लेना और फिर शरीर से सम्बन्धित अपनी भूमिकाओं, पदों तथा सम्पत्ति आदि में आसक्त होकर तदनुसार जीवन जीना विकारों की जिस लम्बी शृंखला को जन्म देता है– वह विकार-शृंखला आसानी से नहीं टूटती। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानकर और तदनुसार वर्तन करके ही इस विकार-शृंखला से मुक्त हुआ जा सकता है।

यही नहीं, अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने से मनुष्य अपने सुख-शान्ति-शक्ति-शुद्धता-ज्ञान-प्रेम तथा आनन्द रूप उन गुणों को भी भूल जाता है, जिनसे वह स्वभावतः सम्पन्न है और जिनको कहीं बाहर खोजने की आवश्यकता नहीं है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान अर्थात् स्व-स्वरूप को पहचानने की शुरुआत अज्ञान अर्थात् देह-ज्ञान में रहते हुए ही करनी है (राजा सगर का तप)। मैं शरीर नहीं हूँ अपितु शरीर को चलाने वाली चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– इस ज्ञानमय विचार को मन-बुद्धि के भीतर बार-बार ड़ालना है (अंशुमान का तप)। मन-बुद्धि के भीतर बार-बार ड़ाला गया यह ज्ञानमय विचार वहाँ धीरे-धीरे ही टिकना शुरु होता है परन्तु एक न एक दिन ऐसा अवश्य आ जाता है, जब वह ज्ञानमय विचार अवांछित अज्ञानमय विचार को अर्थात् मैं शरीर हूँ– इस संकल्प को तोड़ने लगता है (राजा दिलीप का तप) और मैं आत्मा हूँ– इस संकल्प के रूप में दृढ़ होने लगता है (राजा भगीरथ का तप)। ज्ञानमय विचार की इस उपर्युक्त वर्णित क्रमिक यात्रा को ही कथा में वंश-परम्परा के रूप में यह कहकर प्रदर्शित किया गया है कि राजा सगर ने, उनके पौत्र अंशुमान ने तथा अंशुमान के पुत्र दिलीप ने गंगा के अवतरण हेतु महान् तप किया परन्तु गंगा का अवतरण नहीं हो सका। अन्त में दिलीप के पुत्र भगीरथ ने तप करके गंगा को स्वर्ग से नीचे उतार लिया।

कथा संकेत करती है कि दृढ़ता-पूर्वक निरन्तर इस संकल्प में स्थित रहते हुए कि मैं चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– एक न एक दिन मनुष्य की सोच में सम्पूर्णतः यह ज्ञान पूरित हो जाता है, जिसे कथा में शिव के मस्तक पर गंगा का विराजमान होना कहा गया है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य शिव-स्वरूप (आत्म-स्वरूप) ही है। केवल सोच में बने हुए समीकरण को बदलना है। जैसे ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह समीकरण बदलता है अर्थात् मैं शरीर हूँ– इस अज्ञान के स्थान पर मैं आत्मा हूँ– यह ज्ञान विराजित हो जाता है– तब उस विराजमान ज्ञान को ही शिव के मस्तक पर गंगा का विराजमान होना कहा गया है।

कथा पुनः संकेत करती है कि मनुष्य की सोच में इस ज्ञान का सम्पूर्णतः विराजित हो जाना कि वह अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा है, शरीर नहीं- अत्यन्त श्रेष्ठ तो है परन्तु पर्याप्त नहीं है। इस आत्म-ज्ञान को भी सोच के स्तर से (मानसिक स्तर से) आचरण के स्तर पर उतारना अनिवार्य है अर्थात् मनुष्य को अब सारा व्यवहार यह ध्यान में रखते हुए करना है कि वह स्वयं चैतन्य-शक्ति आत्मा है और जिसके साथ वह व्यवहार कर रहा है– वह भी उसके समान आत्म-स्वरूप ही है। यही आत्म-दृष्टि मनुष्य-मन को समत्व, सहयोग, स्वीकार जैसे श्रेष्ठ गुणों से भरकर श्रेष्ठ बना देती है और ऐसा श्रेष्ठ मन ही आत्म-ज्ञान रूप गंगा को आत्मसात् करके उसे श्रुति-परक अर्थात् आचरण-परक बना लेता है। इसी तथ्य को कथा में जह्नु द्वारा गंगा को पी लेने और फिर श्रोत्रों द्वारा छोड़ देने के रूप में वर्णित किया गया है।

कथा संकेत करती है कि प्रयत्नपूर्वक बार-बार किया हुआ यह आत्म-ज्ञान-परक आचरण भी जब अवचेतन मन (चित्त) के भीतर अपनी नूतन छापें बना लेता है, तब यही नूतन निर्मित हुई छापें पुरानी और अज्ञान से निर्मित हुई छापों को निष्प्रभावी कर देती हैं, जिसे कथा में रसातल में पहुँची हुई गंगा द्वारा भस्मरूप हुए सगर-पुत्रों के उद्धार के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

कथा के कतिपय प्रमुख बिन्दु

१. आचरण में उतरा हुआ ज्ञान निश्चित रूपेण मन को शुद्ध बना देता है परन्तु अवचेतन मन (चित्त) में जमा हुए विकार इस शुद्धता को टिकने नहीं देते।

२. अतः अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान विकारों से मुक्ति हेतु समस्त ज्ञानों का भी ज्ञान आत्म-ज्ञान आवश्यक है।

३. मनुष्य आत्म-ज्ञान को भलीभाँति समझे और दृढ़तापूर्वक सर्वप्रथम अपनी सोच में उसे स्थापित करे।

४. सोच में स्थापित हुए आत्म-ज्ञान को फिर आचरण में भी उतारे।

५. आचरण में उतारा हुआ आत्म-ज्ञान ही निश्चितरूपेण अवचेतन मन (चित्त) में जमा हुए विकारों का उद्धार करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अत: जैसे मन की शुद्धता हेतु ज्ञानयुक्त आचरण आवश्यक है, वैसे ही अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए विकारों के उद्धार हेतु आत्म-ज्ञान युक्त आचरण भी अपरिहार्य है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Necessity and Importance of Self-Knowledge as described through Gaṅgā's Descending on earth

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Bālakāṇḍa, Chapters 41 to 43), there is a story of River Gaṅgā. It is said that once king Sagara performed Aśvamedha Yajña but Indra stole his horse and tied him in Rasātala near the hermitage of Kapila Muni. Searching the horse, Sagara's thousands of sons reached in Rasātala and saw the horse standing near Kapila Muni. Understanding Kapila Muni to be the thief, they proceeded to kill him. But as soon as Kapila Muni became angry, all the sons turned into ashes.

King Sagara waited for a long time. But at last, his grandson– Aṁśumāna reached Rasātala and saw his uncles turned into ashes. Aṁśumāna became very sad but Garuḍa advised him to bring Gaṅgā water to liberate them.

Aṁśumāna returned with the horse and informed king Sagara about all that had happened. Then king Sagara first completed his Yajña and thought of the plan to bring Gaṅgā to earth but he could not succeed till death. Then his grandson – Aṁśumāna also tried but he also failed. Now king Dilīpa (Son of Aṁśumāna) tried for the liberation of his ancestors, but he also could not succeed. At last, king Bhagīratha (Son of Dilīpa) performed intense penances to bring Gaṅgā. Pleased by his penances Brahmā appeared and suggested him to invoke Lord Śiva as only Śiva could bear the pressure of Gaṅgā. Bhagīratha pleased Śiva by his prayers and eventually Śiva held Gaṅgā on his head. After Śiva released Gaṅgā from his head, she gradually came on earth and followed Bhagīrath going towards Rasātala.

On the way king Jahnu was performing a Yajña. When Gaṅgā immersed his Yajña, Jahnu drank whole of it's water but liberated her from his ears on the request of Ṛṣis. Now Gaṅgā following Bhagīratha reached Rasātala and as soon as Gaṅgā water touched the ashes, all the ancestors got liberated and went to heaven.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The story is symbolic and relates to Self-Knowledge (Ātmajñāna) symbolized as River Gaṅgā. It says that in the long journey of births and deaths a person accumulates saṁskāras in his sub-conscious mind. Implementation of Knowledge in daily behaviour makes a person pure but this purity is not sufficient in destroying the Saṁskāras accumulated in Sub-conscious mind. A person only after Knowing his own Real Self and Behaving accordingly destroys those Saṁskāras stored in Sub-conscious mind. This is symbolized as bringing Gaṅgā by king Bhagīratha and liberating his ancestors (thousands sons of Sagara).

The story describes that every person is a Soul (Śiva). But he forgot this Real Identity. He has to remember that he is Energy (Soul) not the body. Body is his instrument through which he manifests whatever he thinks or experiences. He is the Creator and Controller of his own thoughts, therefore he himself is responsible for his happiness or sorrow. Peace, Power, Purity, Love, Happiness, Knowledge and Bliss is his core nature, therefore experiencing and sharing these qualities is the sole purpose of his life. He is identically same on Energy (Soul) level but totally different on psychophysical level, therefore he has to accept everyone as he is. This is symbolized as Retaining Gaṅgā by Śiva on his head.

Living and Practicing this Knowledge, a person develops Equanimity in life and all types of negativity such as blaming, criticism, comparison, competition, greed, jealousy etc. automatically vanish. This is symbolized as king Jahnu in the story. This creates new positive Saṁskāras in Sub-conscious mind and old Saṁskāras of negativity become inactive. This is symbolized as the liberation of sixty thousand sons of king Sagara after coming in contact of Gaṅgā.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

८. सीता की उत्पत्ति-कथा

(पवित्र-सोच (पवित्रता) की उत्पत्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

८. सीता की उत्पत्ति-कथा

(पवित्र-सोच (पवित्रता) की उत्पत्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
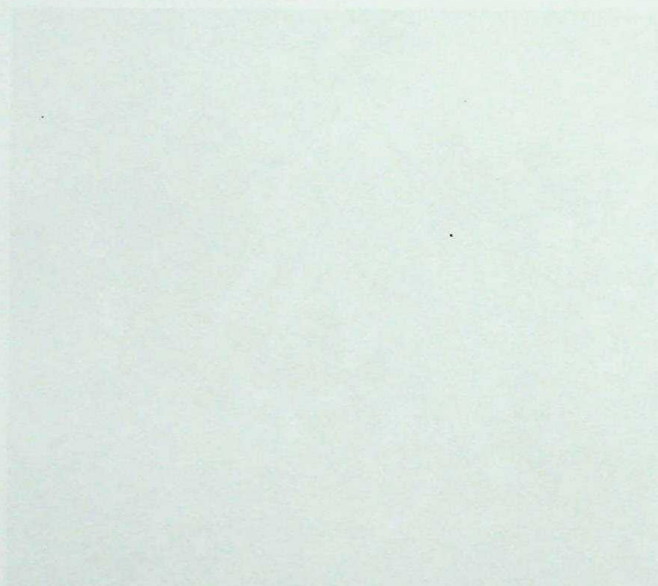
सीता की उत्पत्ति-कथा से माध्यम से पवित्र-सोच (पवित्रता) की उत्पत्ति का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड (सर्ग ६६, श्लोक १३, १४) में सीता की उत्पत्ति से सम्बन्धित एक छोटी सी कथा वर्णित है। कथा इस प्रकार है–

कथा का स्वरूप

एक दिन राजा जनक यज्ञ हेतु भूमि का शोधन करते समय खेत में हल चला रहे थे। तभी हल के अग्रभाग से जोती गई भूमि से एक कन्या प्रकट हुई, जिसका नाम सिता से उत्पन्न होने के कारण सीता ही रखा गया।

कथा की प्रतीकात्मकता

१. जनक–

जनक शब्द का अर्थ है– जननं करोति इति अर्थात् जो (पवित्रता या पवित्र-सोच का) जनन (उत्पन्न) करता है, वह जनक है। तात्पर्य यह है कि जो भी मनुष्य ज्ञान का आश्रय लेकर अपने मन-बुद्धि के भीतर पवित्रता अर्थात् पवित्र-सोच को जन्म देता है, वही जनक है।

२. यज्ञ–

आत्मिक उत्थान हेतु किए जाने वाले श्रेष्ठ कर्म को ही अध्यात्म के स्तर पर यज्ञ कहा जाता है।

३. भूमि और उसका शोधन–

अध्यात्म के स्तर पर मनुष्य के शरीर (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) को ही भूमि कहा जाता है। चूँकि यह शरीर अनेकानेक विकारों से युक्त है, अतः इसे शुद्ध करना आवश्यक है।

४. खेत (क्षेत्र)–

मन और बुद्धि को ही क्षेत्र कहा जा सकता है क्योंकि इसी क्षेत्र में ज्ञान की संधारणा अर्थात् ज्ञान को धारण करना सम्भव है। ज्ञान को धारण करके पहले मन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और बुद्धि पवित्र बनते हैं और फिर पवित्र बने हुए मन-बुद्धि स्थूल तथा कारण शरीर को भी पवित्र बना देते हैं।

५. हल–

हल शब्द ज्ञान को इंगित करता है। जैसे ऊसर (अनुपजाऊ) खेत में हल को चलाने से खेत उर्वर (उपजाऊ) हो जाता है और उस उर्वर खेत में ड़ाला गया श्रेष्ठ बीज अवश्य अंकुरित होता है, उसी प्रकार ज्ञान का हल भी ऊसर बने हुए मन-बुद्धि रूपी खेत को उर्वर बना देता है और फिर उस उर्वर बने हुए मन-बुद्धि रूपी खेत में जो भी श्रेष्ठ विचार रूपी बीज ड़ाला जाता है, वह अवश्य अंकुरित होकर पुष्पित एवं पल्लवित होता है।

६. सीता-

जैसे हल द्वारा खेत में बनाई गई पवित्र (उपजाऊ) रेखा को सिता कहा जाता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी हल के द्वारा मन और बुद्धि रूपी खेत में निर्मित हुई पवित्रता (पवित्र-सोच) को यहाँ सीता कहा गया है। अत: सीता नामक पात्र मन-बुद्धि की पवित्रता अर्थात् पवित्र-सोच का ही मानवीकृत स्वरूप है।

कथा का अभिप्राय

प्रस्तुत कथा के माध्यम से यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि मन-बुद्धि की पवित्रता अर्थात् पवित्र-सोच (सीता) की प्राप्ति के लिए अपने ही मन-बुद्धि रूपी क्षेत्र (खेत) में ज्ञान रूपी हल को चलाना आवश्यक है। जैसे खेत में हल चलाकर व्यर्थ उगी हुई घास तथा कंकड़- पत्थर आदि के अलग हो जाने से किसी भी मनुष्य को बीज बोने योग्य शुद्ध सिता (हल द्वारा निर्मित रेखा) की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार मन-बुद्धि के क्षेत्र में ज्ञान रूपी हल को चलाकर काम, क्रोधादि विकारों के बाहर निकल जाने से मनुष्य को पवित्र-सोच की प्राप्ति अवश्य होती है, जिसे कथा में जनक द्वारा सीता को प्राप्त करना कहा गया है।

प्रस्तुत कथा आश्वस्त करती है कि यदि कोई मनुष्य आत्मिक उत्थान हेतु दृढ़ संकल्पित होकर अपनी ही सामान्य सोच में ज्ञान की संधारणा करता है, तब वह निश्चित रूप से पवित्र-सोच को प्राप्त करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Origination of Pure-Thinking (Purity) is described through the Origination of Sītā

There is a brief story in Vālmīki Rāmāyaṇa (Bāla Kāṇḍa, chapter 66), related with the origin of Sītā. It is said that once king Janaka was ploughing his field for yajña. While ploughing, a girl emerged from Sitā (i.e. line made by the plough). King Janaka saw her, picked her up and named her Sītā as she had emerged from Sitā.

The story describes that a person accumulates many wrong beliefs in the long journey of his various births and deaths. These wrong beliefs strongly affect his thinking and consequently his thinking gets polluted and becomes impure.

Now Knowledge is the only means by which Pure-Thinking (or Purity of Mind and Intellect) can be achieved back. The story says that Knowledge is just like a plough. Just as ploughing first makes a field free from weeds and then Sitā (a place for sowing the seeds) appears, in the same way, a person imbibing Knowledge first makes his mind free from all waste, negative thoughts and then Pure-Thinking (or Purity of Mind and Intellect) emerges symbolized as Sītā.

The story indicates that when a person, firmly determined for development of (Self), willfully resorts to Knowledge, then Knowledge surely brings him back his Purity which is symbolized as finding of Sītā by king Janaka.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

९. राम द्वारा शिव-धनुष-भंग कथा

(आत्म-ज्ञान द्वारा चेतन मन के तल पर विद्यमान अभिमान के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.
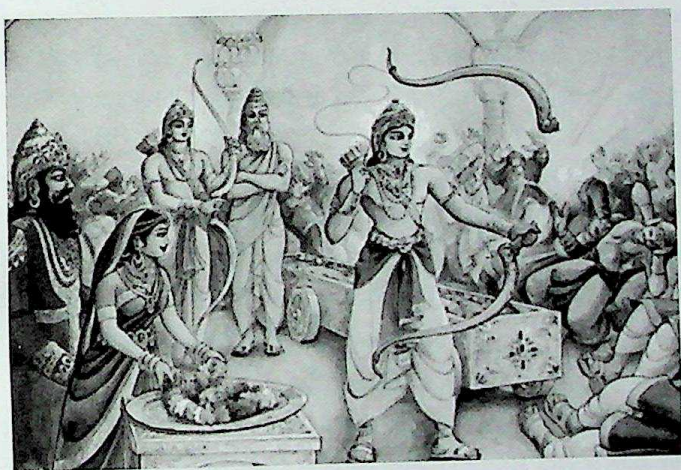
Digitized by Madhuban Trust, Delhi
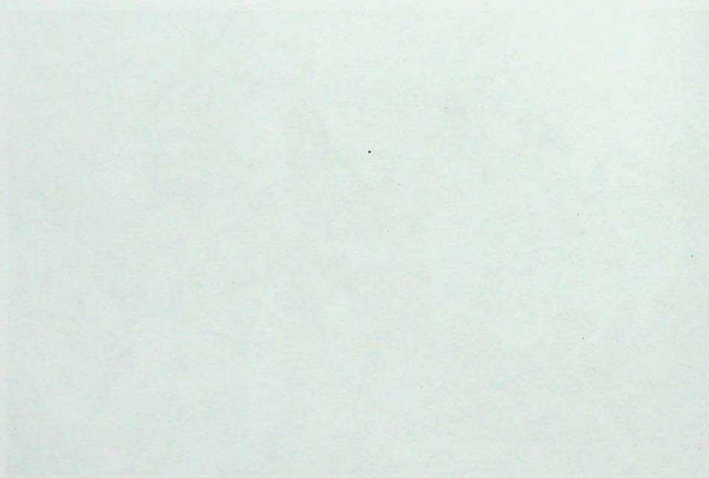
राम द्वारा शिव-धनुष-भंग के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा चेतन मन के तल पर विद्यमान अभिमान के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड (सर्ग ६६-६७) में वर्णित शिव-धनुष के भंग की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

एक बार राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ राजा जनक के यज्ञ को देखने के लिए मिथिलापुरी में गए। वहाँ उन्होंने शिव-धनुष को देखने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार मोटे ताजे ५ हजार वीर उस मंजूषा को किसी तरह ठेलकर ले आए, जिसमें वह धनुष रखा हुआ था। वह मंजूषा लोहे की बनी थी और उसमें आठ पहिए थे। राम ने राजा जनक और विश्वामित्र की आज्ञा लेकर उस धनुष को बीच से पकड़कर उठा लिया और उस पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। परन्तु उन्होंने जैसे ही उस धनुष को कान तक खींचा, वैसे ही वह धनुष बीच से टूट गया। राजा जनक प्रसन्न हो गए क्योंकि उन्होंने यह घोषणा की थी कि जो भी वीर शिव-धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, वही उनकी अयोनिजा कन्या सीता से विवाह कर सकेगा। अनेक राजाओं ने सीता को प्राप्त करने के लिए शिव-धनुष को उठाने का प्रयत्न किया था, परन्तु कोई भी राजा उस धनुष को उठाने में समर्थ नहीं हो सका था।

धनुष के विषय में कथा में कहा गया है कि पूर्वकाल में दक्ष-यज्ञ के समय देवों ने जब शिव को उनका भाग नहीं दिया था, तब क्रुद्ध शिव ने पहले तो दक्ष-यज्ञ का विध्वंस किया था और फिर अपने धनुष को उठाकर देवों से कहा था कि मैं इस धनुष से तुम्हारे श्रेष्ठ अंगों (मस्तकों) को काट डालूँगा। परन्तु देवों ने जब शिव को प्रसन्न किया था, तब शिव ने वह धनुष देवों को ही अर्पण कर दिया था। बाद में उसी धनुष को देवों ने निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात के पास धरोहर के रूप में रख दिया था।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है, अत: सबसे पहले कथा के प्रतीकों को समझना उपयोगी होगा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शिव-धनुष–

धनुष नामक शस्त्र एक ऐसा आधार है जिसके ऊपर बाण को रखकर लक्ष्य का वेधन किया जाता है। अध्यात्म के स्तर पर मनुष्य का मन भी एक धनुष की तरह है. जिसको आधार बनाकर और उस आधार पर संकल्प रूपी बाण को रखकर मनुष्य अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है। मनुष्य का मन रूपी यह आधार दो प्रकार का है। एक है– स्वयं को शरीर मानने के कारण अभिमान रूप आधार और दूसरा है– स्वयं को आत्म-स्वरूप (चैतन्य-स्वरूप) मानने के कारण आत्म-ज्ञान रूप आधार जिसे उपनिषदों में ओंकार रूप आधार (प्रणवो धनुः) कहा गया है। इन दो प्रकार के आधारों अर्थात् अभिमानी मन तथा आत्म-ज्ञान युक्त मन को ही प्रतीक शैली में दो प्रकार के धनुष कहा गया है। अभिमानी मन रूप आधार को शिव-धनुष और आत्म-ज्ञान से युक्त हुए मन रूप आधार को विष्णु-धनुष। शिव-धनुष का अर्थ है– शिव द्वारा धारण किया हुआ अभिमानी मन रूप धनुष। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य शिव ही है परन्तु जब वह अपने शिवत्व (आत्मत्व) को भूल जाता है, तब प्रसुप्त अवस्था में विद्यमान अपने ही अभिमानी मन को जाग्रत कर लेता है, जिसे पुराणों में शिव द्वारा धनुष को धारण करने के रूप में चित्रित किया गया है। रामायण महाकाव्य में दोनों ही प्रकार के धनुषों का वर्णन प्राप्त होता है।

अभिमानी मन का तात्पर्य- अपने वास्तविक स्वरूप– चिदानन्द-स्वरूप अथवा चैतन्य-स्वरूप को भूल जाने के कारण जब मनुष्य स्वयं को शरीर ही समझने लगता है, तब सबसे पहले शरीर से सम्बन्ध रखने वाली अपनी विभिन्न भूमिकाओं (roles) को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझने लगता है। उदाहरण के लिये– वह यह समझता है कि मैं पिता हूँ, मैं भाई हूँ, मैं बेटा हूँ आदि आदि। अपनी इन समस्त भूमिकाओं को भूमिका न समझकर यही मैं हूँ– ऐसा समझ लेना और उनमें आसक्त हो जाना अथवा उनसे जुड़ाव बना लेना मनुष्य का सबसे पहला अभिमान है क्योंकि वह वास्तव में विभिन्न भूमिकाओं को निभाने वाला तो है परन्तु स्वयं भूमिका नहीं है। जैसे एक अभिनेता सिनेमा में अनेक प्रकार की भूमिकाओं का निर्वाह करता है, परन्तु वह स्वयं भूमिका नहीं होता। वह भूमिका का निर्वाह करने वाला परन्तु भूमिका से अलग एक अभिनेता ही होता है। उसी प्रकार मनुष्य भी भूमिकाओं से अलग, भूमिकाओं का निर्वाह करनेवाला एक चैतन्य-शक्ति आत्मा ही है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

भूमिका को ही अपना स्वरूप समझने के समान कभी कभी मनुष्य अपने पद (designations) को ही अपना स्वरूप समझ लेता है। आजीविका के लिए मनुष्य जिन विभिन्न पदों का सहारा लेता है– उन पदों के आधार पर उसे डाक्टर, इंजीनियर आदि कहा जाता है। ये सब केवल मनुष्य को प्राप्त हुए पद हैं। परन्तु मनुष्य मैं डाक्टर हूँ, मैं इंजीनियर हूँ– ऐसा समझकर इन पदों से भी ऐसा आसक्त हो जाता है कि पद को कही गई जरा सी बात उसे आहत कर देती है।

अपने को शरीर समझ लेने के कारण मनुष्य कभी अपनी सम्पत्ति (मैं धनवान हूँ) से, कभी जाति (मैं हिन्दू हूँ) से, कभी राष्ट्रीयता (मैं भारतीय हूँ) से, कभी अपने विषय में निर्मित की हुई किसी छवि (मैं कर्तव्यपरायण हूँ अथवा मैं समय का पाबन्द हूँ) से और कभी कभी तो अपने किसी मन्तव्य (idea) से भी इतना बंध जाता है कि इन्हीं को यही मैं हूँ– ऐसा समझ लेता है और किसी के द्वारा कुछ भी क़टु कहे जाने पर स्वयं को चोट लगा हुआ अनुभव करता है। वर्तमान भाषा में इसे ही इगो हर्ट कहा जाता है।

तात्पर्य यह है कि अभिमानी मन (मनुष्य) जो भी मेरा है– उसे मैं समझकर उससे इतना जुड़ाव बना लेता है कि मेरा को कही हुई कोई भी बात अथवा मेरा को लगी हुई जरा सी चोट मनुष्य को अपने को कही हुई अथवा अपने को लगी हुई अनुभव होने लगती है।

यह अभिमान स्वयं में एक प्रबल नकारात्मक ऊर्जा है और शनैः-शनैः नकारात्मकता को ही जन्म देती है। इसलिए पवित्र-सोच (सीता) की प्राप्ति में यह अभिमान बहुत बड़ी बाधा है। यदि मनुष्य यह चाहता है कि उसे पवित्र-सोच (सीता) की प्राप्ति हो अर्थात् उसके मन-बुद्धि सदैव पवित्र बने रहें- तब इस अभिमान रूप बाधा को हटाना अनिवार्य है, जिसे कथा में शिव-धनुष को उठाने के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा में वर्णित सभी संकेत शिव-धनुष के उपर्युक्त वर्णित अर्थ को प्रकट करने में नितान्त सहायक हैं।

पहला संकेत–

पहले संकेत के रूप में कथा में कहा गया है कि शिव-धनुष लोहे से बनी हुई, आठ पहियों वाली मंजूषा में विद्यमान है और उस मंजूषा को ५ हजार वीर किसी तरह ठेलकर लाते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रस्तुत संकेत की प्रतीकात्मकता–

१. लौह-मंजूषा–

पौराणिक साहित्य में लौह, रजत और स्वर्ण धातुओं का प्रयोग प्रतीक रूप में प्रचुरता से किया गया है। चूँकि लौह और रजत धातुएँ समय और सम्पर्क के प्रभाव से विकारयुक्त (कलुषित) हो जाती हैं, इसलिए इन दोनों का प्रयोग अधिकांशत: अशुद्धता को संकेतित करने के लिए किया गया है। इसके विपरीत, स्वर्ण धातु समय और सम्पर्क के प्रभाव से परिवर्तित और दूषित नहीं होती, इसलिए इसका प्रयोग शुद्धता को संकेतित करने के लिए किया गया है। मंजूषा शब्द व्यक्तित्व का वाचक है। अत: लौह-मंजूषा कहकर यहाँ अशुद्ध व्यक्तित्व की ओर इंगित किया गया है। इसी अशुद्ध व्यक्तित्व के भीतर अभिमानी मन रूप शिव-धनुष विद्यमान है।

२. लौह-मंजूषा के आठ पहिये–

अष्टधा प्रकृति अर्थात् पाँच महाभूत (पृथ्वी. जल, तेज, वायु तथा आकाश) और मन, बुद्धि, अहंकार को ही लौह-मंजूषा रूपी अशुद्ध व्यक्तित्व के आठ पहिये कहा जा सकता है। जैसे पहिये मंजूषा का आधाररूप हैं, उसी प्रकार अष्टधा प्रकृति भी मनुष्य-व्यक्तित्व का आधार रूप ही है।

३. पाँच हजार वीरों द्वारा मंजूषा को ठेलकर लाना–

पाँच प्राणों (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान) तथा उनके सहस्रों व्यापारों को ही पाँच हजार वीर कहा जा सकता है क्योंकि प्राण ही व्यक्तित्व को ठेलते अर्थात् क्रियाशील रखने में समर्थ हैं।

मंजूषा को ठेलकर लाना उसके भारीपन को संकेतित करता है। भारीपन सदैव अशुद्धता को और हल्कापन शुद्धता को इंगित करता है। मन जब नकारात्मक विचारों से घिरा रहता है, तब मनुष्य भारीपन का अनुभव करता है परन्तु शुद्ध सात्विक मन से युक्त हुआ मनुष्य सदैव हल्का बना रहता है। अत: मंजूषा का भारीपन भी व्यक्तित्व की अशुद्धता की ओर संकेत करता है।

चूँकि लौह-मंजूषा में शिव-धनुष विद्यमान है, अत: प्रस्तुत संकेतों के द्वारा मनुष्य-व्यक्तित्व में अभिमानी मन की विद्यमानता को ही संकेतित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दूसरा संकेत–

दूसरे संकेत के रूप में कथा में कहा गया है कि पूर्वकाल में दक्ष-यज्ञ के समय देवों ने शिव को उनका भाग नहीं दिया। अतः क्रुद्ध शिव ने पहले तो दक्ष-यज्ञ का विध्वंस किया और फिर वे धनुष उठाकर देवों के महत्त्वपूर्ण अंगों को काटने के लिए उद्यत हुए। देवों के प्रार्थना करने पर शिव ने उनके अंगों (मस्तकों) को तो नहीं काटा परन्तु वह धनुष देवों को ही अर्पण कर दिया। बाद में देवों ने उस धनुष को जनक के पूर्वज निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात के पास धरोहर के रूप में रख दिया।

प्रस्तुत संकेत की प्रतीकात्मकता-

१. दक्ष-यज्ञ–

दक्ष-यज्ञ दक्षता (कुशलता) प्राप्ति का यज्ञ है अर्थात् जब मनुष्य अपने जीवन में कुशलता प्राप्त करना चाहता है और उसके लिए यथायोग्य श्रेष्ठ कर्म भी सम्पन्न करता है, तब उसका वह समस्त कर्म दक्षता-प्राप्ति के लिए किया गया यज्ञ बन जाता है।

२. देव–

मनुष्य शरीर में क्रियाशील विभिन्न शक्तियों को ही यहाँ देव कहा गया है। कुशलता प्राप्त करने के लिए मनुष्य अपनी सभी शक्तियों का यथायोग्य उपयोग करता है।

३. शिव–

शिव शब्द यहाँ आत्मा का (स्वयं का) वाचक है। शिव को भाग न देना आत्मा के निरादर अर्थात् स्वयं की विस्मृति को सूचित करता है। मनुष्य कुशलता प्राप्ति के लिए बाह्य रूप से तो बहुत कुछ करता है परन्तु अज्ञानवश अपने ही स्वरूप (आत्मा) को भूल जाता है।

४. शिव द्वारा दक्ष-यज्ञ का विध्वंस–

यहाँ यह संकेत किया गया है कि आत्मा अर्थात् आत्म-स्वरूप को भूलकर दक्षता का यज्ञ कभी भी सम्पन्न नहीं हो सकता क्योंकि शरीर का स्वामी बनकर, अपने विचारों का निर्माता और नियन्ता होकर तथा आत्मगुणों– शुद्धता, शक्ति,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शान्ति, सुख, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द में स्थित होकर कर्म करने पर ही कर्मों (मानसिक, वाचिक, कायिक) में श्रेष्ठता सम्भव है।

५. शिव द्वारा धनुष का धारण–

मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) में अभिमान का संस्कार (मैं देह ही हूँ– यह संकल्प रूप अभिमान) प्रसुप्त अवस्था में सदैव विद्यमान रहता है। आत्म-विस्मृति की स्थिति में वही अभिमान का संस्कार अवचेतन मन (चित्त) से निकलकर चेतन मन के स्तर पर प्रकट हो जाता है, जिसे कथा में शिव द्वारा धनुष को धारण करना कहा गया है।

६. देवों को धनुष का अर्पण–

यहाँ यह संकेत किया गया है कि आत्म-विस्मृति की स्थिति में शरीर में क्रियाशील सभी शक्तियाँ (मन, बुद्धि, इन्द्रिय तथा प्राण आदि) यद्यपि पूर्ववत् क्रियाशील तो रहती हैं परन्तु सभी शक्तियाँ अभिमान से ओतप्रोत अवश्य हो जाती हैं।

७. निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात–

निमि का अर्थ है– पलक झपकना और देवरात (देव-रात (देना अर्थ वाली दा धातु से निष्पन्न) का अर्थ है– देव अर्थात् शक्ति का अनुदान। अतः निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात का अर्थ हुआ– पलक झपकने के रूप में शक्ति का सबसे पहला अनुदान। तात्पर्य यह है कि पैदा होते ही सबसे पहले शिशु का पलक झपकना इस बात का संकेत होता है कि शरीर को शक्ति का अनुदान प्राप्त हुआ।

८. देवों का देवरात के पास धनुष को धरोहर के रूप में रखना–

यह कथन संकेत करता है कि जैसे ही मनुष्य पैदा होता है, वैसे ही अर्थात् पलक झपकने के साथ ही उसे शक्तियों का जो अनुदान प्राप्त होता है– उन शक्तियों के कारण शरीर को क्रियाशील देखकर मनुष्य शरीर को ही सब कुछ समझ बैठता है परन्तु शरीर को क्रियाशील बनाने वाली चैतन्य-शक्ति (आत्मा) के अदृश्य रहने के कारण उस चैतन्य-शक्ति (आत्मा) की ओर ध्यान ही नहीं जा पाता। अतः मैं शरीर हूँ– यह अभिमान रूपी शिव-धनुष प्रत्येक मनुष्य को मानो धरोहर के रूप में जन्म से ही प्राप्त हो जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तात्पर्य यह है कि अदृश्य रूप आत्मा की विस्मृति और दृश्यमान शरीर की क्रियाशीलता ही अभिमान के प्रकट होने का मूल हेतु है।

तीसरा संकेत–

तीसरे संकेत के रूप में कथा में कहा गया है कि जनक ने सीता की प्राप्ति के लिए शिव-धनुष को उठाने और उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने की अनिवार्यता को घोषित किया था।

सीता का अर्थ है– पवित्र-सोच अथवा मन-बुद्धि की पवित्रता। अतः प्रस्तुत कथन यह संकेत करता है कि पवित्र-सोच को प्राप्त करना सरल नहीं है। व्यक्तित्व में विद्यमान अभिमान ही सबसे बड़ी बाधा है। अभिमान का अर्थ है– वास्तविक मैं अर्थात् आत्म-स्वरूपता को भूलकर मेरा अर्थात् शरीर, भूमिका, पद, सम्पत्ति आदि को ही मैं समझ लेना और फिर उस मेरा के साथ इतना जुड़ाव बना लेना कि मेरा को जरा सी खरौंच लगते ही मनुष्य का स्वयं को ही चोट लगा हुआ महसूस करना। यह अभिमान मनुष्य की सोच को अनेक प्रकार से अपवित्र बना देता है, इसलिए कथा में कहा गया है कि पवित्र-सोच (सीता) की प्राप्ति के लिए इस अभिमान से मुक्त होना (शिव-धनुष को उठाना) अनिवार्य है।

जैसे अभिमान से मुक्त होने को ही कथा में धनुष को उठाने के रूप में इंगित किया गया है, उसी प्रकार जो भी मेरा (भूमिका, पद, छवि तथा सम्पत्ति आदि) है– उस मेरा के यथायोग्य उपयोग को ही कथा में धनुष के ऊपर प्रत्यंचा चढ़ाने के रूप में संकेतित किया गया है।

चौथा संकेत–

चौथे संकेत के रूप में कथा में कहा गया है कि अनेक राजाओं ने लौह-मंजूषा में विद्यमान शिव-धनुष को उठाने का प्रयत्न किया परन्तु कोई भी राजा धनुष उठाने में समर्थ नहीं हो सका।

मनुष्य व्यक्तित्व में विद्यमान अनेकानेक गुणों को ही यहाँ राजा कहकर सम्बोधित किया गया है। यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि व्यक्तित्व में विद्यमान सहयोग, सेवा, संकल्प, समर्पण, स्वीकार, दया, करुणा, परोपकार जैसे श्रेष्ठ गुणों में से कोई भी गुण निश्चित रूप से व्यक्तित्व को शोभाशाली तो बना सकता है परन्तु व्यक्तित्व में विद्यमान अभिमान को व्यक्तित्व से बाहर नहीं निकाल सकता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाँचवा संकेत–

पाँचवें संकेत के रूप में कथा में कहा गया है कि राम ने लौह-मंजूषा में विद्यमान शिव-धनुष को सहज रूप में उठा लिया, प्रत्यंचा भी चढ़ा दी परन्तु खींचते ही वह धनुष टूट गया।

राम का अर्थ है– आत्म-ज्ञान (स्वयं का ज्ञान) अर्थात् मैं अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ– इस ज्ञान में मनुष्य की स्थिति।

प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि स्वस्वरूप की सही पहचान (आत्म-ज्ञान) में स्थित मनुष्य ही अपने अभिमान को देखने, समझने और विनष्ट करने में समर्थ होता है। उसके लिए अभिमान को हटाना प्रयत्न-साध्य न होकर सहज और स्वाभाविक होता है क्योंकि वह भूमिका तथा पद आदि को मैं न समझकर मेरा समझता है और फिर तदनुसार ही यथायोग्य व्यवहार करता है। आत्म-ज्ञान (स्वयं की सही पहचान) में स्थित होकर किये गए उस उपयुक्त व्यवहार से अभिमान तो फिर अपने आप ही विदा हो जाता है।

कथा का अभिप्राय

प्रस्तुत कथा अभिमान से सम्बन्धित है, जिसे शिव-धनुष कहकर संकेतित किया गया है। अभिमान का अर्थ है– मनुष्य का अपने वास्तविक स्वरूप– चिदानन्द-स्वरूप को भूल जाना और उपकरण-स्वरूप शरीर को ही अपना वास्तविक स्वरूप मानकर शरीर से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं, पदों, छवियों तथा सम्पत्ति आदि में आसक्त हो जाना। प्रस्तुत कथा में अभिमान से सम्बन्धित पाँच तथ्यों का वर्णन निम्न रूप में किया गया है।

१. अभिमान की विद्यमानता ही मनुष्य के व्यक्तित्व को अशुद्ध एवं विकारी बनाती है। इस तथ्य का संकेत कथा में यह कहकर किया गया है कि शिव-धनुष जिस मंजूषा में विद्यमान है, वह मंजूषा लोहे की बनी हुई है।

२. मनुष्य में अभिमान की उत्पत्ति का मूल कारण है– अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म- स्वरूप को भूल जाना। इसका संकेत कथा में दक्ष-यज्ञ नामक एक अवान्तर कथा के अन्तर्गत शिव (आत्मा) के निरादर के रूप में किया गया है। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप की विस्मृति से जो अभिमान उत्पन्न होता है, वह धीरे-धीरे प्रकट होता हुआ एक दिन इतना सुदृढ़ हो जाता है कि मनुष्य पैदा होने के साथ ही मानो धरोहर के रूप में इस अभिमान को प्राप्त कर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेता है अर्थात् मनुष्य इसी स्मृति के साथ पैदा होता है कि वह एक शरीर है। कथा में निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात के पास धरोहर के रूप में रखे गए शिव-धनुष के माध्यम से इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

३. अभिमान को विनष्ट करना अनिवार्य है क्योंकि यही पवित्र-सोच की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा है। सीता की प्राप्ति के लिए धनुष को उठाने की अनिवार्यता कहकर इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

४. अभिमान को विनष्ट करने में मनुष्य द्वारा धारण किया गया कोई भी गुण समर्थ नहीं है चाहे गुण कितना भी श्रेष्ठ अथवा बली हो अर्थात् सेवा, समर्पण, सहयोग, स्वीकार जैसे श्रेष्ठ गुण भी अभिमान को व्यक्तित्व से बाहर निकालने में समर्थ नहीं हैं। शिव-धनुष को उठाने में राजाओं की असमर्थता कहकर इसी तथ्य को इंगित किया गया है।

५. केवल आत्म-ज्ञान ही अभिमान के विनाश में समर्थ है जिसे कथा में राम द्वारा धनुष को उठाने के रूप में चित्रित किया गया है। आत्म-ज्ञान का अर्थ है– स्वयं की सही पहचान अर्थात् मनुष्य का अपने सही स्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाना। मनुष्य का इस ज्ञान में स्थित हो जाना कि मैं चिदानन्द-स्वरूप आत्मा हूँ। मैं (आत्मा) ही मन होकर अपने समस्त संकल्पों की रचना करता हूँ। मैं (आत्मा) ही अपने इस शरीर रूपी रथ का रथी होकर जिस दिशा में चाहूँ– उस दिशा में अपने रथ को गतिमान कर सकता हूँ। कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थिति से यह अभिमान सहज रूप में विनष्ट होता है। इसके लिए किसी विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती, ठीक उसी प्रकार जैसे दीये के जलने पर अन्धकार स्वत: विदा हो जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Ego is destroyed by Self-Knowledge as depicted through the story of Breaking Śiva's Bow (Dhanuṣa) by Rāma

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Bālakāṇḍa, chapters 66-67), it is said that once Rāma and Lakṣmaṇa went to Mithilāpurī with Ṛṣi Viśvāmitra to see a yajña of king Janaka. There they wished to see the Bow of Śiva. Accordingly, five thousand warriors of king Janaka brought that iron box in which the Bow was kept. Seeking permission to see the Bow, Rāma opened the iron box and picked up that Bow. But as soon as Rāma pulled its string, the bow broke down in two equal pieces. Seeing this Janaka became very happy because he had declared earlier that his daughter Sītā would be married to that person who will pick up the bow and will pull its string.

As regards Śiva's Bow, it is also said in the story that in the yajña of king Dakṣa, Devas did not give due respect and share of yajña to Śiva. Śiva got angry over this and picked up his Bow. He first destroyed the yajña and arose to behead Devas. But Devas appeased and prayed Śiva for their welfare, so Śiva pardoned them and further gave them the Bow itself. After some time Devas passed on this Bow to king Devarāta – the oldest son of king Nimi.

This story relates to Ego symbolized as the Bow of Śiva. Ego means– Attachment to a wrong Image about One's Self. The story describes five aspects of Ego as under–

1. Every personality possessed with Ego is Impure symbolized as the Iron Box in which the Bow was kept.

2. Ego manifests itself when a person forgets his own Real Self. This is symbolized as picking up of the Bow by Śiva when He was not given due respect by Dakṣa and Devas in yajña. Once Ego emerges, it slowly and gradually becomes dominant, the person starts thinking himself as body and finally when he assumes a new body (next birth) he is born with this Image that he is a Body.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

3. Ego's destruction is necessary because Ego makes one's thinking Impure. Purity emerges only when Ego is dissolved.

4. A person's various qualities even are not capable enough to crush the Ego symbolized as the incapability of various Kings in lifting up the Bow.

5. Finally, the Knowledge of Self, i.e. Ātmajñāna is the only Entity to dissolve Ego symbolized as lifting and breaking of Bow by Rama. Knowledge of Self easily dissolves Ego, without any special effort.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१०. परशुराम कथा

(व्यक्तित्व में निखार लाने वाली और आत्म-ज्ञान को सुदृढ़ बनाने वाली विशिष्ट चेतना-शक्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परशुराम कथा के माध्यम से व्यक्तित्व में निखार लाने वाली और आत्म-ज्ञान को सुदृढ़ बनाने वाली विशिष्ट चेतना-शक्ति का वर्णन

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत बालकाण्ड में (सर्ग ७४ से ७७ तक) परशुराम प्रसंग के माध्यम से निर्देशित आध्यात्मिक तथ्यों को समझने के लिए सबसे पहले हमें कथा के स्वरूप पर दृष्टि डालना उचित होगा।

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

रामकथा में कहा गया है कि राम ने शिव के धनुष को तोड़कर जब सीता से विवाह किया, तब शिव-धनुष के भंग का समाचार सुनकर महेन्द्र पर्वत पर निवास करने वाले परशुराम मन के समान तीव्र गति से चलते हुए राम के समीप आए और अपने पास धरोहर के रूप में रखे हुए वैष्णव-धनुष को विष्णु के ही अवतार राम को प्रदान करके पुनः अपने निवास स्थान महेन्द्र पर्वत पर चले गए।

परशुराम ने राम के समीप आकर उनसे प्रार्थना की कि आपने शिव के धनुष को तोड़ा, इसलिए आपका बल-पराक्रम तो अचिन्त्य एवं अद्भुत है ही, परन्तु अब आप इस वैष्णव-धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर बाण का संधान करके मेरे द्वारा तपस्या से उपार्जित लोकों को भी नष्ट कर दीजिए।

परशुराम के आदेश के अनुसार राम ने उस वैष्णव-धनुष पर बाण का संधान करके परशुराम द्वारा तप से अर्जित किये हुए पुण्य लोकों को नष्ट कर दिया। परशुराम राम की परिक्रमा करके अपने आश्रम में चले गए और राम ने भी शान्तचित्त होकर उस वैष्णव-धनुष को अपार शक्तिशाली वरुण के हाथों में दे दिया।

कथा में कहा गया है कि परशुराम के आने पर पृथिवी हिल उठी थी, पशु-पक्षी अद्भुत व्यवहार करने लगे थे और राम, राम के पिता दशरथ, राम के भाईयों तथा वसिष्ठ जी को छोड़कर समस्त जनसमुदाय अचेत सा हो गया था।

परशुराम का परिचय देते हुए कथा में कहा गया है कि ये ऋचीक मुनि के पौत्र तथा जमदग्नि के पुत्र थे। विष्णु ने अपना जो धनुष भृगुवंशी ऋचीक मुनि के पास धरोहर के रूप में रखा था, वही धनुष ऋचीक-पुत्र जमदग्नि के अधिकार में आया था तथा कार्त्तवीर्य अर्जुन द्वारा जमदग्नि का वध हो जाने पर फिर वही वैष्णव-धनुष परशुराम के अधिकार में आ गया था।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कार्त्तवीर्य अर्जुन द्वारा जमदग्नि का वध होने पर पिता के वध से क्रुद्ध हुए परशुराम काफी समय तक तो क्षत्रियों का संहार करके पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित करते रहे परन्तु अन्त में एक दिन वे भी अपने यज्ञ का समापन करके और सारी पृथ्वी कश्यप को दान करके वन में महेन्द्र पर्वत पर रहने के लिए चले गए थे।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है। अत: मुख्य-मुख्य प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी होगा।

१. ऋचीक मुनि–

ऋचीक शब्द चमकना अर्थ वाली 'ऋच्' धातु से बना है और मुनि शब्द मन को इंगित करता है। अत: जो मन आत्म-ज्ञान को चमकाए अथवा प्रकाशित करे, वही ऋचीक मुनि है। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि जिस मन के माध्यम से आत्मा चमके अथवा प्रकाशित हो, वही शुद्ध-बुद्ध मन ऋचीक मुनि है।

आत्म-ज्ञान को प्रकाशित करने वाले इस ऋचीक मन में आत्माभिमान का संकल्प (अर्थात् मैं चैतन्य शक्ति आत्मा हूँ– यह संकल्प) स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता ही है, जिसे कथा की प्रतीक शैली में यह कहकर इंगित किया गया है कि विष्णु-प्रदत्त वैष्णव-धनुष ऋचीक मुनि के पास विद्यमान था।

कथा में ऋचीक मुनि को भृगुवंशी कहा गया है। भृगु का अर्थ है– कर्मफलों को भूनने वाली चेतना। कर्मफलों को भूनने की सामर्थ्य केवल आत्म-ज्ञान में विद्यमान है। अत: आत्म-ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शुद्ध-बुद्ध मन को अर्थात् ऋचीक मुनि को भृगुवंशी कहना सर्वथा सार्थक ही है।

२. जमदग्नि मुनि–

जमदग्नि शब्द जमत् (यमत्) और अग्नि नामक दो शब्दों के मेल से बना है। यमत् का अर्थ है– नियन्त्रित और अग्नि का अर्थ है– चेतना। अत: जमदग्नि का अर्थ हुआ– मनसा-वाचा-कर्मणा नियन्त्रित चेतना।

जमदग्नि को ऋचीक मुनि का पुत्र कहकर यह इंगित किया गया है कि आत्म-ज्ञान को प्रकाशित करने वाले शुद्ध-बुद्ध मन से ही नियन्त्रित चेतना का जन्म होता है अर्थात् मनुष्य को जब यह समझ में आ जाता है कि मैं चैतन्य-शक्ति आत्मा ही मन रूप होकर अपने सब संकल्पों की रचना करता हूँ, तब संकल्पों का नियन्ता होने पर वह अपने वाचिक-कायिक कर्मों का भी नियन्ता बन जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कथा में कार्त्तवीर्य अर्जुन द्वारा जमदग्नि का वध कहकर यह इंगित किया गया है कि कालचक्र के सतत प्रवाह में अपनी ही वासनाओं, कामनाओं आदि से घिरकर एक दिन मनुष्य अपनी ही इस नियन्त्रित चेतना को नष्ट कर देता है।

३. परशुराम–

यज्ञ में यूप (स्तम्भ) का निर्माण करने के लिए वृक्ष की शाखाओं को परशु से काटकर एक सुन्दर यूप का निर्माण किया जाता है। इस यूप को जमीन में गाड़कर उससे यज्ञ-पशु को बांधा जाता है। यह एक स्थूल कर्मकाण्डीय प्रक्रिया है।

आध्यात्मिक स्तर पर यूप का अर्थ है– मन। आत्मा-परमात्मा से योग के इच्छुक इस मन को भी सुन्दर स्वरूप प्रदान करने के लिए व्यक्तित्व रूपी वृक्ष में पनपी हुई व्यर्थ धारणाओं, मान्यताओं तथा नकारात्मक शक्तियों की भी काटछांट करना आवश्यक है। मनुष्य अपनी जिस विशिष्ट चेतना-शक्ति (परशु) की सहायता से व्यक्तित्व में पनपी हुई व्यर्थ धारणाओं, मान्यताओं तथा नकारात्मक शक्तियों की काटछांट करके मन रूपी यूप को सुन्दर स्वरूप प्रदान करता है, वह परशुराम कहलाती है।

अपने सही स्वरूप– आत्म-स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर यही विशिष्ट चेतना-शक्ति (परशुराम) अवचेतन मन के स्तर पर संस्कार के रूप में विद्यमान हुए आत्म-ज्ञान के संकल्प (विष्णु धनुष) को वहाँ से निकालकर चेतन मन के स्तर पर लाती है और आत्म-ज्ञान को सुदृढ़ता प्रदान करती है।

४. दो धनुष– शिव-धनुष तथा विष्णु-धनुष–

शिव-धनुष और विष्णु-धनुष क्रमशः देहाभिमान और आत्म-ज्ञान (आत्माभिमान) के संकल्पों को इंगित करते हैं। मनुष्य के मन की मुख्य रूप से दो ही स्थितियां हैं। देहाभिमान अर्थात् 'मैं देह हूँ'– इस संकल्प में स्थित होने पर मनुष्य देह को ही अपना सत्य स्वरूप मानकर देहाधीन होने से पराधीन बना रहता है। इसके विपरीत, आत्म-ज्ञान अर्थात् 'मैं आत्मा हूँ'– इस संकल्प में स्थित होने पर मनुष्य अपनी देह (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) का सम्यक् उपयोग एक यन्त्र की भाँति करता है और स्वाधीन बना रहता है।

५. परशुराम द्वारा तप से प्राप्त लोक–

लोक शब्द यहाँ दृष्टि को इंगित करता प्रतीत होता है। मनुष्य जब अपनी विशिष्ट चेतना-शक्ति अर्थात् परशुराम शक्ति की सहायता से अपनी ही व्यर्थ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धारणाओं, मान्यताओं तथा नकारात्मक शक्तियों को ध्वस्त कर देता है, तब उसमें प्रेम दृष्टि, परमार्थ दृष्टि, पुण्य दृष्टि, दया दृष्टि, शुभ दृष्टि, क्षमा दृष्टि और समत्व दृष्टि प्रभृति अनेक दृष्टियां विकसित हो जाती हैं, जिन्हें कथा में परशुराम द्वारा तप से प्राप्त हुए लोक कहा गया है।

परन्तु आत्म-दृष्टि के विकसित होने पर उपर्युक्त वर्णित सभी दृष्टियों का आत्म-दृष्टि में विलय हो जाता है, जिसे कथा में राम द्वारा वैष्णव अस्त्र से परशुराम के लोकों को विनष्ट करना कहकर इंगित किया गया है।

६. कथा में कहा गया है कि परशुराम के आने पर पृथ्वी हिल उठी थी, पशु-पक्षी अद्भुत व्यवहार करने लगे थे और जन समुदाय अचेत सा हो गया था

प्रस्तुत कथन यह महत्त्वपूर्ण संकेत करता प्रतीत होता है कि अवचेतन मन (चित्त) के स्तर पर संस्कार रूप में विद्यमान हुआ आत्म-ज्ञान का संकल्प जब परशुराम शक्ति के माध्यम से चेतन मन के स्तर पर प्रकट होता है, तब उस प्राकट्य से पूर्व अनेक प्रकार के नकारात्मक-सकारात्मक विचार चेतन मन को अनेक प्रकार से आन्दोलित करते हैं।

७. कार्त्तवीर्य अर्जुन–

कार्त्तवीर्य अर्जुन निम्न स्तर का सुख देने वाली वासनाओं, कामनाओं, अपेक्षाओं, आशाओं को इंगित करता है।

८. कश्यप–

कश्यप (कश्य प अर्थात् कश्य का पान करने वाला) शब्द जीवात्मा का वाचक है।

९. वरुण–

वरुण शब्द यहाँ प्रकृति का वाचक है। इसलिए उसे जल (जड़ता) का अधिपति भी कहा गया है।

कथा का अभिप्राय

कथा इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को इंगित करती है कि जब तक मनुष्य का मन आत्म-ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित रहता है और मनुष्य अपने सभी विचारों, भावों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तथा कर्मों का नियन्ता बना रहता है, तब तक व्यक्तित्व में किसी भी प्रकार की काटछांट की आवश्यकता नहीं रहती। अतः व्यक्तित्व की काटछांट करके उसमें निखार लाने वाली चेतना-शक्ति भी जिसे 'परशुराम' कहा गया है– शान्त अवस्था में विद्यमान रहती है।

परन्तु आत्म-ज्ञान की विस्मृति से नियन्त्रित चेतना अर्थात् जमदग्नि के भी विनष्ट हो जाने पर व्यक्तित्व रूपी वृक्ष में जब शनैः-शनैः वासनाओं, कामनाओं, आशाओं, आकांक्षाओं तथा अहंकार आदि के रूप में व्यर्थ एवं अनुपयोगी शाखाएँ निकलने लगती हैं, तब उन व्यर्थ-अनुपयोगी शाखाओं की काटछांट करके व्यक्तित्व रूपी वृक्ष को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने के लिए शान्त अवस्था में विद्यमान यह परशुराम शक्ति जाग्रत हो जाती है और आत्म-ज्ञान अर्थात् 'मैं आत्मा हूँ' के संकल्प को साथ लेकर व्यक्तित्व को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने का यथासम्भव प्रयास करती है, जिसे कथा में कार्त्तवीर्य अर्जुन द्वारा जमदग्नि का वध होने पर परशुराम द्वारा पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित करना कहकर इंगित किया गया है।

परन्तु कालचक्र के अनवरत प्रवाह में देह-चेतना के अत्यन्त प्रबल हो जाने पर व्यक्तित्व रूपी वृक्ष की काटछांट करके उसमें निखार लाने वाली यह परशुराम शक्ति भी अपने काटछांट रूपी यज्ञ से विरत हो जाती है और मन की गहराई अर्थात् अवचेतन मन में उतरकर वहाँ विश्राम करती है, जिसे कथा में कश्यप को पृथ्वी की दान करके परशुराम का महेन्द्र पर्वत पर निवास करना कहा गया है।

अवचेतन मन में स्थित यह परशुराम शक्ति वहाँ तब तक विश्राम करती है जब तक मनुष्य के चेतन मन के स्तर पर पुनः आत्म-ज्ञान (राम) का प्रादुर्भाव नहीं हो जाता। आत्म-ज्ञान के प्रादुर्भाव का अर्थ है– अपने सही स्वरूप– आत्मस्वरूप (अर्थात् मैं अजर, अमर, अविनाशी चैतन्य शक्ति आत्मा हूँ) का ज्ञान हो जाना। आत्म-ज्ञान (राम) के प्रादुर्भाव से शनैः-शनैः एक न एक दिन चेतन मन के स्तर पर विद्यमान देहाभिमान का संकल्प अर्थात् मैं देह हूँ– यह संकल्प (शिव-धनुष) सहज रूप से टूट जाता है और मन-बुद्धि अत्यन्त पवित्रता, शुचिता को धारण कर लेते हैं, जिसे कथा में शिव-धनुष के भंग होने पर राम का सीता से विवाह होना कहा गया है।

व्यक्तित्व की ऐसी शोभा सम्पन्न स्थिति में अब स्वाभाविक रूप से किसी भी प्रकार की काटछांट की तो आवश्यकता नहीं होती, परन्तु यह नितान्त आवश्यक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

धारणाओं, मान्यताओं तथा नकारात्मक शक्तियों को ध्वस्त कर देता है, तब उसमें प्रेम दृष्टि, परमार्थ दृष्टि, पुण्य दृष्टि, दया दृष्टि, शुभ दृष्टि, क्षमा दृष्टि और समत्व दृष्टि प्रभृति अनेक दृष्टियां विकसित हो जाती हैं, जिन्हें कथा में परशुराम द्वारा तप से प्राप्त हुए लोक कहा गया है।

परन्तु आत्म-दृष्टि के विकसित होने पर उपर्युक्त वर्णित सभी दृष्टियों का आत्म-दृष्टि में विलय हो जाता है, जिसे कथा में राम द्वारा वैष्णव अस्त्र से परशुराम के लोकों को विनष्ट करना कहकर इंगित किया गया है।

६. कथा में कहा गया है कि परशुराम के आने पर पृथ्वी हिल उठी थी, पशु-पक्षी अद्भुत व्यवहार करने लगे थे और जन समुदाय अचेत सा हो गया था

प्रस्तुत कथन यह महत्त्वपूर्ण संकेत करता प्रतीत होता है कि अवचेतन मन (चित्त) के स्तर पर संस्कार रूप में विद्यमान हुआ आत्म-ज्ञान का संकल्प जब परशुराम शक्ति के माध्यम से चेतन मन के स्तर पर प्रकट होता है, तब उस प्राकट्य से पूर्व अनेक प्रकार के नकारात्मक-सकारात्मक विचार चेतन मन को अनेक प्रकार से आन्दोलित करते हैं।

७. कार्त्तवीर्य अर्जुन–

कार्त्तवीर्य अर्जुन निम्न स्तर का सुख देने वाली वासनाओं, कामनाओं, अपेक्षाओं, आशाओं को इंगित करता है।

८. कश्यप–

कश्यप (कश्य प अर्थात् कश्य का पान करने वाला) शब्द जीवात्मा का वाचक है।

९. वरुण–

वरुण शब्द यहाँ प्रकृति का वाचक है। इसलिए उसे जल (जड़ता) का अधिपति भी कहा गया है।

कथा का अभिप्राय

कथा इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को इंगित करती है कि जब तक मनुष्य का मन आत्म-ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित रहता है और मनुष्य अपने सभी विचारों, भावों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तथा कर्मों का नियन्ता बना रहता है, तब तक व्यक्तित्व में किसी भी प्रकार की काटछांट की आवश्यकता नहीं रहती। अतः व्यक्तित्व की काटछांट करके उसमें निखार लाने वाली चेतना-शक्ति भी जिसे 'परशुराम' कहा गया है– शान्त अवस्था में विद्यमान रहती है।

परन्तु आत्म-ज्ञान की विस्मृति से नियन्त्रित चेतना अर्थात् जमदग्नि के भी विनष्ट हो जाने पर व्यक्तित्व रूपी वृक्ष में जब शनैः-शनैः वासनाओं, कामनाओं, आशाओं, आकांक्षाओं तथा अहंकार आदि के रूप में व्यर्थ एवं अनुपयोगी शाखाएँ निकलने लगती हैं, तब उन व्यर्थ-अनुपयोगी शाखाओं की काटछांट करके व्यक्तित्व रूपी वृक्ष को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने के लिए शान्त अवस्था में विद्यमान यह परशुराम शक्ति जाग्रत हो जाती है और आत्म-ज्ञान अर्थात् 'मैं आत्मा हूँ' के संकल्प को साथ लेकर व्यक्तित्व को सुन्दर स्वरूप प्रदान करने का यथासम्भव प्रयास करती है, जिसे कथा में कार्त्तवीर्य अर्जुन द्वारा जमदग्नि का वध होने पर परशुराम द्वारा पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित करना कहकर इंगित किया गया है।

परन्तु कालचक्र के अनवरत प्रवाह में देह-चेतना के अत्यन्त प्रबल हो जाने पर व्यक्तित्व रूपी वृक्ष की काटछांट करके उसमें निखार लाने वाली यह परशुराम शक्ति भी अपने काटछांट रूपी यज्ञ से विरत हो जाती है और मन की गहराई अर्थात् अवचेतन मन में उतरकर वहाँ विश्राम करती है, जिसे कथा में कश्यप को पृथ्वी की दान करके परशुराम का महेन्द्र पर्वत पर निवास करना कहा गया है।

अवचेतन मन में स्थित यह परशुराम शक्ति वहाँ तब तक विश्राम करती है जब तक मनुष्य के चेतन मन के स्तर पर पुनः आत्म-ज्ञान (राम) का प्रादुर्भाव नहीं हो जाता। आत्म-ज्ञान के प्रादुर्भाव का अर्थ है– अपने सही स्वरूप– आत्मस्वरूप (अर्थात् मैं अजर, अमर, अविनाशी चैतन्य शक्ति आत्मा हूँ) का ज्ञान हो जाना। आत्म-ज्ञान (राम) के प्रादुर्भाव से शनैः-शनैः एक न एक दिन चेतन मन के स्तर पर विद्यमान देहाभिमान का संकल्प अर्थात् मैं देह हूँ– यह संकल्प (शिव-धनुष) सहज रूप से टूट जाता है और मन-बुद्धि अत्यन्त पवित्रता, शुचिता को धारण कर लेते हैं, जिसे कथा में शिव-धनुष के भंग होने पर राम का सीता से विवाह होना कहा गया है।

व्यक्तित्व की ऐसी शोभा सम्पन्न स्थिति में अब स्वाभाविक रूप से किसी भी प्रकार की काटछांट की तो आवश्यकता नहीं होती, परन्तु यह नितान्त आवश्यक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होता है कि चेतन मन के स्तर पर प्रादुर्भूत हुआ आत्म-ज्ञान अवचेतन मन की तली में संस्कार रूप में पड़े हुए आत्म-ज्ञान से जुड़कर सुदृढ़ता प्राप्त कर ले अर्थात् चेतन मन को अवचेतन मन का सहयोग प्राप्त हो जाए।

यह तथ्य सर्वविदित है कि चेतन मन के स्तर पर जिस विचार की आवृत्ति बार-बार होती है, वह विचार बीज स्वरूप धारण करके (जिसे अध्यात्म की भाषा में संस्कार कहा जाता है) अवचेतन मन में उतर जाता है। कालचक्र के अनवरत प्रवाह में मनुष्य का चेतन मन कभी आत्म-चेतना के विचार से और कभी देह-चेतना के विचार से संयुक्त होता है, अतः दोनों ही प्रकार की चेतनाओं से सम्बन्धित आत्म-परक तथा देह-परक विचार बीज रूप में अवचेतन मन में संगृहीत हो जाते हैं। बीज रूप में संग्रहीत ये विचार चेतन मन पर उद्भूत हुए नूतन विचार को सतत प्रभावित भी करते हैं और उसे सुदृढ़ भी बनाते हैं। चेतन और अवचेतन मन के इस पारस्परिक सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि चेतन मन के स्तर पर आत्म-परक विचार की आवृत्ति सतत होती रहे जिससे वह आत्म-परक विचार अवचेतन स्तर पर विद्यमान आत्म-परक संस्कार को ही आकर्षित करे।

कालचक्र के अनवरत प्रवाह में मनुष्य का चेतन मन जब देह-चेतना के विचार से विरत होकर पुनः आत्म-ज्ञान से संयुक्त होता है, तब चेतन-अवचेतन मन के उपर्युक्त वर्णित नियम के आधार पर अवचेतन मन में बीज रूप में विद्यमान आत्म-ज्ञान अर्थात् मैं आत्मा हूँ– यह संकल्प परशुराम शक्ति की सहायता से शीघ्रतापूर्वक ऊपर उठता है और चेतन मन के स्तर पर विद्यमान आत्म-ज्ञान (राम) को सुदृढ़ता प्रदान करता है, जिसे कथा में परशुराम द्वारा राम को वैष्णव धनुष प्रदान करना कहकर इंगित किया गया है।

इस सुदृढ़ आत्म-ज्ञान की स्थिति में विभिन्न दृष्टियां (शुभ-दृष्टि, पुण्य-दृष्टि, दया-दृष्टि आदि) विलीन होकर केवल आत्म-दृष्टि ही शेष रह जाती है, जिसे कथा में राम द्वारा वैष्णव धनुष से परशुराम के तपः-प्राप्त लोकों को नष्ट करना कहकर इंगित किया गया है।

अब अवचेतन मन के स्तर से उद्भूत हुआ संस्कार स्वरूप आत्म-ज्ञान का संकल्प चेतन मन के स्तर पर विद्यमान आत्म-ज्ञान (राम) का संस्पर्श पाकर मनुष्य की सम्पूर्ण प्रकृति (व्यक्तित्व) में आत्मसात् हो जाता है, जिसे कथा में यह कहकर इंगित किया गया है कि राम ने वैष्णव धनुष को शक्तिशाली वरुण को प्रदान कर दिया।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि परशुराम वह विशिष्ट चेतना-शक्ति है, जो एक ओर तो आत्म-विस्मृति के कारण नियन्त्रित अथवा संयमित चेतना के खो जाने की स्थिति में मनुष्य मन में पनप रहे व्यर्थ-अनुपयोगी विचारों की काटछांट करके व्यक्तित्व को शोभा-सम्पन्न बनाए रखने का सतत प्रयास करती है तथा दूसरी ओर आत्म-ज्ञान (राम) के प्रादुर्भूत होने पर अवचेतन मन में विद्यमान आत्म-ज्ञान के संस्कार को भी चेतन मन के स्तर पर लाकर आत्म-ज्ञान (राम) को सुदृढ़ता प्रदान करती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Paraśurāma – a Special Consciousness that cleanses Personality and strengthens Self-Knowledge

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Bālakāṇḍa, chapters 74-77), there is an important episode of Paraśurāma. It is said that when Rāma breaks the bow of Śiva and gets married with Sītā, Paraśurāma hastily comes from mountain Mahendra and gives Rāma a new bow of Viṣṇu. Being a trustee of that bow, Paraśurāma requests Rāma to put an arrow on the bow and destroy all the places acquired by him. Being directed by Paraśurāma, Rāma destroys those places and Paraśurāma returns back. Rāma gives the bow to powerful Varuṇa.

Introducing another characteristic of Paraśurāma, the story indicates that he was the son of Jamadagni and grandson of Ṛcīka. Once upon a time, when Jamadagni was assassinated by Kārttavīrya Arjuna, Paraśurāma got angry and so many times made the earth empty by killing all the Kṣatriyas/warriors. But at last, he stopped, donated the earth to Kaśyapa and went to live on the mountain Mahendra. Being a trustee of the bow of Viṣṇu, he came on earth only to deliver that bow to Rāma, an incarnation of Viṣṇu.

The story is totally symbolic and introduces a higher consciousness named Paraśurāma. This consciousness originates from a controlled consciousness named Jamadagni and gets angry when the controlled consciousness is assassinated by desire – a strong pollution of mind. Paraśurāma consciousness never likes this pollution, therefore it tries it's best to make the mind free from this pollution and it's extensive branches symbolized as the destruction of all warriors on earth.

But one day, due to strong attachments with body, this higher consciousness stops from the above cleansing of mind and goes in the sub-conscious mind silently till the conscious level of mind again fills with Self-Knowledge symbolized as the breaking of Śiva's bow by Rāma.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Now this higher consciousness possessed with the thought of Self-Knowledge symbolized as the Bow of Viṣṇu hastily comes on conscious level and delivering the thought of Self-Knowledge, it strengthens conscious level. Strengthened by conscious and subconscious minds, the Knowledge of Self gets absorbed in the whole personality and all the prior Perceptions immerge in Soul Perception.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अयोध्या काण्ड

११. कैकेयी कथा

(व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को चाहने वाली
शुद्ध मन की इच्छा-शक्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
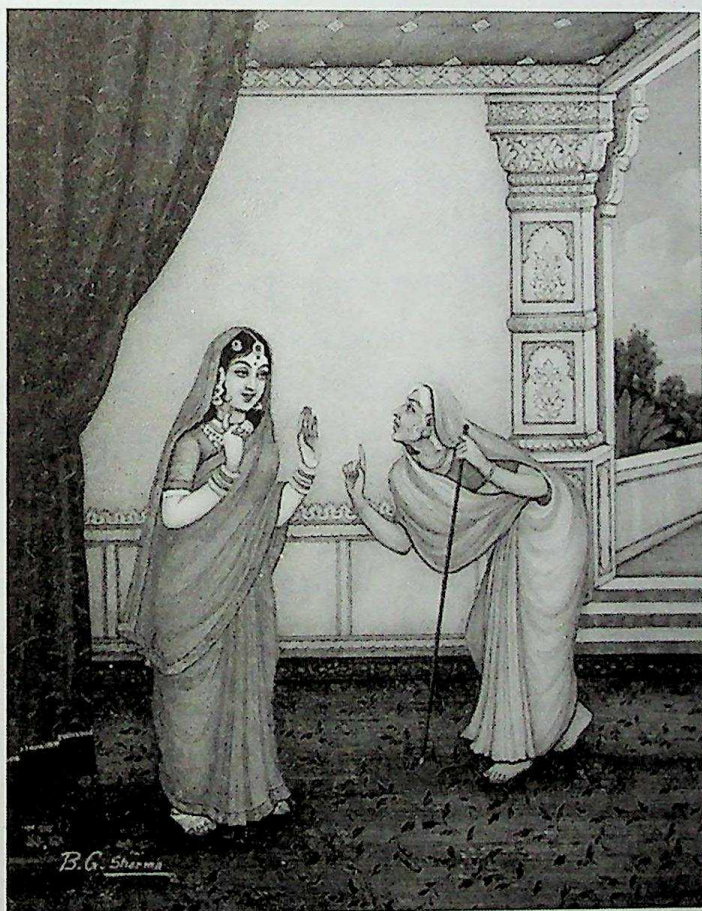
अयोध्याकाण्ड

व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को चाहने वाली शुद्ध मन की इच्छा-शक्ति का कैकेयी के रूप में चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अयोध्या काण्ड (सर्ग ७ से ४२ तक) में कैकेयी से सम्बन्धित कथा का विस्तार से वर्णन हुआ है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

समझने की सरलता के लिए कथा को दो भागों में बाँटना उपयोगी है।

पहले भाग में कहा गया है कि पूर्वकाल में देवासुर संग्राम के अवसर पर राजा दशरथ कैकेयी को साथ लेकर इन्द्र की सहायता के लिए पहुँचे। उस समय दण्डकारण्य के भीतर शम्बर नाम से प्रसिद्ध एक महामायावी असुर रहता था जिसे देवताओं के समूह भी पराजित नहीं कर पाते थे। उस असुर ने जब इन्द्र के साथ युद्ध छेड़ दिया, तब दशरथ ने भी असुरों के साथ बड़ा भारी युद्ध किया। परन्तु असुरों ने अपने तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों द्वारा दशरथ के शरीर को बहुत जर्जर कर दिया। राजा की चेतना लुप्त सी हो गई। तब रथ के सारथि का काम करती हुई कैकेयी ने अपने पति दशरथ को रणभूमि से दूर ले जाकर उनके प्राणों की रक्षा की। इससे संतुष्ट होकर राजा ने कैकेयी से दो वरदान माँगने के लिए कहा परन्तु कैकेयी ने आवश्यकता के समय उन वरदानों को लेना स्वीकार कर लिया।

दूसरे भाग में कहा गया है कि अश्वपति की कन्या कैकेयी के पास मन्थरा नाम की एक दासी थी, जो उसके मायके से ही आई हुई थी। एक दिन कैकेयी की वह दासी मन्थरा दैववश जब महल (प्रासाद) की छत पर चढ़ गई, तब राम के अभिषेक का समाचार सुनकर मन ही मन बहुत कुढ़ गई। अतः महल की छत से तुरन्त नीचे उतरकर वह कैकेयी के पास पहुँची और कैकेयी को राजा दशरथ से राम के वनवास तथा भरत के राज्याभिषेक के रूप में दो वरदान माँगने के लिए उकसाने लगी। प्रारम्भ में तो कैकेयी ने उसकी बात का प्रतीकार किया, परन्तु शीघ्र ही कैकेयी दशरथ से अपने दो वर माँगने के लिए तैयार हो गई। पहले वर के रूप

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

में भरत का राज्याभिषेक और दूसरे वर के रूप में राम का वनवास माँगकर कैकेयी ने दशरथ को बहुत पीड़ा पहुँचाई। दशरथ के यथासम्भव प्रतिरोध करने पर भी कैकेयी टस से मस नहीं हुई और अपने निश्चय पर अड़िग रहकर कैकेयी ने राम को १४ वर्ष के लिए वन की ओर भेज दिया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा के अभिप्राय को समझने के लिए पहले सभी प्रतीकों को समझना उपयोगी होगा।

१. देवासुर संग्राम–

मन के भीतर दैवी (सकारात्मक) और आसुरी (नकारात्मक) विचारों का जो युद्ध सतत चलता रहता है, उसे ही पौराणिक साहित्य में देवासुर संग्राम कहा गया है।

२. शम्बरासुर–

शम्बर (शम्वर शब्द का तद्भव स्वरूप) शब्द शम नामक शब्द के साथ ढंकना अर्थ वाली वृ धातु के योग से बना है। अतः शम्बरासुर (शम-वर-असुर) का अर्थ है– वह आसुरी (नकारात्मक) विचार, जो मन के भीतर विद्यमान शम (शान्ति) को ढंक देता है, प्रकट नहीं होने देता।

३. देवताओं की पराजय–

देवताओं की पराजय का अर्थ है– आसुरी (नकारात्मक) विचारों के सामने दैवी (सकारात्मक) विचारों का हार जाना अर्थात् असत्य, बेईमानी, घृणा, अशान्ति, असहयोग जैसे नकारात्मक विचारों से सत्य, ईमानदारी, प्रेम, शान्ति, सहयोग जैसे सकारात्मक विचारों का पराजित हो जाना।

४. राजा दशरथ–

रामकथा में शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को ही राजा दशरथ के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

५. कैकेयी–

कैकेयी शब्द ध्वनि अर्थ वाली कै धातु से बना हुआ प्रतीत होता है। मन में रहने वाली इच्छा ही मन के भीतर ध्वनि (आवाज) को उत्पन्न करती है फिर चाहे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वह ध्वनि शरीर से सम्बन्धित हो अथवा आत्मा से। अत: ध्वनि को इच्छा का ही एक रूप कहा जा सकता है। इस आधार पर शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) के साथ सदैव विद्यमान रहने वाली इच्छा-शक्ति (कैकेयी) जब यह इच्छा करती है कि व्यक्तित्व का विकास एकांगी (एकपक्षीय) न होकर सर्वांगीण अर्थात् बहुमुखी हो अर्थात् व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक सभी स्तरों पर समान रूप से विकसित हो, तब उस इच्छा-शक्ति को कैकेयी नाम देना सार्थक ही है। चूँकि यह इच्छा-शक्ति शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) के साथ सदैव विद्यमान रहती है, इसीलिए इसे कथा में दशरथ की पत्नी कहकर चित्रित किया गया है।

कथा में कैकेयी को केकयराज से उत्पन्न कहा गया है। केकयराज (केकय-राज) का अर्थ है– केकय अर्थात् ध्वनियों का राजा अर्थात् ध्वनियों में श्रेष्ठ ध्वनि। यूं तो मन में अनेक प्रकार की इच्छा रूपी ध्वनियाँ विद्यमान रहती हैं, परन्तु व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास की इच्छा रूप ध्वनि का जन्म अनेकानेक श्रेष्ठ इच्छा रूप ध्वनियों के फलस्वरूप ही होता है– उससे पहले नहीं। इसी आधार पर कैकेयी को केकयराज से उत्पन्न कहा गया है।

कथा में कैकेयी को अश्वपति की कन्या भी कहा गया है। अश्वपति का अर्थ है– इन्द्रिय रूपी अश्वों का पति (स्वामी) अर्थात् मन। कन्या शब्द पौराणिक साहित्य में विशेषता या गुण का वाचक है। अत: अश्वपति की कन्या कहकर यह संकेत किया गया है कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की इच्छा करना मन की ही एक विशिष्टता है।

६. मन्थरा–

मन्थरा शब्द का अर्थ है– शिथिल, मन्द अथवा विलम्बकारी। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को चाहने वाली इच्छा-शक्ति अर्थात् कैकेयी के साथ व्यक्तित्व-विकास की जो स्मृति सदैव विद्यमान रहती है, उस स्मृति को ही कथा में मन्थरा नाम दिया गया है। चूँकि यह स्मृति शिथिल रूप में विद्यमान रहती है और केवल परिस्थिति विशेष अर्थात् आत्म-ज्ञान के अनुचित विनियोग (राम के राज्याभिषेक) को देखकर ही प्रकट होती है– इसलिए इस शिथिलता अथवा मन्दता के कारण इसे मन्थरा कहना सार्थक ही है। इस शिथिल स्मृति के प्राकट्य से सामने उपस्थित परिस्थिति निश्चित रूप से मुड़ती अर्थात् परिवर्तित होती है, इसलिए इसे कुब्जा कह कर भी संकेतित किया गया है। कुब्जा शब्द का अर्थ ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है– मुड़ी हुई अर्थात् घुमावदार। चूँकि व्यक्तित्व विकास की यह स्मृति अर्थात् मन्थरा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की इच्छा-शक्ति (कैकेयी) के आधीन रहती है, इसलिए इसे कथा में कैकेयी की दासी कहकर भी सम्बोधित किया गया है। इच्छा-शक्ति के साथ सदा संयुक्त रहने के कारण ही इस स्मृति (मन्थरा) को कैकेयी के मायके से आई हुई भी कहा गया है।

मन्थरा द्वारा कैकेयी के प्रासाद की छत पर चढ़ने का अर्थ है– शिथिल रूप में विद्यमान व्यक्तित्व विकास की इस स्मृति का इन दो रूपों में प्रकट हो जाना कि जीवन में सुख, शान्ति, प्रेम, आनन्द की स्थापना आवश्यक है और शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) के माध्यम से जिस आत्म-ज्ञान (राम) का प्रादुर्भाव हुआ है, वही आत्म-ज्ञान (राम) अवचेतन मन या चित्त में पड़े हुए विकारों (संस्कारों) को विनष्ट करने में समर्थ है। रामकथा में सुख, शान्ति, प्रेम, आनन्द की स्थापना को ही भरत के राज्याभिषेक के रूप में तथा आत्म-ज्ञान द्वारा चित्त में पड़े हुए विकारों के विनाश को ही राम के दण्डकारण्य में गमन के रूप में चित्रित किया गया है।

७. वरदान–

पौराणिक साहित्य में अवश्यम्भाविता अर्थात् अवश्य घटित होने को ही वरदान के रूप में चित्रित किया गया है। शुद्ध, शान्त, स्थिर मन वाला मनुष्य एक न एक दिन अपनी वास्तविक पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होकर चित्त में विद्यमान विकारों को विनष्ट करेगा और तब ही जीवन में स्थायी सुख, शान्ति, प्रेम, आनन्द की स्थापना होगी– इस अवश्य घटित होने को ही यहाँ वरदान के रूप में चित्रित किया गया है।

८. राम–

अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप की पहचान (मैं शरीर नहीं हूँ अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ) अर्थात् आत्म-ज्ञान को ही रामकथा में राम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आत्म-स्वरूप को पहचान लेना अर्थात् आत्म-ज्ञान अत्यन्त श्रेष्ठ स्थिति है क्योंकि अब मनुष्य पहली बार अपनी वास्तविक शक्ति से परिचित होकर उसका उचित उपयोग करने में समर्थ हो पाता है। वह यह समझ पाता है कि मैं आत्मा ही तो मन रूप होकर अपने प्रत्येक विचार को रचता हूँ। अत: मैं अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता हूँ। मैं स्वाधीन हूँ, अत: जैसा चाहूँ– वैसा विचार रचकर अपने जीवन को मनचाही दिशा में गतिमान कर सकता हूँ। सुख, शान्ति, प्रेम, आनन्द तो मुझ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

आत्मा का स्वभाव ही है। स्व-स्वरूप की यही पहचान मनुष्य मन को इतना आनन्दित करती है कि मनुष्य का शुद्ध, शान्त, स्थिर मन इसी में अनुरक्त हो जाता है, जिसे कथा में दशरथ की राम में अनुरक्तता के रूप में व्यक्त किया गया है।

९. भरत–

जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेता है अर्थात् राम बन जाता है, तब आत्मा के सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द गुणों से भी स्वाभाविक रूप से ओत-प्रोत हो जाता है और उन्हीं गुणों को जीवन में बाँटता भी है। आत्म-गुणों के वितरण को ही कथा में भरत नाम दिया गया है। भरत (भरं- तनोति इति) शब्द का अर्थ ही है– आत्म-गुणों के भार अर्थात् संग्रह को बाँटना। इस भरत की जीवन में स्थापना को ही भरत का राज्याभिषेक कहकर इंगित किया गया है।

१०. वनगमन–

मन की गहराई अथवा अवचेतन मन या चित्त को ही पौराणिक साहित्य में वन कहा गया है। वन में गमन का अर्थ है– गहरे मन अथवा अवचेतन मन (चित्त) में पड़े हुए संस्कार रूप विकारों को ध्यानपूर्वक देखना और उनके विनाश हेतु प्रयत्नशील होना। अज्ञान अर्थात् देहाभिमान की अवस्था में मनुष्य कभी भी इस गहरे मन अथवा अवचेतन मन (चित्त) की ओर ध्यान नहीं देता, परन्तु स्व-स्वरूप की पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य इस गहरे मन अथवा अवचेतन मन को विशेष रूप से देखता है, समझता है और वहाँ विद्यमान संस्कार रूप विकारों को विनष्ट करने के लिए यथासम्भव प्रयत्नशील होता है।

११. वनवास के १४ वर्ष–

व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि व्यक्तित्व के सभी १४ स्तरों पर पूर्ण शुद्धता स्थापित हो। ये १४ स्तर हैं– पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (आँख, नाक, कान, मुख, त्वचा), मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार। आत्म-ज्ञान में स्थित होकर अवचेतन मन में विद्यमान संस्कार रूप विकारों का विनाश करते हुए व्यक्तित्व के ये सभी १४ स्तर शुद्ध हो जाते हैं, जिसे कथा में राम के वनवास के १४ वर्ष कहकर संकेतित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कथा का अभिप्राय

मनुष्य का शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) तीन शक्तियों से सदा संयुक्त रहता है। पहली है– ज्ञानशक्ति जिसे कौशल्या के रूप में, दूसरी है– क्रियाशक्ति जिसे सुमित्रा के रूप में तथा तीसरी है– इच्छाशक्ति जिसे कैकेयी के रूप में रामकथा में चित्रित किया गया है। शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) की यह तीसरी शक्ति– इच्छाशक्ति (कैकेयी) चाहती है कि व्यक्तित्व का विकास सर्वांगीण हो अर्थात् व्यक्तित्व शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक– सभी स्तरों पर समान रूप से विकसित हो। अपने इस उद्देश्य को यह इच्छा शक्ति (कैकेयी) दो चरणों में पूरा करती है।

पहले चरण में व्यक्तित्व-विकास को चाहने वाली यह इच्छाशक्ति (कैकेयी) शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को (दशरथ को) प्रत्येक आसुरी प्रहार से बचाकर सतत उसकी रक्षा करती है, जिसका संकेत करने के लिए मुख्य रामकथा के भीतर ही देवासुर-संग्राम नाम के एक भिन्न कथानक को जोड़ा गया है। इस कथानक के माध्यम से यह संकेत किया गया है कि अवचेतन मन (चित्त) में पड़े हुए प्रबल विकार ही चेतन मन के तल पर निकल-निकलकर चेतन मन की शुद्धता, शान्ति, स्थिरता को निरन्तर भंग करते हैं। ऐसी स्थिति में यही इच्छाशक्ति (कैकेयी) किसी प्रकार प्रयत्नपूर्वक उस शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) को उन-उन विकारों से बचाती है। उदाहरण के लिए– किसी परिस्थिति विशेष में उदित हुआ रिश्वत लेने अथवा देने का प्रबल विकार शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को इतना वशीभूत कर लेता है कि वह शुद्ध मन उसी दिशा में अग्रसर होने लगता है। तब शुद्ध मन के साथ विद्यमान रहने वाली व्यक्तित्व-विकास की प्रबल इच्छा (कैकेयी) ही उस विकार में फँसने से शुद्ध मन को बचाती है। अथवा कभी-कभी झूठ बोलने या क्रोध करने का प्रबल विकार शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को ऐसा दबा लेता है कि मन अपनी शुद्धता, शान्तता, स्थिरता को बचाने में असमर्थ सा हो जाता है। तब वहीं विद्यमान व्यक्तित्व-विकास की प्रबल आकांक्षा (कैकेयी) ही शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को किसी प्रकार बचा पाती है। इस तथ्य को कथानक में कैकेयी द्वारा दशरथ के रथ की सारथि बनकर दशरथ को शम्बरासुर आदि असुरों के आक्रमण से बचाने के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा संकेत करती है कि व्यक्तित्व-विकास को चाहने वाली इच्छाशक्ति (कैकेयी) शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) की सतत रक्षा करते हुए इस स्मृति

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के आधार पर आश्वस्त रहती है कि इसी शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) के माध्यम से एक न एक दिन आत्म-ज्ञान (राम) का आविर्भाव अवश्य होगा और फिर वही आत्म-ज्ञान अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान देहाभिमान और उससे उत्पन्न हुए समस्त विकारों का विनाश करके जीवन में सुख, शान्ति, प्रेम, आनन्द को स्थापित करेगा। इस अवश्यम्भाविता अर्थात् अवंश्य होने को ही कथा में दशरथ द्वारा कैकेयी को दिए गए दो वरदानों के रूप में चित्रित किया गया है।

दूसरे चरण में व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को चाहने वाली इच्छाशक्ति (कैकेयी) शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) को प्रेरित करती है कि अब वह प्राप्त हुए आत्म-ज्ञान (राम) का विनियोग उचित दिशा में करे अर्थात् व्यक्तित्व-विकास के प्रथम चरण में इच्छाशक्ति शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को समस्त आसुरी प्रभावों से केवल इसलिए बचाती है कि किसी न किसी दिन यही मन आत्म-ज्ञान को अवश्य प्रादुर्भूत करेगा। अब आत्म-ज्ञान (राम) के प्रादुर्भूत हो जाने पर यही इच्छा शक्ति चाहती है कि शुद्ध, शान्त, स्थिर मन इस प्रादुर्भूत हुए आत्म-ज्ञान का विनियोग सबसे पहले उसी क्षेत्र में करे जहाँ इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। वह क्षेत्र है– अवचेतन मन (चित्त) का जहाँ देहाभिमान से उत्पन्न आसुरी शक्तियाँ संस्कार रूप में भरी पड़ी हैं। इसी क्षेत्र को रामकथा में दण्डकारण्य अथवा दण्डकवन कहा गया है।

इस तथ्य से सभी परिचित हैं कि शरीर का अभिमानी होकर अर्थात् शरीर को ही अपना वास्तविक स्वरूप मानकर मनुष्य जो भी मानसिक, वाचिक अथवा कायिक कर्म करता है– उसकी छापें उसके अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठी हो जाती हैं, जिन्हें संस्कार कहते हैं। अनेकानेक जन्मों की लम्बी यात्रा में ढेर सारे संस्कार इकठ्ठे हो जाते हैं, जो सकारात्मक (दैवी) तथा नकारात्मक (आसुरी) दोनों ही प्रकार के होते हैं। ये संस्कार अवचेतन मन (चित्त) से निकल-निकल कर चेतन मन को प्रभावित करते हैं। आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-स्वरूप में स्थित होकर जब मनुष्य अपने समस्त संकल्पों (विचारों) का निर्माता और नियन्ता बन जाता है, तब ही वह अवचेतन मन (चित्त) से निकलकर चेतन मन पर प्रकट हुए नकारात्मक विचारों (विकारों) को नष्ट कर पाता है, उससे पहले नहीं। जैसे ही अवचेतन मन (चित्त) से एक नकारात्मक विचार (विकार) निकलकर चेतन मन के स्तर पर पहुँचता है, वैसे ही आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य उस नकारात्मक विचार (विकार) को या तो सकारात्मक विचार में रूपान्तरित कर लेता है अथवा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विनष्ट कर देता है। उदाहरण के लिए– अवचेतन मन (चित्त) से निकले हुए घृणा अथवा द्वेष के विचार को वह प्रेम के विचार से अथवा क्रोध के विचार को शान्ति के विचार से रूपान्तरित कर लेता है अथवा समस्त नकारात्मक विचारों (विकारों) को धीरे-धीरे समाप्त कर देता है, जिसे रामकथा में राम द्वारा समस्त राक्षसों को विनष्ट करने के रूप में इंगित किया गया है।

आत्म-ज्ञान अर्थात् स्व-स्वरूप को पहचान लेना अत्यन्त श्रेष्ठ स्थिति है और शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) को बहुत आनन्दित करती है। परन्तु शुद्ध, शान्त, स्थिर मन का इसी में अनुरक्त हो जाना अथवा सीमित हो जाना उचित नहीं है क्योंकि यह स्थिति व्यक्तित्व के केवल एकांगी विकास का प्रतिनिधित्व करती है। जब तक व्यक्तित्व में किसी भी तल पर आसुरी शक्तियाँ विद्यमान हैं, तबतक सर्वांगीण विकास की सम्भावना नगण्य ही है। अत: व्यक्तित्व- विकास को चाहने वाली शक्ति (कैकेयी) अपनी स्मृति (मन्थरा) के सहारे ही जब यह देखती है कि शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) आत्म-ज्ञान (राम) पर मुग्ध होकर मुख्य लक्ष्य से विचलित हो गया है, तब यह शक्ति क्रुद्ध होकर शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) को लक्ष्य का स्मरण कराती है और मन के न मानने की स्थिति में उसे प्रताड़ित भी करती है और क्षुब्ध भी। व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास हेतु यह शक्ति (कैकेयी) तब तक अपने लक्ष्य पर अड़िग बनी रहती है जब तक शुद्ध, शान्त, स्थिर मन (दशरथ) आत्म-ज्ञान (राम) का उचित दिशा में विनियोग नहीं करता। इसी समस्त ज्ञान का वर्णन कथा में यह कहकर किया गया है कि कैकेयी ने राम के राज्याभिषेक को स्वीकार नहीं किया। वह राम के वन-गमन हेतु अड़िग बनी रही और अन्तत: राम को वन में भेज दिया।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास को चाहने वाली इच्छाशक्ति (कैकेयी) अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु दो कार्य करती है। पहला कार्य है– शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को आसुरी शक्तियों से निरन्तर बचाना और दूसरा कार्य है– शुद्ध, शान्त, स्थिर मन के माध्यम से ही प्रकट हुए आत्म-ज्ञान को सुदृढ़ संस्कारों (विकारों) के विनाश हेतु प्रेरित करना।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Strong Will Power, keenly desirous of total development of Personality is depicted as Kaikeyī

In Vālmīki Ramayan (Ayodhyā Kāṇḍa, chapter 5 to 42), there is a detailed story of Kaikeyī. The description therein can be divided into two parts.

In first part, it is said that once a battle was fought between Deities and Demons. When Demons overpowered Deities, king Daśaratha also went there with his wife Kaikeyī to help Indra and fought against Demons. Demons were very powerful. They fiercely attacked Daśaratha but Kaikeyī being the charioteer of his chariot, somehow protected and saved Daśaratha. Daśaratha became very happy and offered her to take two Boons but Kaikeyī opted to reserve them for a later date.

In second part, it is said that one day, Mantharā (the maid of Kaikeyī), climbed to the top of her palace and came to know about immenent coronation ceremony of Rāma. She got mentally disturbed and felt hurt. She immediately approached Kaikeyī and provoked her to ask for the two boons promised to her by Daśaratha – Coronation of Bharata and Exile for Rāma for fourteen years. Kaikeyī somehow agreed and demanded the Boons from Daśaratha when he came to her. Daśaratha resisted Kaikeyī's demand but at last he submitted and sent Rāma to Exile.

The story is symbolic and points out that a Pure, Peaceful, Stable Mind (Daśaratha) always has three Powers – the Power of Knowledge symbolized as Kauśalyā, the Power of Action symbolized as Sumitrā and the Power of Will symbolized as Kaikeyī.

This story points out the Third Power which desires the Development of Personality in every field – physical, mental, emotional and spiritual. To fulfill this purpose, this Power i.e. Kaikeyī works at two levels.

At first level, this Will Power – Desirous for Total Development of Personality always protects a Pure, Peaceful, Stable Mind from all vices lying in sub-conscious mind. This is symbolized as her protecting Daśaratha from all Asuras living in

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Daṇḍakāraṇya. This Power vividly knows that in future this Pure, Peaceful, Stable Mind surely will help in Manifesting Knowledge of Self i.e. Ātma-jñāna and then that Ātma-jñāna will establish Peace and Bliss in life killing all vices from the sub-conscious mind. This is symbolized as securing the two Boons from Daśaratha by Kaikeyī.

At second level, when a Pure, Peaceful, Stable Mind (Daśaratha) manifests Knowledge of Self i.e. Ātma-jñāna (Rāma) but does not use the same for the cleansing of sub-conscious mind, then this Power – Desirous for Total Development of Personality (Kaikeyī) remembers the Past and demands the Pure, Peaceful, Stable Mind (Daśaratha) to use that Knowledge i.e. Ātma-jñāna for the cleansing of sub-consciousness mind – a store house of Saṁskāras. This is symbolized as demand of Kaikeyī to Exile Rāma.

Here the story points out this truth that the Knowledge of Self i.e. Ātma-jñāna (Rāma) is so wonderful, powerful, elevated, noble, dignified, great, lovely, soothing and charming that a Pure, Peaceful, Stable Mind gets attracted and entangled in it. He does not have this foresightedness that the ultimate use of this Knowledge is meant for the cleansing of sub-conscious mind. In this situation, this Power, only desirous for Total Development i.e. Kaikeyī comes forth, stands strongly and inspires the Pure, Peaceful, Stable Mind to engage Knowledge i.e. Ātmajñāna where it is most desirable. This is symbolized as Exile of Rāma by Kaikeyī.

The story points out two more aspects. This Power (Kaikeyī) knows that living in body-consciousness, a person collects so many Saṁskāras in his sub-conscious mind and these Saṁskāras regularly affect the conscious mind. Therefore it becomes necessary to clean this sub-conscious mind.

This Power also knows that living in body-consciousness, a person is never able to clean this sub-conscious mind but Knowledge of Self (Ātma-jñāna activised) enables him to do the same because a person possessed with Knowledge has the Mastery over self. He not only creates Pure, Powerful Thoughts but he also transforms all Negative ones into Positive ones.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१२. निषादराज गुह कथा

(आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के मित्र-स्वरूप चेतन मन का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
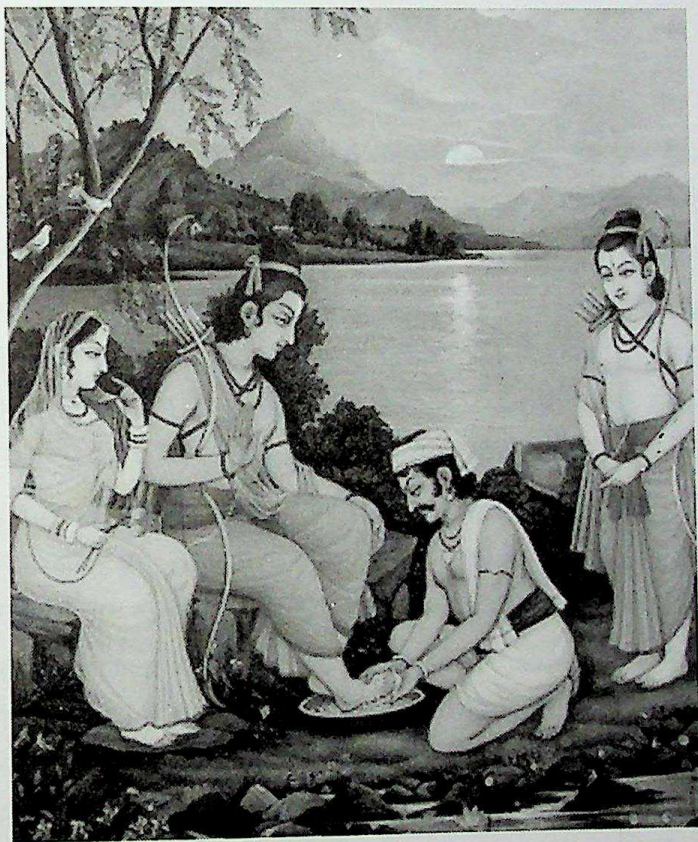
निषादराज गुह की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के चेतन मन के मित्र-स्वरूप होने का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड (सर्ग ५०, ५१ तथा ५२) में निषादराज गुह की कथा विस्तार के साथ वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

कोसल जनपद को पार करके राम जब शृंगवेरपुर में पहुँचे, तब उन्होंने गंगा के किनारे एक इंगुदी वृक्ष के नीचे रात्रि-विश्राम का निश्चय किया। अत: रथ को रुकवाकर वे लक्ष्मण और सीता के साथ वहीं रथ से उतर गए।

शृंगवेरपुर में निषादों का राजा गुह राज्य करता था। वह राम का मित्र था। राम के आगमन का समाचार पाकर गुह तुरन्त मन्त्रियों और बन्धु-बान्धवों को लेकर राम के पास पहुँचा। राम ने गुह को गले से लगा लिया और गुह ने भी प्रसन्न होकर राम की सेवा में अनेक प्रकार के भक्ष्य-भोज्य पदार्थ समर्पित किए।

राम ने गुह द्वारा लाए गए भोज्य पदार्थों को तो स्वीकार नहीं किया, परन्तु गुह का सम्मान करते हुए उन्होंने वहीं तृण-निर्मित शय्या पर सीता के साथ विश्राम किया। लक्ष्मण, गुह और सुमन्त्र के साथ बात करते हुए रात भर जागते रहे।

प्रात:काल होने पर राम ने गंगा को पार करके आगे बढ़ने का निश्चय किया। अत: निषादराज गुह ने उनके लिए गंगातट पर उत्तम नौका का प्रबन्ध किया। राम ने सुमन्त्र से अयोध्या लौटने का आग्रह किया और स्वयं निर्जन वन में रहने के लिए जटा धारण करने का निश्चय। अत: राम की आज्ञा से निषादराज गुह तुरन्त वट वृक्ष का दूध ले आए जिसके द्वारा राम और लक्ष्मण ने जटाएँ बनाकर तथा सीता के साथ नौका पर बैठकर गंगा को पार कर लिया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है। अत: एक-एक प्रतीक को समझ लेना आवश्यक है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१. कोसल जनपद–

कोसल जनपद मनुष्य के दक्षता युक्त (कुशलता या कौशल युक्त) श्रेष्ठ मन को इंगित करता है। शास्त्रीय दृष्टि से इस दक्षता युक्त श्रेष्ठ मन को विज्ञानमय कोश भी कहा जा सकता है। इस दक्षता युक्त श्रेष्ठ मन के भीतर कोई युद्ध (द्वन्द्व) नहीं होता, इसलिये कथा में कोसल जनपद के भीतर अयोध्या नगरी के विद्यमान होने का संकेत किया गया है। अयोध्या का अर्थ ही है– अ-योध्या अर्थात् जहाँ कोई युद्ध (द्वन्द्व) नहीं है। इस युद्ध (द्वन्द्व) रहित श्रेष्ठ मन की स्थिति में ही मनुष्य को यह ज्ञान हो पाता है कि वह एक शरीर नहीं, अपितु शरीर को चलाने वाला चैतन्य-शक्ति आत्मा है। अपने वास्तविक स्वरूप की इस पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान के अवतरण को ही रामकथा में अयोध्या नगरी के भीतर राम का अवतरण कहकर इंगित किया गया है।

२. शृंगवेरपुर–

यह शब्द शृंग, वर (वेर) तथा पुर नामक तीन शब्दों के योग से बना है। शृंग का अर्थ है– चोटी, शिखर अथवा ऊँचा। वर (वेर) का अर्थ है– श्रेष्ठ तथा पुर का अर्थ है– शरीर। अतः शृंगवेरपुर शब्द के द्वारा यहाँ मनुष्य योनि में प्राप्त हुए मनःशरीर को इंगित किया गया है, जो समस्त योनियों को प्राप्त हुए मनःशरीरों में सबसे ऊँचा अर्थात् श्रेष्ठ है। शास्त्रीय दृष्टि से इस मनःशरीर को मनोमय कोश भी कहा जा सकता है।

३. गंगा के किनारे इंगुदी वृक्ष के नीचे राम का विश्राम–

गंगा ज्ञान की प्रतीक है और इंगुदी वृक्ष स्थिर स्थिति को इंगित करता है। इंगुदी शब्द में इंग का अर्थ है– कम्पन अथवा हिलना-डुलना। इस कम्पन को जो खंड़ित करता है– वह इंगुदी कहलाता है। वामन कोश में इंगुदी शब्द की निरुक्ति इस प्रकार की गई है– इंग-उ-इंगु। तं द्यति खंड़यति इति इंगुदी। अतः गंगा के किनारे इंगुदी वृक्ष के नीचे राम का विश्राम कहकर वास्तव में आत्मज्ञान में स्थित मनुष्य की ज्ञानयुक्त स्थिर स्थिति की ओर संकेत किया गया है।

४. निषाद–

निषाद शब्द नि उपसर्ग के साथ सद् धातु के योग से बना है। नि उपसर्ग निम्नता अथवा नीचे की ओर गति का वाचक है तथा सद् का अर्थ है– रहना। अतः निषाद का अर्थ हुआ– मन की वह प्रवृत्ति जो निम्नता की ओर (अर्थात्

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्थूल शरीर अथवा अन्नमय कोश के स्तर पर) विद्यमान रहती है। सरल रूप में ऐसा भी कह सकते हैं कि मन की जो प्रवृत्ति श्रृंगारिक विचारों एवं भावों में लिप्त रहती है, वह निषाद कहलाती है।

५. निषादराज–

उपर्युक्त वर्णित निम्नस्तरीय प्रवृत्तियों अर्थात् निषादों का राजा है– मन। अतः स्थूल शरीर में लिप्त हुए चेतन मन को ही यहाँ निषादराज कहा गया है।

६. निषादराज गुह–

गुह शब्द वास्तव में गुह्य शब्द का ही तद्भव (बिगड़ा हुआ) स्वरूप है। गुह्य का अर्थ है– छिपा हुआ, गूढ़ अथवा गहन। निषादराज को गुह कहकर यह संकेत किया गया है कि मन की गति अत्यन्त गुह्य है। देह-ज्ञान की स्थिति में जो चेतन मन स्थूल देह में केन्द्रित होकर कामनाओं-वासनाओं में उलझा रहने से मनुष्य के आत्मिक उत्थान में शत्रु स्वरूप बना रहता है, वही चेतन मन आत्म-ज्ञान की स्थिति में मित्रस्वरूप होकर आत्म-ज्ञानी मनुष्य के प्रमुख उद्देश्य की सिद्धि में (अर्थात् अवचेतन मन में विद्यमान संस्कार रूप विकारों को देखने, उनकी ओर ध्यान देने तथा उनके विनाश की ओर प्रवृत्त होने में) सहायक हो जाता है। इसीलिए कहा भी गया है– मन ही मनुष्य का मित्र है और मन ही शत्रु। स्व-स्वरूप की पहचान (आत्म-ज्ञान) हो जाने पर जब मनुष्य अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होता है, तब उसका अपना ही चेतन मन (निषादराज गुह) रूपान्तरित होकर मित्रस्वरूप हो जाता है।

७. निषादराज गुह के साथ राम का मैत्री सम्बन्ध–

निषादराज गुह को राम का मित्र कहकर यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि मनुष्य का वह चेतन मन, जो स्थूल देह में केन्द्रित होने के कारण निषाद अर्थात् निम्नस्तरीय कहलाता है और मनुष्य के आत्मिक उत्थान में सदा बाधक बना रहता है, वही चेतन मन आत्म-ज्ञान में स्थित होने पर (स्व-स्वरूप की पहचान हो जाने पर) मित्रभाव को प्राप्त होकर सहायक स्वरूप हो जाता है। तात्पर्य यह है कि स्थूल देह में केन्द्रित चेतन मन इतनी कामनाओं, इच्छाओं, आशाओं, अपेक्षाओं में उलझा रहता है कि मनुष्य अपने उस अवचेतन मन की तरफ कभी झांक ही नहीं पाता, जहाँ झांकने की उसे सबसे अधिक आवश्यकता होती है, क्योंकि अवचेतन मन में ही वे सारे विकार संस्कार रूप (बीज रूप)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होकर विद्यमान रहते हैं, जिनका निर्माण मनुष्य ने ही अपने कर्मों द्वारा जन्म-जन्मांतर की यात्रा में किया होता है और पूर्ण आत्मिक उत्थान हेतु (स्वराज्य अधिकारी बनने के लिए) जिनका विनाश करना अनिवार्य होता है। आत्म-ज्ञान अर्थात् स्व-स्वरूप की पहचान हो जाने पर वही चेतन मन आत्म-उन्मुख होकर मनुष्य का मित्र बन जाता है, जिसका संकेत कथा में राम द्वारा निषादराज गुह को गले लगाकर दिया गया है।

८. निषादराज गुह के द्वारा राम की सेवा–

कथा में निषादराज गुह के रूप में चेतन मन की सेवक-स्वरूपता का चित्रण बहुत ही सुन्दर रीति से किया गया है। यथा–

१. निषादराज गुह का बन्धु-बान्धवों तथा मंत्रियों के साथ तुरन्त जाकर राम से मिलना और राम की सेवा में प्रस्तुत होना यह इंगित करता है कि चेतन मन अब आत्म-उन्मुख होकर सेवकस्वरूप हो गया है।

२. इसी प्रकार निषादराज गुह द्वारा राम के समक्ष विविध प्रकार की भोजन सामग्री को प्रस्तुत करना परन्तु राम द्वारा ग्रहण न करने पर गुह द्वारा ससम्मान उस भोजन-सामग्री को बिना किसी प्रकार आहत हुए वापस ले लेना भी चेतन मन की सेवक-स्वरूपता को इंगित करता है।

तात्पर्य यह है कि आत्म-ज्ञान होने पर ही मनुष्य अपने मन का (विचारों का) द्रष्टा बनता है और भलीभाँति यह समझ पाता है कि जो मन मनुष्य को एक उपकरण अथवा एक सेवक की भाँति उपयोग करने के लिए मिला है, वही मन अज्ञान के कारण (आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण) सेवक न रहकर स्वामी की भाँति व्यवहार करने लगता है।

९. निषादराज गुह की ज्ञान-स्वरूपता का चित्रण–

आत्म-ज्ञान अर्थात् स्व-स्वरूप की पहचान हो जाने पर मनुष्य का चेतन मन और उसकी समस्त प्रवृत्तियां भी ज्ञान में स्थित हो जाती हैं। ज्ञान में स्थिति को संकेतित करने के लिए ही कथा में कहा गया है कि समस्त निषाद श्रृंगवेरपुर में बहने वाली ज्ञान रूपी गंगा में नौका चलाते हैं और निषादराज गुह संसार रूपी वट वृक्ष के भीतर विद्यमान चैतन्य-सत्ता रूपी दुग्ध को ग्रहण करने में समर्थ है।

१०. वट-वृक्ष के दुग्ध से राम-लक्ष्मण द्वारा जटा निर्माण–

वट-वृक्ष संसार रूपी वृक्ष को और वट-वृक्ष में व्याप्त दुग्ध संसार रूपी वृक्ष

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

में व्याप्त आनन्दघन चैतन्य-सत्ता को इंगित करता है। जटा शब्द मान्यता का वाचक है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि इस संसार में विद्यमान समस्त पदार्थों की परस्पर भिन्नता को देखते हुए मन के भीतर जो एकमात्र भिन्नता का विचार विद्यमान हो जाता है, वह भिन्नता का विचार तब समाप्त होता है, जब मनुष्य का ज्ञानयुक्त मन उस भिन्नता के भीतर विद्यमान चैतन्य-सत्ता रूप एकत्व को पकड़ने में समर्थ हो जाता है। अब इस एकत्व की सहायता से स्व-स्वरूप में स्थित मनुष्य (राम) इस सुदृढ़ मान्यता को अपनी सोच में धारण कर लेता है कि यह संसार रूप वृक्ष परमात्मा से निकला है, अत: उसी का प्रकट स्वरूप है।

अपने ही अवचेतन मन (चित्त) रूपी वन में प्रवेश करके वहाँ विद्यमान विकारों के विनाश से पूर्व उपर्युक्त मान्यता को धारण करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मान्यता का यह संधारण नए विकारों के निर्माण से बचाने में मनुष्य की सतत सहायता करता है।

११. कोसल जनपद से निकलकर राम का वन की ओर प्रस्थान–

अपने ही अवचेतन मन (चित्त) को रामकथा में वन के रूप में प्रदर्शित किया गया है। इस अवचेतन मन (चित्त) के भीतर जन्म-जन्मांतरों में अर्जित किए हुए वे सब विकार संस्कार रूप (बीज रूप) होकर पड़े हुए हैं, जो समय-समय पर बाहर निकलकर मनुष्य के चेतन मन को प्रभावित करते और हानि पहुँचाते हैं। अवचेतन मन में इकट्ठे हुए इन विकारों का विनाश आवश्यक है और यह विनाश केवल तभी सम्भव है जब मनुष्य सर्वप्रथम अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने और अपने विचारों का निर्माता एवं नियन्ता बने। अत: कोसल जनपद से निकलकर राम का वन की ओर प्रस्थान करना यह संकेतित करता है कि कुशल मन की स्थिति में प्राप्त हुए स्व-स्वरूप के ज्ञान (राम के अवतरण) को अब केवल ज्ञान तक सीमित नहीं रखना है। उस ज्ञान का उपयोग अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में पड़े हुए विकारों के विनाश के लिए करना है।

वन की ओर प्रस्थान करते समय राम का सबसे पहले निषादराज गुह से मिलन यह संकेतित करता है कि आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य जब अपने ही विकारों के विनाश रूप लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है, तब सबसे पहले अपने ही उस चेतन मन को भलीभाँति देखता है (अथवा उससे मिलता है), जो ज्ञानरूप और सेवकरूप हो जाने के कारण उसका मित्र बन गया है। यह मित्ररूप मन लक्ष्य-प्राप्ति में मनुष्य का सदैव सहायक होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१२. राम का शयन और लक्ष्मण का जागरण–

राम का शयन या विश्राम परमात्म-चिन्तन को और लक्ष्मण का जागरण विचार-शक्ति (संकल्प-शक्ति) की जाग्रता को इंगित करता है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) जब परमात्म-चिन्तन रूप विश्राम करता है, तब भी उसकी विचार शक्ति (लक्ष्मण) जाग्रत ही रहती है, वह कभी प्रसुप्त नहीं होती।

कथा का अभिप्राय

अपने आपको शरीर मात्र समझते हुए मनुष्य जो भी मानसिक, वाचिक अथवा कायिक कर्म बार-बार करता है, उसकी एक छाप उसके अवचेतन मन (चित्त) में अंकित हो जाती है, जिसे अध्यात्म की भाषा में संस्कार कहा जाता है। मनुष्य एक शरीर को छोड़ता है तथा दूसरा शरीर ग्रहण करता है, अत: बार-बार शरीर छोड़ने और ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में ढेरों संस्कार उसके अवचेतन मन (चित्त) में इकट्ठे हो जाते हैं। अवचेतन मन में इकट्ठे हुए ये गुण रूप तथा विकार रूप संस्कार ही वहाँ से निकलकर चेतन मन पर आते हैं, और उसे निरन्तर प्रभावित करते हैं। अत: विकारों से न छूट पाने का अथवा विकारों से बंधे रहने का बहुत बड़ा कारण मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान ये विकार रूप संस्कार ही होते हैं।

अपने आपको शरीर मात्र समझते हुए मनुष्य कभी भी अपने ही भीतर विद्यमान इन विकार रूप संस्कारों को नहीं देख पाता क्योंकि चेतन मन के तल पर उठी हुई कामनाएँ, इच्छाएँ, आशाएँ, अपेक्षाएँ अथवा वासनाएँ उसे इतना उलझाती हैं कि मनुष्य उन्हीं की पूर्त्ति में लगा रहता है। इसलिए अपने ही भीतर संचित हुए अपने ही विकारों को देखना अथवा उनकी तरफ ध्यान देना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं हो पाता।

रामकथा यह महत्त्वपूर्ण संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप– चैतन्य-स्वरूप को पहचानकर और उसमें स्थित होकर ही मनुष्य द्वारा अपने विकार रूप संस्कारों को देखना और उन्हें विनष्ट करना सम्भव होता है अर्थात् मनुष्य जब स्व-स्वरूप के इस ज्ञान में स्थित हो जाता है कि वह एक शरीर नहीं, अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा है, तब वह अपने मन (चेतन मन) का नियन्ता बनकर इस योग्य हो जाता है कि अपने संस्कार रूप धारण कर चुके विकारों को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देख सके और उनके विनाश हेतु प्रवृत्त हो सके। आत्म-ज्ञान अर्थात् स्व-स्वरूप की पहचान का सबसे बड़ा और अन्तिम लाभ यही है कि अपने आपको शरीर मात्र समझते हुए जो अहंकार तथा काम-क्रोधादि विकार संस्कार रूप होकर चित्त में जमा हो जाते हैं और समय-समय पर चेतन मन के स्तर पर निकल कर मनुष्य को परेशान करते हैं, उन सब विकारों को आत्म-ज्ञानी मनुष्य अपनी विचार-शक्ति, संकल्प-शक्ति और ज्ञान-शक्ति के सहारे विनष्ट कर देता है। रामकथा में वर्णित रावण नामक राक्षस का परिवार सहित विनाश संचित विकारों (संस्कारों) के विनाश को ही संकेतित करता है।

परन्तु इस आत्यन्तिक लाभ की प्राप्ति से पूर्व स्व-स्वरूप– चैतन्य-स्वरूप में स्थित होने का सबसे पहला लाभ यह है कि अपने आपको शरीर समझते हुए अपना ही जो चेतन मन शरीर-केन्द्रित होने के कारण श्रृंगारिक वृत्तियों में लिप्त होने से शत्रुवत् व्यवहार करता है, मनुष्य को उन रास्तों पर ले जाता है जो उसके लिए कल्याणकारी नहीं होते, मनमाना आचरण करता है और वश में नहीं रहता– वही चेतन मन अब आत्म-केन्द्रित होकर ज्ञान में स्थित हो जाता है। अब वह मनमाना आचरण नहीं करता अपितु सेवक भाव को प्राप्त होकर मनुष्य का मित्र बन जाता है। निषादराज गुह की कथा के माध्यम से अपने वास्तविक स्वरूप– चैतन्य-स्वरूप में स्थित होने पर चेतन मन के इसी मित्रस्वरूप को भलीभाँति चित्रित किया गया है।

मित्रस्वरूप यह मन ज्ञान से युक्त होता है। इस ज्ञान-स्वरूपता को संकेतित करने के लिए ही कथा में निषादराज गुह को गंगा में नौका चलाने वाला तथा वट-वृक्ष से दूध निकाल लेने की सामर्थ्य वाला बताया गया है। गंगा ज्ञान की प्रतीक है। अत: गंगा में नौका चलाना कहकर यह इंगित किया गया है कि मित्रस्वरूप मन निरन्तर ज्ञानयुक्त सोच या विचारों में स्थित होता है।

इस दृश्यमान संसार को ही वट-वृक्ष कहा गया है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि अज्ञान में स्थित चेतन मन जहाँ इस दृश्यमान संसार में केवल बाहरी स्वरूप को पकड़ पाता है, वहीं ज्ञान में स्थित चेतन मन वट-वृक्ष में विद्यमान दूध की भाँति इस संसार-वृक्ष में विद्यमान चैतन्य-सत्ता को पकड़ लेता है। इस चैतन्य-सत्ता का सहारा लेकर ही फिर आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य अर्थात् राम इस सुदृढ़ मान्यता को अपनी सोच में धारण कर लेता है कि यह संसार वास्तव में परमात्मा का ही प्रकट स्वरूप है। गुह द्वारा लाए गए वट-वृक्ष के दूध से राम-लक्ष्मण का जटा धारण करना इसी तथ्य को संकेतित करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मित्रस्वरूप मन सदा सेवक की भाँति कार्य करता है। इस सेवक-स्वरूपता को संकेतित करने के लिए ही कथा में कहा गया है कि निषादराज गुह ने राम की सेवा में अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थ समर्पित किए और राम के निर्देश का निरन्तर पालन किया। अन्त में राम की इच्छा के अनुसार ही निषादराज गुह ने राम को गंगा के पार पहुँचा दिया। इस कथन के द्वारा यह संकेत किया गया है कि मित्रस्वरूप मन सेवक की भाँति स्वामी के आदेश का सदा पालन करता है, मनमानी कभी नहीं करता। वह सदैव स्वामी के लक्ष्य की पूर्ति में साधक स्वरूप होता है, बाधक नहीं।

चेतन मन की इस मित्र-स्वरूपता को संकेतित करने के लिए ही कथा में कहा गया है कि राम के आगमन का समाचार पाकर गुह अपने बन्धु-बान्धवों के साथ राम के पास पहुँचा और राम ने भी गुह को गले से लगा लिया। प्रस्तुत कथन के द्वारा यह संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान की स्थिति में मनुष्य का अपना ही चेतन मन पूर्णत: रूपान्तरित होकर जब ज्ञान-स्वरूप और सेवक-स्वरूप हो जाता है, तब वह मनुष्य का मित्र ही होता है, शत्रु कभी नहीं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

A Friendly Mind of a Self-Knowledged Person is described through the story of Niṣādarāja Guha

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Ayodhyākāṇḍa, Chapters 50-52), there is a story of Guha – King of Niṣāds. It is said that after crossing the boundaries of Kauśala region, Rāma first reached Śṛṅgaverapura. His friend Guha welcomed him with his friends and ministers and Rāma also embraced Guha. Guha offered him variety of foods but Rāma, honouring him did not choose to accept. Guha was not hurt and happily surrenderd to Rāma's wish. Guha expressed his wish to provide all sorts of comforts to Rāma but Rāma chose rest and sleep under a tree with Sītā, while Lakṣmaṇa kept awake and passed his whole night talking with Guha and Sumantra.

Next morning, Rāma wished to proceed ahead, therefore Guha arranged a boat for them to cross river Gaṅgā. When Rāma requested Guha to bring the milk of fig tree, then Guha brought it with which Rāma and Lakṣmaṇa matted and twisted their hairs with the help of that milk.

The story is symbolic and relates with the friendliness of Conscious Mind. It points out that when a person knows his own Real Self, his Conscious Mind becomes his Friend symbolized as the Friendship of Rāma with Guha.

Living in body-consciousness a person's own mind behaves like a foe and never brings good fortune for him but the same mind when it enters in the domain of Self-Knowledge, it transforms itself and becomes his friend. This is the reason, the Mind has been called symbolically Guha in the story. Guha means, the Mind having Deep Secret and this Secret is the transformation of Mind from Foe to Friend.

The story describes this Friendliness of Mind in many ways.

Firstly, a Friendly Mind always offers best varieties of services of his master's choice but it never dominates. This is symbolized as offering different types of food by Guha to Rāma

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

but Guha happily accepts it back when Rāma did not choose to have it.

Secondly, a Friendly Mind possessing higher elevated Thoughts always thinks positively symbolized as the rowing of boats in Gaṅgā by Guha. It also helps in perceiving the Universe as the manifestation of God symbolized as offering the milk of fig tree by Guha to Rāma.

Thirdly, a Friendly Mind always becomes helpful in achieving the goal symbolized as arranging a boat by Guha to fulfill Rāma's wish to proceed further.

Fourthly, a Friendly Mind always obeys his master (Soul) and behaves like an instrument symbolized as offering of different comforts by Guha to Rāma but Rāma did not choose to accept and chose to rest under a tree.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१३. भरद्वाज मुनि कथा

(आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आचरण-परक चेतन मन का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
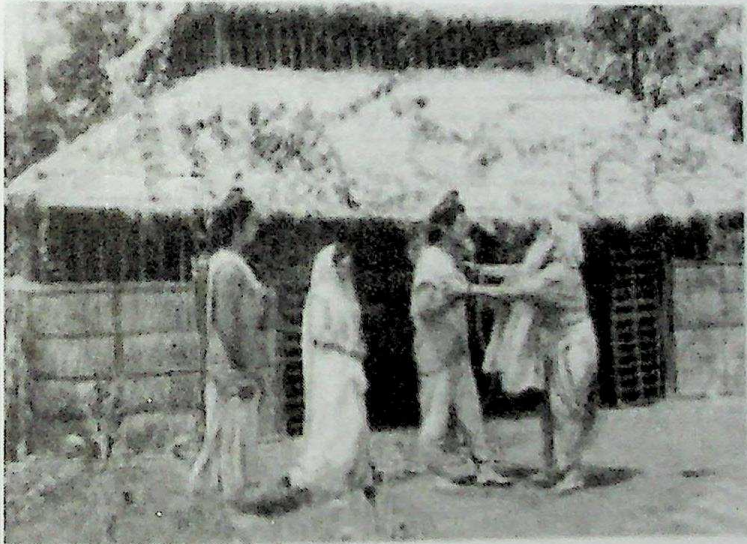
भरद्वाज मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आचरण-परक मन का चित्रण

वाल्मीकि रामायण में भरद्वाज मुनि से सम्बन्धित कथा का वर्णन तीन स्थानों पर उपलब्ध होता है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सर्वप्रथम अयोध्याकाण्ड (सर्ग ५४) में वर्णन आता है कि राम जब लक्ष्मण और सीता के साथ वन की ओर जाने के लिए अयोध्या से निकले, तब सबसे पहले अपने मित्र निषादराज गुह से मिले और फिर प्रयाग में गंगा-यमुना संगम पर स्थित भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचे। भरद्वाज मुनि मृगों, पक्षियों तथा ऋषि-मुनियों के बीच में विराजमान थे। उन्होंने अन्न, रस आदि प्रदान करते हुए राम का आतिथ्य-सत्कार किया और कहा कि वे दीर्घकाल से उन्हीं के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। भरद्वाज मुनि ने आश्रम में ही ठहरने के लिए राम से अनुरोध किया परन्तु राम ने वहाँ ठहरना स्वीकार नहीं किया और सबकी पहुँच से दूर किसी एकान्त स्थान को ही अपने रहने के लिए उचित समझा। अतः भरद्वाज मुनि ने राम को उस परम पवित्र चित्रकूट पर्वत पर ठहरने का आदेश दिया जो मधुर फल-मूल से सम्पन्न था और जहाँ अनेक प्रकार के पशु-पक्षी अर्थात् मृग, लंगूर, वानर, रीछ, गजराज, किन्नर, कोकिल, सर्प, मयूर आदि तथा ऋषि-महर्षि निवास करते थे। मुनि ने कहा कि चित्रकूट के शिखरों का दर्शन करके मनुष्य पुण्य कर्मों का फल पाता है और पाप में कभी मन नहीं लगाता। चित्रकूट पर पहुँचने के मार्ग का निर्देश करते हुए भरद्वाज मुनि ने कहा कि उन्हें गंगा के जल के वेग से अपने प्रवाह के प्रतिकूल दिशा में मुड़ी हुई यमुना को भी पार करके चित्रकूट में पहुँचना होगा।

दूसरी बार (अयोध्याकाण्ड, सर्ग ९०, ९१) भरद्वाज मुनि का दर्शन उस समय होता है जब भरत राम को लौटा लाने के लिए सेना आदि को साथ लेकर उनके आश्रम में पहुँचते हैं। राम के प्रति भरत के भाव को पहचान लेने के पश्चात् भरद्वाज मुनि ने ससैन्य भरत का आतिथ्य- सत्कार करना चाहा और आश्रम में ही ठहरने के लिए भरत को निमन्त्रित किया। भरद्वाज मुनि ने आतिथ्य-सत्कार हेतु विश्वकर्मा, त्वष्टा, इन्द्र, यम, कुबेर तथा सोम आदि देवताओं का और गन्धर्वों,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अप्सराओं का आवाहन किया, जो स्मरण करते ही वहाँ उपस्थित हो गए। देवताओं द्वारा प्रस्तुत दिव्य सामग्रियों से भरद्वाज मुनि ने ससैन्य भरत का दिव्य सत्कार किया। मुनि से सत्कृत होकर और परस्पर अभिवादन करते हुए भरत भरद्वाज मुनि द्वारा बताए हुए मार्ग से चित्रकूट की ओर चले गए।

तीसरी बार (युद्धकाण्ड, सर्ग १२४) भरद्वाज मुनि का दर्शन उस समय होता है जब राम अयोध्या लौटते समय पुन: उनके आश्रम में पहुँचते हैं। राम के पूछने पर भरद्वाज मुनि ने अयोध्यावासियों के कुशल क्षेम का वर्णन किया और राम से कहा कि तप के प्रभाव से वे वन में घटित हुए प्रत्येक वृत्तान्त को जानते हैं। भरद्वाज मुनि ने आतिथ्य-सत्कार के रूप में जब राम को एक वर देना चाहा, तब राम ने कहा कि वर के रूप में अयोध्या के मार्ग के सभी वृक्ष असमय में ही मीठे फलों से युक्त हो जाएँ। तदनुसार फल-हीन वृक्ष मीठे फलों से युक्त हो गए, पुष्प-रहित वृक्षों में पुष्प आ गए और सूखे वृक्ष हरे-भरे हो गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है। अत: कथा के अभिप्राय को समझने के लिए एक-एक प्रतीक को समझ लेना आवश्यक है।

१. भरद्वाज मुनि–

भरद्वाज शब्द भरत् और वाज नामक दो शब्दों के योग से बना है। भरत् का अर्थ है– भरना और वाज का अर्थ है– क्रियाशक्ति। वाज एक वैदिक शब्द है और वेदों में आए हुए ऋभु, विभु और वाज नामक शब्द क्रमश: ज्ञानशक्ति, भावशक्ति और क्रियाशक्ति के वाचक हैं। मुनि शब्द मन को इंगित करता है। अत: वाज (क्रियाशक्ति) का भरण करने वाले मन को भरद्वाज मुनि कहा जा सकता है। सरल रूप में, ऐसा कह सकते हैं कि जो मन ज्ञान के भीतर क्रियाशक्ति को भरता है, अर्थात् ज्ञान को आचरण में उतारता है– वह भरद्वाज मुनि है।

२. भरद्वाज मुनि के आश्रम की गंगा-यमुना संगम पर स्थिति–

गंगा नदी ज्ञान की और यमुना नदी कर्म (आचरण) की प्रतीक है। गंगा-यमुना के संगम पर भरद्वाज मुनि का आश्रम कहकर वास्तव में भरद्वाज मुनि को ही प्रकारान्तर से समझाने का प्रयास किया गया है। भरद्वाज मुनि उस मन का वाचक है जो सदा ज्ञान और कर्म (आचरण) के संगम अर्थात् समन्वय में स्थित रहता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. भरद्वाज मुनि के आश्रम की प्रयाग में स्थिति–

प्रयाग शब्द प्र उपसर्गपूर्वक याग शब्द के योग से बना है। प्र उपसर्ग विशिष्टता का वाचक है और याग (यज् धातु से निष्पन्न) का अर्थ है– यज्ञ अर्थात् ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म। अतः ज्ञान से जुड़कर विशिष्ट बने हुए कर्म (यज्ञ) को ही प्रयाग कहा जा सकता है। भरद्वाज मुनि को प्रयाग में स्थित कहकर भी वास्तव में ज्ञान और कर्म के समन्वय में स्थित आचरण-परक मन की ओर ही संकेत किया गया है।

४. भरद्वाज मुनि के द्वारा दीर्घकाल से राम के आगमन की प्रतीक्षा करना और उन्हें अन्न, रस आदि प्रदान करना–

प्रस्तुत कथन के द्वारा यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि जब तक मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान नहीं लेता, तब तक जीवन-व्यवहार में ज्ञान को भी उतार नहीं पाता। इसलिए आचरण-परक मन यह प्रतीक्षा करता है कि मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचाने। ज्ञान को आचरण में उतारना मनुष्य को तृप्ति प्रदान करता है जिसे कथा में भरद्वाज मुनि द्वारा राम को अन्न, रस आदि प्रदान करने के रूप में संकेतित किया गया है।

५. भरद्वाज मुनि का आश्रम में मृगों, पक्षियों तथा ऋषियों के मध्य विराजमान होना–

मृग शब्द अन्वेषण अर्थ वाली मृग् धातु से बना है और अन्वेषण-परक मन अथवा विचारों को इंगित करता है।

पक्षी शब्द का प्रयोग पौराणिक साहित्य में मन रूपी आकाश में उड़ान भरने वाले उच्च विचारों के लिए किया गया है।

ऋषि शब्द श्रेष्ठ मन अथवा विचारों का वाचक है। अतः भरद्वाज मुनि को मृगों, पक्षियों तथा ऋषियों के मध्य में विराजमान कहकर यह संकेत किया गया है कि जीवन-व्यवहार में ज्ञान को उतारने वाला आचरण-परक मन सदा अन्वेषण-परक, उच्च, श्रेष्ठ विचारों से घिरा रहता है।

६. चित्रकूट पर्वत–

चित्रकूट शब्द चित्र और कूट नामक दो शब्दों के मेल से बना है। चित्र शब्द वास्तव में चित्त शब्द का ही छिपा हुआ स्वरूप है और कूट का अर्थ है– जटिल, पेचीदा, उलझन भरा। अतः चित्रकूट शब्द के द्वारा उस कूट चित्त की ओर संकेत

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किया गया है, जिसको जानना, समझना सरल नहीं है और जन्मों-जन्मों में संचित हुए संस्कारों के कारण जो जटिल भी हो गया है। कोई संस्कार किस कर्म का परिणाम होता है– कहा नहीं जा सकता। इस कूट चित्त को पर्वत कहकर यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि चित्त के भीतर संचित हुए संस्कार कोई दो, चार, दस, बीस नहीं होते। उनका तो एक पर्वत ही बन जाता है।

७. भरद्वाज मुनि द्वारा राम को चित्रकूट पर्वत पर रहने का आदेश देना–

रामकथा में राम नामक पात्र स्व-स्वरूप में स्थिति अर्थात् आत्म-ज्ञान का वाचक है। आत्म-ज्ञान का प्रमुख उद्देश्य है– चित्त पर चिन्तन करते हुए चित्तगत विक़ारों को देखना, समझना और उनका विनाश करना। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य का अपना ही आचरण-परक मन उसे प्रेरित करता है, जिसे कथा में भरद्वाज मुनि द्वारा राम को चित्रकूट पर रहने के आदेश के रूप में चित्रित किया गया है।

८. चित्रकूट पर्वत का प्रचुर फल-मूल से सम्पन्न होना–

प्रस्तुत संदर्भ में फल शब्द कार्य अर्थात् परिणाम (effect) का और मूल शब्द कारण (cause) का वाचक है। चित्रकूट पर्वत पर फल-मूल की प्रचुरता कहकर यह संकेत किया गया है कि मनुष्य के कूट चित्त में कार्य और कारण रूप दोनों ही प्रकार के संस्कार विद्यमान होते हैं। कुछ संस्कार ऐसे हैं, जो पूर्व जन्मों में किए हुए कर्मों के आधार पर निर्मित हुए हैं और वर्तमान में फल (परिणाम) देने के लिए तत्पर हैं। कुछ संस्कार ऐसे हैं, जो वर्तमान कर्मों के आधार पर निर्मित हुए हैं और भविष्य में प्राप्त होने वाले परिणामों के मूल अर्थात् कारण हैं।

९. चित्रकूट पर्वत पर अनेक प्रकार के पशुओं, पक्षियों तथा ऋषियों का निवास–

प्रत्येक मनुष्य के चित्त में पाँच प्रकार के संस्कार विद्यमान होते हैं। पहली प्रकार के संस्कार वे हैं, जिन्हें अनेक जन्मों की यात्रा में मनुष्य अर्जित कर लेता है। दूसरी प्रकार के संस्कार वे हैं, जो माता-पिता से प्राप्त होते हैं। तीसरी प्रकार के संस्कार वे हैं, जिन्हें मनुष्य वातावरण से अर्जित कर लेता है। चौथी प्रकार के संस्कार मनुष्य की अपनी संकल्प-शक्ति के संस्कार हैं और पाँचवीं प्रकार के संस्कार आत्म-गुणों के हैं, जो प्रत्येक मनुष्य में समान ही होते हैं। इन पाँच प्रकार के संस्कारों में से कुछ संस्कार बांधने वाले होते हैं तो कुछ मुक्त करने वाले।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ऐसा प्रतीत होता है कि चित्रकूट पर्वत पर अनेक प्रकार के पशुओं, पक्षियों तथा ऋषियों का निवास कहकर उपर्युक्त प्रकार के संस्कारों की चित्त में विद्यमानता को ही इंगित किया गया है।

१०. चित्रकूट के शिखरों का दर्शन करके पुण्य कर्मों का फल मिलना और पाप कर्म में मन न लगना–

मनुष्य जो भी कर्म (मानसिक, वाचिक अथवा कायिक) बार-बार करता है, उसकी एक छाप उसके ही चित्त में अंकित हो जाती है, जिसे अध्यात्म की भाषा में संस्कार कहा जाता है। ये संस्कार जीवन में कभी न कभी फलीभूत अवश्य होते हैं, इनसे बचा नहीं जा सकता। चित्त से सम्बन्धित यही ज्ञान कूट चित्त का शिखर है, जिसे सम्यक्-रूपेण समझकर मनुष्य असद् कर्म करने से बचता है और सत्कर्म में प्रवृत्त होता है।

११. गंगा के जल के वेग से यमुना नदी का अपने प्रवाह के प्रतिकूल दिशा में मुड़ना–

प्रस्तुत कथन द्वारा इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को इंगित किया गया है कि ज्ञान (गंगा) के संसर्ग में रहने पर कर्म (यमुना) की दिशा भी बदल जाती है। अब मनुष्य के कर्म श्रेष्ठ हो जाते हैं। वे स्वार्थ-परक न होकर परमार्थ-परक बन जाते हैं।

१२. चित्रकूट में पहुँचने के लिए भरद्वाज मुनि द्वारा यमुना को भी पार करने का निर्देश–

प्रस्तुत कथन से यह संकेत किया गया है कि श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करते हुए भी मनुष्य को चित्त पर ध्यान देना आवश्यक है क्योंकि श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करता हुआ भी मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि विकारों के वशीभूत होता ही है। अनेक बार तो अपने मन के विपरीत किसी परिस्थिति के उपस्थित होने मात्र से मन के भीतर प्रतिक्रिया-स्वरूप ढेरों विचार उत्पन्न हो जाते हैं और मन को इतना वशीभूत कर लेते हैं कि स्वयं मनुष्य को ही आश्चर्य होता है। उदाहरण के लिए, सेवा जैसा श्रेष्ठ कार्य करते हुए भी किसी के व्यवहार से प्रतिक्रिया-स्वरूप क्रोधित हो जाना, जोर जोर से बोलना, दूसरे की बात को व्यर्थ काटना, सहन न करना अथवा स्वयं ही पीड़ित हो जाना आदि विकार ऐसे विकार हैं, जो चित्त से सम्बन्ध रखते हैं और चित्त से निकलकर तुरन्त मन के स्तर पर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पहुँच जाते हैं। अत: श्रेष्ठ कर्म करते हुए भी विकारमुक्त होने के लिए चित्त पर ध्यान देना आवश्यक है और चित्त पर ध्यान देना तभी सम्भव है, जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर प्राप्त हुए ज्ञान को आचरण में उतारने लगे।

१३. भरत–

भरत शब्द भर और त (तनोति इति) एकाक्षर के योग से बना है। भर का अर्थ है– भार या संग्रह और त अर्थात् तनोति का अर्थ है– फैलाव या प्रसार। अतः सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूपी आत्म-गुणों के भार या संग्रह का प्रसार करना भरत कहलाता है। भरद्वाज मुनि द्वारा भरत के आतिथ्य-सत्कार की इच्छा के रूप में यह संकेत किया गया है कि स्व-स्वरूप की पहचान में स्थित मनुष्य का अपना ही आचरण-परक मन यह चाहता है कि जीवन में सुख, शान्ति आदि आत्म-गुणों का सदा प्रसार होता रहे।

१४. भरत के आतिथ्य-सत्कार हेतु भरद्वाज मुनि द्वारा विश्वकर्मा, त्वष्टा, इन्द्र, यम, कुबेर तथा सोम आदि विभिन्न देवताओं का आवाहन–

विभिन्न देवताओं के आवाहन का अर्थ है– उन विभिन्न शक्तियों को तुरन्त प्रयोग में लाना, जो सामने उपस्थित हुई अप्रिय परिस्थिति को तुरन्त प्रिय बनाने में समर्थ होती हैं। ये शक्तियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। उदाहरण के लिए– सहन करने की शक्ति, स्वीकार करने की शक्ति, किसी भी बात को लम्बा न खींचकर तुरन्त छोड़ देने की शक्ति, अपने भीतर समा लेने की शक्ति, विस्तार से संकोच में आने की शक्ति, सहयोग करने की शक्ति, संयम की शक्ति, सामना करने की शक्ति, क्षमा की शक्ति, निश्चय करने की शक्ति तथा विवेक शक्ति आदि। इन सभी शक्तियों का आधार हैं– सत्यसंकल्पता, समझ, शुद्धता, संयम, सकारात्मकता तथा शम आदि वे गुण जिन्हें कथा में क्रमशः विश्वकर्मा, त्वष्टा, इन्द्र, यम, कुबेर तथा सोम आदि कहकर इंगित किया गया है। आत्म-स्वरूप में स्थित मनुष्य का अपना ही आचरण-परक मन अर्थात् भरद्वाज जब यह चाहता है कि जीवन में सुख, शान्ति, प्रेम, आनन्द का सदा प्रसार होता रहे, तब वह मन अपनी उपर्युक्त वर्णित शक्तियों को प्रयोग में लाकर सुख और शान्ति को बनाए रखता है, जिसे कथा में ससैन्य भरत के आतिथ्य-सत्कार के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रत्येक मनुष्य की सोच, व्यवहार और संस्कार अलग-अलग होते हैं और सम्बन्ध-सम्पर्क में रहते हुए यह कदापि सम्भव नहीं होता कि दूसरे मनुष्य हमारे

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अनुसार ही सोचें और व्यवहार करें। यह भी सम्भव नहीं है कि हमारे दृष्टिकोण से जो सही होता है, वह दूसरे के दृष्टिकोण से भी सही हो। इसलिए आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य का अपना ही आचरण-परक मन परिस्थिति के अनुसार अपनी उपर्युक्त वर्णित विभिन्न शक्तियों का उपयोग करते हुए जीवन में सुख, शान्ति का प्रसार कर लेता है।

१५. भरद्वाज मुनि द्वारा तप के प्रभाव से राम के वनगमन की प्रत्येक घटना को जानना–

आत्म-स्वरूप में स्थित मनुष्य जब अपने संस्कारों (चित्त) पर ध्यान देता है और वहाँ विद्यमान विकारों के विनाश हेतु प्रयत्नशील होता है, तब जहाँ एक ओर ज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी शक्तियाँ उसके कार्य में सहायक-स्वरूप होती हैं, वहीं दूसरी ओर अज्ञान से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी शक्तियाँ बाधक-स्वरूप खड़ी हो जाती हैं। आत्म-ज्ञानी मनुष्य सहायक शक्तियों को साथ लेकर बाधक शक्तियों का विनाश करता है और शनैः-शनैः मन की गहराई (चित्त) में जड़ें जमाकर बैठे हुए काम, क्रोध, अहंकारादि विकारों के विनाश रूप अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। चूँकि विकार-विनाश की यह सम्पूर्ण यात्रा आन्तरिक होती है, इसलिए अपना ही आचरण-परक मन (भरद्वाज) इस सम्पूर्ण यात्रा को भलीभाँति जानने में समर्थ होता है। इस जानने को ही कथा में यह कहकर चित्रित किया गया है कि भरद्वाज मुनि राम के वनगमन की प्रत्येक घटना को जानते हैं।

१६. भरद्वाज मुनि का राम को वर देना, वर के रूप में राम का यह माँगना कि अयोध्या के मार्ग के सभी फलहीन वृक्ष असमय में ही मधुर फलों से युक्त हो जाएँ। वर के प्रभाव से फलरहित वृक्षों का मधुर फलों से युक्त हो जाना, पुष्परहित वृक्षों का पुष्पयुक्त हो जाना और सूखे वृक्षों का हरा-भरा हो जाना–

अयोध्या (अ-योध्या) का अर्थ है– युद्ध रहित स्थिति अर्थात् ऐसा मन जिसमें कोई द्वन्द्व (युद्ध) न हो, जो स्थिर एवं शान्त हो।

शरीर रूपी पृथ्वी पर खड़े हुए रोम ही वृक्ष हैं, जो रोमांच की स्थिति को इंगित करते हैं। यह रोमांच दो प्रकार का होता है।

एक है– भोग के फलस्वरूप प्राप्त हुआ निरर्थक रोमांच जिसे फलहीन वृक्ष के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रूप में चित्रित किया गया है।

दूसरा है– योग के फलस्वरूप प्राप्त हुआ सार्थक रोमांच जिसे कथा में फलों और पुष्पों से युक्त हुए हरे-भरे वृक्षों के रूप में दर्शाया गया है।

योग (अर्थात् ज्ञान और कर्म के समन्वय) के फलस्वरूप प्राप्त हुए इस सार्थक रोमांच का अर्थ है– कठिन एवं विपरीत परिस्थितियों में भी ज्ञान को आचरित करके मनुष्य को प्राप्त हुआ शान्ति, स्थिरता और प्रसन्नता रूप रोमांच। उदाहरण के लिए– प्रियजन की हानि, धन की हानि अथवा सम्मान आदि की हानि ऐसी विपरीत परिस्थितियाँ हैं, जो मनुष्य को अस्थिर, अशान्त बना देती हैं परन्तु मनुष्य जब इस ज्ञान को आचरण में उतारता है कि जो भी घटित हो रहा है– वह सही (उसी के किन्हीं पूर्व कर्मों का परिणाम), शुभ एवं कल्याणकारी है– तब उन विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य स्थिर एवं शान्त रहकर प्रसन्न बना रहता है। इस स्थिर, शान्त एवं प्रसन्न स्थिति को ही कथा में अयोध्या के मार्ग में असमय में ही वृक्षों पर आए हुए मीठे फलों तथा पुष्पों के रूप में इंगित किया गया है।

कथा का तात्पर्य

जीवन जीने के दो तरीके हैं। पहला है– स्वयं को शरीर मानकर जीना अर्थात् मैं शरीर हूँ ऐसा मानकर शरीर से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं और अपने पदों आदि को ही अपनी पहचान बना लेना और उसी पहचान के आधार पर जीवन में सारा व्यवहार करना। उदाहरण के लिए– माँ होना अथवा पिता होना मनुष्य की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ मात्र हैं। परन्तु भूमिकाओं को भूमिका न समझकर यही मैं हूँ– ऐसा समझ लेना मनुष्य का गहरा अज्ञान है, जो पहले तो सन्तान के प्रति आसक्ति और अधिकार भाव को उत्पन्न करता है और फिर उस भूमिका के प्रति सन्तान द्वारा कही हुई छोटी सी बात भी मनुष्य को पीड़ा पहुँचाने लगती है।

जीवन जीने का दूसरा तरीका है– स्वयं को आत्मा और शरीर को एक उपकरण की तरह मानना। इस तरीके में शरीर एक रथ की भाँति और मनुष्य स्वयं उस रथ को चलाने वाला रथी बन जाता है। अथवा शरीर एक कम्प्यूटर की भाँति और मनुष्य स्वयं उस कम्प्यूटर को चलाने वाले आपरेटर की भाँति हो जाता है। अथवा यह भी कह सकते हैं कि शरीर एक वीणा या बांसुरी की भाँति और मनुष्य स्वयं उस वीणा या बांसुरी को बजाने वाले म्यूजिशियन की भाँति हो जाता है। अब मनुष्य अपने मन या विचारों को (सूक्ष्म शरीर को) तथा इन्द्रियादि को (स्थूल शरीर को) जिस दिशा में चाहे, उस दिशा में मोड़ लेता है अथवा जैसा चाहे वैसा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परिवर्तित कर लेता है। अब वह अपनी भूमिकाओं का तथा पद आदि का सम्यक् रीति से निर्वाह करता है और उन भूमिकाओं तथा पद आदि के प्रति कही हुई किसी की बात से पीड़ित या दु:खी नहीं होता।

शरीर के ज्ञान में रहते हुए जहाँ मनुष्य के जीने का ढंग स्वचालित (automated mode) होता है, वहीं आत्मा के ज्ञान में रहने पर वह रचनात्मक ढंग (creative mode) से जीने लगता है और यही रचनात्मक ढंग उसके मन को आचरण-परक बना देता है अर्थात् शरीर के ज्ञान में रहते हुए जहाँ मनुष्य ज्ञान की बातों को सुनता, पढ़ता तथा दूसरों को सुनाता भी है, परन्तु स्वयं के आचरण में नहीं उतारता, वहीं आत्मा के ज्ञान अर्थात् स्वयं की पहचान में रहने वाला मनुष्य ज्ञान की एक-एक बात को अब सबसे पहले स्वयं के आचरण में ही उतारता है। ज्ञान को आचरण में उतारने वाले उस आचरण-परक मन को ही रामकथा में भरद्वाज मुनि के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

मुनि शब्द मन का वाचक है और भरद्वाज शब्द का अर्थ है– क्रियाशक्ति का भरण करने वाला अर्थात् जो मन ज्ञान को कोरे ज्ञान तक सीमित नहीं रखता अपितु उस ज्ञान में क्रियाशक्ति का समावेश (भरण) करके उसे आचरण-परक बना देता है– वही भरद्वाज मुनि है। चूँकि ज्ञान को आचरण में उतारने वाला यह आचरण-परक मन केवल आत्म-ज्ञान (स्वयं को शरीर न मानते हुए आत्मा मानकर जीना) की अवस्था में ही प्रकट होता है, इसलिए कथा में इसे भरद्वाज मुनि (आचरण-परक मन) और राम (आत्म-ज्ञान) के मिलन के रूप में दर्शाया गया है।

इस आचरण-परक मन के स्वरूप का चित्रण रामकथा में तीन रूपों में किया गया है –

१. यही मन मनुष्य को चित्त पर चिन्तन के लिए प्रेरित करता है।

२. यही मन जीवन में सुख, शान्ति आदि का प्रसार चाहता है और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार की शक्तियों का उपयोग करता है।

३. यही मन जीवन में उपस्थित विपरीत स्थिति में भी मनुष्य को स्थिर, शान्त तथा प्रसन्न बनाए रखता है।

इन तीन स्वरूपों का चित्रण रामकथा में तीन भिन्न-भिन्न कथाओं के अन्तर्गत किया गया है।

१. कथा में सबसे पहले यह इंगित किया गया है कि आत्म-ज्ञानी मनुष्य का यह आचरण-परक मन (भरद्वाज मुनि) ही उसे चित्त पर चिन्तन करने के लिए

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रेरित करता है, जिसे कथा में भरद्वाज मुनि द्वारा राम को चित्रकूट पर रहने के निर्देश के रूप में चित्रित किया गया है।

अपना ही गहरा मन चित्त कहलाता है, जिसमें जन्मों-जन्मों की यात्रा में संचित किए गए ढेरों संस्कार विद्यमान रहते हैं। यह संस्कार यद्यपि गुण रूप (अच्छे) तथा विकार रूप (बुरे) दोनों ही प्रकार के होते हैं, परन्तु विकार रूप संस्कार मनुष्य की उत्थान यात्रा में विघ्नस्वरूप होकर उसे बहुत हानि पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए, चित्त में विद्यमान काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि के संस्कार ही चेतन मन के तल पर प्रकट होकर चेतन मन को दूषित करते हैं और चेतन मन की शुद्धता में अर्थात् अच्छी सोच में निरन्तर रुकावट ड़ालते हैं। इसलिए इस चित्त को समझना और उस पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक होता है।

कथा संकेत करती है कि श्रेष्ठ कर्म करता हुआ भी मनुष्य जिन काम, क्रोधादि विकारों के अत्यन्त वशीभूत हो जाता है, वे विकार चित्त से निकलकर ही बाहर (चेतन मन के तल पर) आते हैं परन्तु मनुष्य का मन उन श्रेष्ठ कर्मों में ही ऐसा अटका रहता है कि उसका ध्यान उन विकारों की तरफ कभी नहीं जा पाता। केवल स्वस्वरूप (आत्म-स्वरूप) की पहचान में स्थित हुए मनुष्य का अपना ही आचरण-परक मन उन चित्तगत विकारों पर ध्यान देने के लिए प्रेरकस्वरूप बनता है।

२. सम्बन्ध-सम्पर्क में रहते हुए यह कभी भी सम्भव नहीं है कि दूसरे लोग हमारे साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा हम चाहते हैं अथवा जैसा हम उचित समझते हैं। प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव, संस्कार भिन्न होता है और इसी भिन्नता के कारण प्रत्येक मनुष्य का व्यवहार भी भिन्न ही होता है। अब मनुष्य के पास दो ही रास्ते होते हैं। एक है– जो जैसा है, उसे उसी रूप में स्वीकार करके सुखी रहना और दूसरा है– जो जैसा है, उसे उसी रूप में स्वीकार न करके दुःखी रहना। आत्म-ज्ञानी मनुष्य का आचरण-परक मन सदा यह चाहता है कि जीवन में सुख और शान्ति बनी रहे। अतः वह अपनी विभिन्न शक्तियों यथा– सत्यसंकल्पता (विश्वकर्मा), समझ (त्वष्टा), शुद्धता (इन्द्र), संयम (यम), सकारात्मता (कुबेर) तथा शम (सोम) आदि का सहारा लेकर सम्बन्ध-सम्पर्क में उपस्थित हुई प्रत्येक स्थिति में सुख और शान्ति को स्थापित कर लेता है। इसी तथ्य को कथा में यह कहकर संकेतित किया गया है कि भरद्वाज मुनि ने विश्वकर्मा, त्वष्टा, इन्द्र, यम, कुबेर तथा सोम आदि विभिन्न देवताओं का आवाहन करके सेना सहित भरत का आतिथ्य सत्कार किया।

•

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. प्रत्येक मनुष्य इस ज्ञान से परिचित होता है कि जीवन में घटित हो रही प्रत्येक घटना शुभ, मंगलमय और कल्याणकारी है। परन्तु यह ज्ञान केवल सुनने, पढ़ने अथवा कहने तक ही सीमित रहता है। मनुष्य के जीवन में जैसे ही कोई विकट परिस्थिति उपस्थित होती है– वह अस्थिर, अशान्त, दु:खी हो जाता है। कथा संकेत करती है कि स्वस्वरूप की पहचान (आत्म-ज्ञान) में स्थित हुए मनुष्य का आचरण-परक मन इस ज्ञान को केवल ज्ञान तक सीमित न रखकर आचरण में उतार देता है। फलस्वरूप मनुष्य कठिन से कठिन परिस्थिति में भी स्थिर और शान्त बना रहता है। इसी तथ्य को कथा में यह कहकर संकेतित किया गया है कि भरद्वाज मुनि के प्रभाव से अयोध्या के मार्ग के फलहीन वृक्षों में असमय में ही फल आ गए, पुष्पहीन वृक्ष पुष्पों से युक्त हो गए और जो वृक्ष सूख गए थे, वह हरे-भरे हो गए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The Power of Mind which implements Knowledge in Behaviour is described through the story of Bharadvāja Muni

In Vālmīki Rāmāyaṇa, there is a story of Bharadvāja Muni described in three places (Ayodhyākāṇḍa, Chapters 54, 90, 91 and Yuddhakāṇḍa, Chapter 124).

In first place, it is said that Rāma met Bharadvāja Muni, when he decided to go and live in forest. Bharadvāja Muni welcomed Rāma and told him that he had been waiting for him for a long time. Bharadvāja Muni requested Rāma to stay in his Āśrama but Rāma expressed his wish to stay in an isolated place. Thereupon Bharadvāja Muni suggested Rāma to go and stay on Citrakūṭa mountain after crossing river Yamunā.

In second place, it is said that Bharata met Bharadvāja Muni on his way to forest to bring back Rāma to Ayodhyā. Bharadvāja Muni wished to give hospitality to Bharata and his troop and invited Ḍevas to fulfill this purpose. Different Devas such as Viśvakarmā, Tvaṣṭā, Indra, Yama, Kubera and Soma etc. came and fulfilled the purpose.

In third place, it is said that Rāma again met Bharadvāja Muni when he was returning back to Ayodhyā. Bharadvāja Muni offered Rāma to accept a boon from him and therefore Rāma expressed his wish to transform fruitless, flowerless and dries trees into fruitful, flowerful and green trees on way to Ayodhyā though untimely. Accordingly, all the fruitless trees became fruitful, flowerless trees started flowering and dried trees became green.

The story is symbolic and describes the Power of Mind which implements Knowledge into Action or Behaviour. It says that living in body-consciousness, a mind may possess knowledge but never implements it into action or behaviour. On the other hand, the same mind of a Soul-Conscious Person always implements every bit of knowledge into action or behaviour. Such Mind is symbolized as Bharadvāja Muni. 'Bharadvāja' word itself means to conjoin Action with Knowledge and word

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Muni symbolizes Mind.

This Mind contributes to the divinization of personality in three ways–

Firstly, this mind (which implements knowledge into action or behaviour) instructs a person to work on his saṁskāras (vices) symbolized as sending of Rāma to Citrakūṭa by Bharadvāja Muni. It also suggests that a person performing good deeds may get affected by his saṁskāras, therefore without being entangled only in good deeds, he should pay his attention to his saṁskāras also, deeply rooted in sub-conscious mind. This is symbolized as crossing river Yamunā to go to Citrakūṭa.

Secondly, this mind always wishes to establish Peace and Happiness in life symbolized as the wish of Bharadvāja Muni to give hospitality to Bharata and his troop. It invokes and uses all its powers of determination, acceptance, tolerance, purity, positivity, restraint and calmness etc. to fulfill this purpose symbolized as inviting of different Devas by Bharadvāja Muni.

Thirdly, this mind keeps a person stable, happy and quiet in critical situations symbolized as bearing fruits, flowers and greenery by fruitless, flowerless and dried trees untimely. Such a mind also applies this knowledge that every incidence, happening in life is Accurate, Appropriate and Beneficial. This is symbolized as offering a boon to Rāma by Bharadvāja Muni.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१४. अत्रि-अनसूया कथा

(आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के एकीकृत मन की एकीकरण शक्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अत्रि-अनसूया कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के एकीकृत मन की एकीकरण शक्ति का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अयोध्याकाण्ड में वर्णित (सर्ग ११७, ११८, ११९) अत्रि-अनसूया कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

चित्रकूट को छोड़कर राम जब लक्ष्मण और सीता के साथ अत्रि मुनि के आश्रम में पहुँचे, तब अत्रि मुनि ने उनका सत्कार किया और अपनी पत्नी अनसूया के महत्त्व का वर्णन करते हुए यह आदेश दिया कि अनसूया स्नेहपूर्वक सीता को हृदय से लगाएँ तथा सीता भी आदरपूर्वक अनसूया के पास चली जाएँ।

अनसूया वृद्धावस्था के कारण शिथिल हो गई थी और उनके समस्त अंग निरन्तर काँप रहे थे। सीता ने महाभागा अनसूया को प्रणाम किया और उनका कुशल समाचार पूछा। अनसूया ने पति का अनुसरण करने वाली सीता के प्रति हर्ष का अनुभव करते हुए यह उपदेश किया कि प्रत्येक स्त्री को पति का ही अनुसरण करना चाहिए। सीता ने अनसूया के वचनों का समादर किया और अनसूया ने सीता से एक वर माँगने के लिए कहा। सीता ने जब परस्पर मिलन को ही सब कुछ मानकर कुछ भी लेना नहीं चाहा, तब सीता की निर्लोभता से प्रसन्न हुई अनसूया ने उन्हें प्रेमोपहार के रूप में दिव्य वस्त्र और आभूषणादि प्रदान किए। अनसूया के पूछने पर सीता ने अपना जन्म से लेकर स्वयंवर तक का सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित किया, जिसे सुनकर अनसूया प्रसन्न हुई और सीता को दिव्य वस्त्राभूषण धारण करने के लिए प्रेरित किया। सीता दिव्य वस्त्राभूषणों को धारण करके जब राम के सम्मुख गई, तब राम अनसूया द्वारा किए गए सीता के सत्कार से बहुत प्रसन्न हुए और रात्रि विश्राम करके प्रात:काल अत्रि मुनि से विदा लेकर दण्डकारण्य में चले गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा को समझने के लिए प्रतीकों को समझना उपयोगी होगा।

१. अत्रि मुनि–

अत्रि शब्द अ तथा त्रि नाम दो वर्णों के योग से बना है। अ का अर्थ है– नहीं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तथा त्रि का अर्थ है– इच्छा(भाव), ज्ञान और क्रिया रूपी तीन शक्तियाँ। जब तक मनुष्य की चेतना मनोमय कोश तक सीमित रहती है, तब तक ये तीन शक्तियाँ पृथक-पृथक् रूप में विद्यमान रहती हैं परन्तु जब चेतना मनोमय कोश से ऊपर उठकर विज्ञानमय कोश में पहुँचती है, तब यही तीनों शक्तियाँ परस्पर मिलकर एकाकारता को प्राप्त हो जाती हैं। अत: मन की वह उच्च स्थिति अत्रि है, जहाँ तीनों शक्तियाँ पृथक्-पृथक् विद्यमान नहीं रहती। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि इच्छा(भाव), ज्ञान तथा क्रिया रूप तीन शक्तियों का एकीकरण ही अत्रि है क्योंकि मन की इस एकाकार स्थिति में मनुष्य जैसा सोचता है, समझता है– वैसा ही करता भी है।

२. अनसूया–

अनसूया शब्द अन् और असूया नामक दो शब्दों के मेल से बना है। अन् का अर्थ है– नहीं तथा असूया का अर्थ है– ईर्ष्या। अत: अनसूया शब्द का एक सामान्य सा अर्थ बनता है– एक ऐसी शक्ति जो ईर्ष्या में न हो। परन्तु अत्रि मुनि के संदर्भ में असूया शब्द असूर्या शब्द का एक छिपा हुआ स्वरूप प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है– रात्रि अर्थात् अज्ञान। अन् शब्द का योग हो जाने पर अनसूर्या (अनसूया) का अर्थ होता है– एक ऐसी शक्ति जो अज्ञान में न हो अर्थात् जो अज्ञान की स्थिति में विद्यमान न रहती हो। इच्छा (भाव), ज्ञान तथा क्रिया रूप तीन शक्तियों का एकीकरण तब तक सम्भव नहीं हो पाता जब तक मनुष्य अज्ञान में विद्यमान रहता है। अज्ञान में रहते हुए मनुष्य जैसा सोचता है अथवा समझता है, वैसा करता नहीं है। सरल रूप में ऐसा भी कह सकते हैं कि उसके मन, वचन तथा कर्म में कभी एकरूपता नहीं बन पाती। इसके विपरीत, ज्ञान में स्थित होने पर स्थिति एकदम विपरीत हो जाती है। अब मनुष्य जैसा सोचता है अथवा समझता है, वैसा करता भी है। अत: अत्रि- अनसूया के रूप में यह संकेत किया गया है कि एकाकार (एकीकृत) मन के साथ सदा विद्यमान रहने वाली एकीकरण की यह शक्ति केवल ज्ञान से सम्बन्ध रखती है, अज्ञान से नहीं। चूँकि एकाकार (एकीकृत) मन के साथ सदा विद्यमान रहने वाली यह ज्ञानशक्ति बहुत पुरानी है, इसलिए कथा में अनसूया को वृद्धा के रूप में चित्रित किया गया है।

३. अनसूया द्वारा स्त्री को पति के अनुसरण का उपदेश–

पौराणिक साहित्य में प्रकृति (मन, बुद्धि, इन्द्रियादि) को स्त्री के रूप में तथा पुरुष (आत्मा) को पति के रूप में चित्रित किया गया है। प्रकृति जड़ है, पुरुष

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चेतन। पुरुष के निर्देश को ग्रहण करके ही जड़ प्रकृति क्रियाशील होती है और यथोचित दिशा में प्रवृत्त रहती है। उदाहरण के लिए– पुरुष (आत्मा) के निर्देशन में रहकर मन श्रेष्ठ विचारों की रचना करता है, आँख नामक ज्ञानेन्द्रिय श्रेष्ठ के दर्शन में समर्थ होती है अथवा हाथ नामक कर्मेन्द्रिय ग्रहण आदि कार्यों को यथायोग्य रूप में सम्पन्न करती है। अत: अनसूया द्वारा स्त्री को पति के अनुसरण के उपदेश के रूप में यह संकेत किया गया है कि इच्छा(भाव), ज्ञान और क्रिया का एकीकरण (सोचना, समझना तथा तदनुसार जीना) तब तक सम्भव नहीं है जब तक प्रकृति (मन, बुद्धि, इन्द्रियादि) पुरुष (आत्मा) के निर्देश का अनुसरण न करे। पुरुष के निर्देश का अनुसरण न करने वाली अर्थात् पुरुष (आत्मा) के निर्देश को ग्रहण न करने वाली बहिर्मुखी प्रकृति उच्छृंखल होती है और तब इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया का एकीकरण सम्भव नहीं होता।

४. अनसूया द्वारा सीता को दिव्य वस्त्र एवं आभूषणादि प्रदान करना–

वस्त्र शब्द आवरण को तथा आभूषण शब्द गुणों को इंगित करता है। सीता सर्वत्र पवित्र– प्रकृति अर्थात् पवित्र, शुद्ध सोच की प्रतीक है। प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य जब अपनी शुद्ध-सोच को सोच तक सीमित न रखकर आचरण में उतार लेता है, तब एकीकरण की शक्ति (अनसूया) ही उस शुद्धता को एक ऐसा सुदृढ़ आवरण प्रदान कर देती है कि विपरीत परिस्थिति में भी वह शुद्धता मलिन नहीं होती। उदाहरण के लिए– जब मनुष्य यह सोचता है कि उसे सत्य बोलना है और सोच व समझ के आधार पर वह सत्य ही बोलने लगता है, तब एकीकरण की शक्ति उसकी सत्यता को ऐसा सुदृढ़ आवरण प्रदान कर देती है कि मनुष्य विषम परिस्थिति में भी सत्य से विचलित नहीं होता। कथा में संकेत किया गया है कि व्यवहार में उतरकर अत्यन्त सुदृढ़ हुई यह शुद्धता (सीता) विश्वसनीयता, सम्मान और आकर्षण जैसे श्रेष्ठ गुणों से भी विभूषित हो जाती है। इसी तथ्य को कथा में अनसूया द्वारा सीता को दिव्य वस्त्र एवं आभूषणादि प्रदान करने के रूप में चित्रित किया गया है।

५. कथा में कहा गया है कि राम चित्रकूट को छोड़कर अत्रि मुनि के आश्रम पर आए और फिर अत्रि से भी विदा लेकर दण्डकारण्य में चले गए–

चित्रकूट का अर्थ है– कूट चित्त अर्थात् अवचेतन मन और दण्डकारण्य (दण्ड-क-अरण्य) का अर्थ है– किसी भी दूसरे को दिखाई न देने वाला वह मानसिक कर्म जो कर्मफल का प्रमुख हेतु होता है। प्रस्तुत कथन से दो संकेत

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किए गए हैं। पहला संकेत यह है कि स्व-स्वरूप की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) ही अपने उस कूट चित्त पर ध्यान देता है जिसमें जन्मों-जन्मों की यात्रा में संचित किए हुए ढेरों संस्कार विद्यमान हैं। दूसरा संकेत यह है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य का मन ही इच्छा (भाव), ज्ञान और क्रिया की एकाकारता में स्थित होता है, इसलिए वही अपने उस मानसिक कर्म (मानसिक सोच) पर ध्यान देता है, जो नूतन संस्कारों के निर्माण का (कर्मफल के निर्माण का) प्रमुख कारक तत्त्व है। तात्पर्य यह है कि आत्म-ज्ञानी मनुष्य के ध्यान का तीर दोनों ओर होता है। उस चित्त की ओर, जहाँ संस्कार संग्रहीत हो चुके हैं तथा उस मानसिक कर्म की ओर जो अब नूतन संस्कारों के निर्माण का प्रधान हेतु है।

कथा का अभिप्राय

मनुष्य के मन की दो शक्तियाँ हैं। एक है– संश्लेषण और दूसरी है– विश्लेषण। संश्लेषण शक्ति जहाँ बिखरे हुए को, अलग-अलग किए हुए को जोड़ने का काम करती है, वहीं विश्लेषण शक्ति जुड़े हुए को, बंधे हुए को तोड़ देती है, पृथक्-पृथक् कर देती है। अत: एक शक्ति जोड़ती है, तो दूसरी तोड़ती है। प्रस्तुत कथा में वर्णित अत्रि मुनि नामक पात्र संश्लेषण शक्ति से जुड़े हुए एकीकृत मन का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है क्योंकि अत्रि (अ-त्रि) मुनि का अर्थ ही है– ऐसा उच्च मन जहाँ तीन तत्त्व पृथक्-पृथक् नहीं रहे हैं अपितु परस्पर मिलकर एकीभूत अवस्था को प्राप्त हो गए हैं। ये तीन तत्त्व इच्छा (भाव), ज्ञान और क्रिया को इंगित करते प्रतीत होते हैं क्योंकि इन्हीं तीनों तत्त्वों की पृथक्-पृथक् रूप में विद्यमानता जहाँ मनुष्य के मन को निम्नस्तरीय बना देती है, वहीं इन्हीं तीनों तत्त्वों की एकीकृत अवस्था मनुष्य के मन को ऊँचा उठा देती है। उदाहरण के लिए– केवल इच्छा, केवल ज्ञान अथवा केवल क्रिया में स्थित हुआ मनुष्य कभी भी किसी बड़े लक्ष्य को नहीं पा सकता परन्तु इन्हीं तीनों तत्त्वों- इच्छा(भाव), ज्ञान तथा क्रिया के एकत्व में स्थित हुआ मनुष्य बड़े से बड़े लक्ष्य को भी निश्चित रूप से प्राप्त कर लेता है।

कथा संकेत करती है कि स्व-स्वरूप की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य इस एकीकृत मन से सदा संयुक्त होता है, जिसे कथा में राम और अत्रि मुनि के मिलन के रूप में दर्शाया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इस एकीकृत मन के साथ संश्लेषण या एकीकरण की जो शक्ति सदा विद्यमान रहती है, उसे ही कथा में अत्रि-पत्नी अनसूया के रूप में चित्रित किया गया है। चूँकि यह शक्ति ज्ञान से सम्बन्ध रखती है, अज्ञान से नहीं, इसलिए इसे अनसूया नाम देना सर्वथा उचित ही है। अनसूया शब्द अनसूर्या (अन-असूर्या) शब्द का छिपा हुआ स्वरूप है। असूर्या शब्द रात्रि अर्थात् अज्ञान का वाचक है और अन् का योग होने पर इसका अर्थ होता है– अज्ञान में नहीं अर्थात् एक ऐसी शक्ति जो अज्ञान अवस्था में विद्यमान नहीं होती।

संश्लेषण या एकीकरण शक्ति की इस ज्ञानस्वरूपता को संकेतित करने के लिए ही कथा में कहा गया है कि अनसूया सदा उन स्त्रियों का सम्मान करती है, जो अपने पति का ही अनुसरण करें। पौराणिक साहित्य में स्त्री और पुरुष शब्द कभी भी स्त्रीलिंग या पुल्लिंग के वाचक नहीं रहे। यहाँ स्त्री शब्द प्रकृति अर्थात् मन, बुद्धि, इन्द्रियादि को तथा पुरुष शब्द आत्मा को इंगित करता है। प्रकृति (मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि) जड़ है और सेवकस्वरूप है। इसके विपरीत, आत्मा (पुरुष) चेतन है और स्वामी स्वरूप है। आत्मा (पुरुष) के निर्देशन में रहकर ही प्रकृति (मन, बुद्धि, इन्द्रियादि) यथोचित रूप से सभी कार्यों को सम्पन्न करती है और यथोचित दिशा में गतिमान होती है। आत्म-निर्देशन के अभाव में उच्छृंखल और स्वच्छन्द हुई प्रकृति दिशाहीन हो जाती है। अतः उपर्युक्त कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि मनुष्य की प्रकृति (मन, बुद्धि, इन्द्रिय आदि) सदैव मनुष्य (आत्मा) के निर्देशन में रहकर काम करे। इच्छा(भाव), ज्ञान और क्रिया में एकत्व या एकीकरण इसके बिना सम्भव ही नहीं है।

एकीकृत मन (अत्रि) के साथ सदा विद्यमान रहने वाली यह ज्ञान युक्त एकीकरण की शक्ति (अनसूया) मनुष्य को किस प्रकार से लाभान्वित करती है– यह बताने के लिए ही कथा में कहा गया है कि अनसूया ने सीता को प्रेमोपहार के रूप में दिव्य वस्त्र एवं आभूषणादि प्रदान किए। प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) जब अपनी शुद्ध-सोच (सीता) को सोच तक सीमित न रखकर व्यवहार के स्तर पर उतार देता है, तब एकीकरण की शक्ति (अनसूया) ही जीवन-व्यवहार में उतरी हुई उस शुद्धता को एक सुदृढ़ आवरण (दिव्य वस्त्र) प्रदान कर देती है और सुदृढ़ बनी हुई शुद्धता फिर विश्वसनीयता, सम्मान और आकर्षण जैसे श्रेष्ठ गुणों (आभूषणादि) को धारण कर लेती है। अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि जीवन-व्यवहार या आचरण ही वह कसौटी है जिस पर उतरकर शुद्धता न केवल सुदृढ़ हो जाती है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपितु कंचन स्वरूप होकर आकर्षित भी करती है।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि जहाँ आत्म-ज्ञान (राम) है, वहाँ एकीकृत मन (अत्रि) अवश्य विद्यमान है। जहाँ एकीकृत मन विद्यमान है, वहाँ एकीकरण की शक्ति (अनसूया) विद्यमान है और जहाँ एकीकरण की शक्ति विद्यमान है, वहाँ व्यवहार के स्तर पर उतरी हुई शुद्धता (सीता) अत्यन्त सुदृढ़, विश्वसनीय तथा आकर्षक—सम्मोहक अवश्य होती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Integration Power of an Integral Mind as described in the story of Atri and Anasūyā

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Ayodhyākāṇḍa, Chapters 117-119), there is a story of Atri Muni and his wife Anasūyā. It is said that Rāma with Lakṣmaṇa and Sītā left Citrakūṭa and reached Atri Muni's Āśrama. Atri Muni welcomed Rāma and highlighted the qualities of Anasūyā. Atri asked Anasūyā to embrace Sītā and asked Rāma also to send Sītā to pay her respect to Anasūyā. Accordingly, Anasūyā and Sītā met together and adored each other. Anasūyā became very happy when she came to know that Sītā is accompanying her husband in the forest. Anasūyā expressed her opinion that every woman should follow her husband even in difficult and troublesome situations.

Anasūyā wished to offer a boon to Sītā but Sītā did not feel the need of the boon as she felt herself greatly honoured by her love. But at last, Anasūyā offered her divine clothes and ornaments etc. and requested her to wear them. Sītā wore the same and returned to Rāma.

The story is symbolic and describes Integration Power of an Integral Mind symbolized as Anasūyā, wife of Atri Muni.

An Integral Mind is a mind where thinking (or feeling) knowing and doing are not separate. They synthesize with each other and are transformed into one entity. Such an Integral Mind is a higher one and a person, perpetually conscious of his own Real Self always possesses it. This is symbolized as meeting of Rāma with Atri Muni in the story.

Describing the Integration Power of Integral Mind symbolized as Anasūyā, the story tells that this Power of Integration is always related to knowledge and not to ignorance. 'Anasūyā' word itself expresses this meaning. 'Un' means No and Asūyā (Asūryā) means Ignorance. Thus the Power which is never in ignorance is Anasūyā.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Its relation with knowledge has been shown by expressing the opinion of Anasūyā. She says that every woman should follow her husband in every situation. In fact, this statement is symbolic and describes Woman as Nature/Prakṛti (mind, intellect and senses etc.) and Husband as Soul/Puruṣa (the Master). It says that the Nature (Prakṛti) is an instrument and she should serve and follow the instructions of her master – The Soul. If this Nature (Prakṛti) does not follow the instructions of her master, she goes astray and becomes directionless. Therefore this Power of an Integral Mind always wishes that the Nature (Mind, Intellect and Senses etc.) should be diverted towards the Soul. Only then her mission of Integration can be performed successfully.

This Integration Power of an Integral Mind benefits a person in other way also. When a person uses his purity into his behaviour, his purity becomes very stronger and stronger and this strengthend purity commands respect and confidence from others. This is symbolized as offering divine clothes and ornaments to Sītā by Anasūyā, who is purity incarnate.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अरण्य काण्ड

१५. विराध-राक्षस कथा

(आत्म-ज्ञान द्वारा अपूर्णता (रिक्तता, खालीपन) की अनुभूति के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अरण्यकाण्ड

विराध राक्षस की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा अपूर्णता (रिक्तता, खालीपन) की अनुभूति के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड में (सर्ग २ से ४ तक) विराध राक्षस की कथा विस्तार से वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ जब दण्डक-वन में प्रवेश किया, तब उन्हें एक नरभक्षी राक्षस दिखाई दिया, जो देखने में भयंकर और पर्वत-शिखर के समान ऊँचा था। उस राक्षस ने तुरन्त दौड़कर सीता को पकड़ लिया और राम-लक्ष्मण से उनका परिचय पूछा। राम ने स्वयं को इक्ष्वाकुवंशी बतलाते हुए राक्षस से भी उसका परिचय पूछा। राक्षस ने कहा कि वह जव और शतह्रदा का पुत्र है तथा भूमंडल के समस्त राक्षस उसे विराध के नाम से पुकारते हैं। उसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा जी से यह वरदान प्राप्त किया है कि किसी भी शस्त्र से उसका वध नहीं हो सकता।

यह सब सुनकर राम ने विराध के चंगुल से सीता को छुड़ाने के लिए जब बारम्बार उसके ऊपर बाणों का प्रहार किया, तब अत्यन्त घायल होकर उसने सीता को तो छोड़ दिया परन्तु राम-लक्ष्मण को पकड़कर कन्धे पर बैठा लिया और वन के भीतर प्रवेश करने लगा। राम-लक्ष्मण ने तुरन्त तलवार से उसकी दोनों भुजाएँ काट ड़ाली और उसे पृथ्वी पर पटककर रगड़ दिया। परन्तु बाणों से घायल होने, तलवार से क्षत-विक्षत होने और पृथ्वी पर रगड़ने से भी वह राक्षस मरा नहीं। शस्त्रों से अवध्य होने के कारण जब राम-लक्ष्मण ने उसे गर्त (गड्ढे) में गाड़ देने का निश्चय किया, तब राम, लक्ष्मण एवं सीता को पहचानकर उसने कहा कि वह वास्तव में तुम्बुरु नामक गन्धर्व है। रम्भा नामक अप्सरा पर आसक्त होकर एक दिन जब वह कुबेर की सेवा में उपस्थित न हो सका, तब कुबेर ने उसे राक्षस हो जाने का शाप दे दिया। शाप से मुक्ति हेतु याचना करने पर कुबेर ने कहा कि जब दशरथ-नन्दन राम उसका वध करेंगे, तब वह अपने पहले स्वरूप को प्राप्त होकर स्वर्गलोक को चला जाएगा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विराध ने राम से विनती की कि शाप से मुक्ति हेतु वे उसका शरीर गर्त (गड्ढे) में गाड़ दें और शरभंग मुनि के पास चले जाएँ। तदनुसार लक्ष्मण की सहायता से एक बड़ा गड्ढा खोदकर राम ने विराध के शरीर को गड्ढे में गाड़ दिया और वहाँ से शरभंग मुनि के आश्रम की ओर चले गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा के एक-एक प्रतीक को समझकर ही कथा को समझना सम्भव है।

१. विराध–

विराध शब्द वि उपसर्ग के साथ राध् धातु के योग से बना है। राध का अर्थ है– पूर्ण। वि उपसर्ग का योग होने पर विराध का अर्थ हुआ– अपूर्ण। अपूर्णता (खालीपन, रिक्तता) एक नकारात्मक भाव है, इसलिए इसे कथा में राक्षस कहकर इंगित किया गया है।

२. तुम्बुरु गन्धर्व–

किसी भी भाव की अनुभूति को ही पौराणिक साहित्य में गन्धर्व कहकर संकेतित किया गया है। तुम्बुरु (तुम्ब- उरु) शब्द खिलना या विकास अर्थ वाली तुम्ब् धातु से निर्मित हुआ है और उरु का अर्थ है– विस्तार। अतः तुम्बुरु शब्द विकास के विस्तार अर्थात् पूर्णत्व को लक्षित करता है। चूँकि गन्धर्व शब्द भाव की अनुभूति का वाचक है, अतः तुम्बुरु गन्धर्व का अर्थ हुआ– पूर्णत्व या पूर्णता के भाव की अनुभूति। चूँकि कथा में विराध नामक राक्षस को तुम्बुरु गन्धर्व का ही शापित स्वरूप कहा गया है, अतः अपूर्णता (खालीपन, रिक्तता) के भाव की अनुभूति को ही यहाँ विराध नामक राक्षस कहा जा सकता है।

३. रम्भा अप्सरा–

किसी भी भाव की अभिव्यक्ति को ही पौराणिक साहित्य में अप्सरा नाम दिया गया है। अप्सरा शब्द अप् उपसर्ग के साथ सरण या बहना अर्थ वाली सृ धातु के योग से बना है। अतः अप्सरा का अर्थ है– ऊपर से नीचे की ओर सरण करने वाले अर्थात् बहने वाले किसी भी भाव की अभिव्यक्ति। उदाहरण के लिए– आनन्दमय कोष में विद्यमान आनन्द का भाव ही जब निम्नतर कोषों में सरण करता अर्थात् बहता है, तब वही आनन्द का भाव मनोमय कोष में आने पर मन का आनन्द और अन्नमय कोष में आने पर शरीर का आनन्द हो जाता है। पौराणिक साहित्य में कोषों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के आधार पर आनन्द भाव की इन विभिन्न अभिव्यक्तियों को भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। मनोमय और अन्नमय कोषों के स्तर पर अभिव्यक्त हुए मानसिक, अथवा दैहिक आनन्द के भाव को ही यहाँ रम्भा अप्सरा कहकर इंगित किया गया है।

४. कुबेर–

धनात्मकता तथा अन्तर्मुखी मनश्चेतना (अर्थात् अन्तर्मुखी होकर अपने ही विचारों को देखना) को ही पौराणिक साहित्य में कुबेर नाम दिया गया है।

५. राम–

अपने सही स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेना अर्थात् आत्म-ज्ञान अथवा आत्म-स्मृति को ही रामकथा में राम कहकर इंगित किया गया है।

६. सीता–

सीता मन-बुद्धि की पवित्रता अथवा पवित्र-सोच की वाचक है। अत: विराध राक्षस द्वारा सीता को पकड़ लेने का अर्थ है– अपूर्णता (खालीपन या रिक्तता) की अनुभूति में पवित्रता अथवा पवित्र-सोच का पकड़ा जाना। तात्पर्य यह है कि खालीपन की अनुभूति मनुष्य को पीड़ित करती है। अत: मनुष्य जब अपने भीतर खालीपन का अनुभव करता है, तब उस खालीपन की अनुभूति से मुक्त होने के लिए अनेक प्रकार की इच्छाओं, वासनाओं, कामनाओं, आशाओं, अपेक्षाओं को अपने भीतर धारण कर लेता है। उदाहरण के लिए– कभी तो वह भौतिक संसाधनों को खरीदकर अथवा भौतिकता के पीछे भाग-भागकर खालीपन की अनुभूति से मुक्त होना चाहता है, अथवा कभी खालीपन को भरने के लिए ही दूसरों से प्रेम, सम्मान, प्रशंसा और देखभाल की इच्छा करने लगता है।

७. लक्ष्मण–

विचारों अथवा संकल्पों की निर्माता एवं नियन्ता शक्ति को ही रामकथा में लक्ष्मण कहकर इंगित किया गया है।

८. जव और शतह्रदा–

जव शब्द का अर्थ है– त्वरा (तेजी) और शतह्रदा का अर्थ है– सहस्रों शाखाओं में विभाजित मन। त्वरा युक्त विभाजित मन ही खालीपन की अनुभूति को उत्पन्न करता है। इसीलिए कथा में विराध को जव और शतह्रदा का पुत्र कहा गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

९. दण्डकवन–

दण्डक (दण्ड-क-करोति इति) का अर्थ है– दण्ड का कारक मानसिक कर्म अर्थात् मन की सोच। वन उस स्थान को कहते हैं, जो नगर की भाँति एकदम दिखाई नहीं देता। मनुष्य का कर्म तीन प्रकार का होता है– मानसिक, वाचिक तथा कायिक। वाचिक (मुँह से बोलना) तथा कायिक (इन्द्रियों से करना) कर्म तो तुरन्त दिखाई देता है परन्तु मानसिक कर्म किसी को दिखाई नहीं देता। अतः मानसिक कर्म (मन की सोच) को ही रामकथा में दण्डक-वन कहा गया है। मानसिक कर्म के अनुसार ही मनुष्य के वाचिक और कायिक कर्म होते हैं। इसलिये विशेष रूप से मानसिक कर्म ही मनुष्य को मिलने वाले दण्ड का प्रमुख कारक होता है।

१०. ब्रह्मा जी का वरदान और विराध के विनाश में शस्त्रों की व्यर्थता–

ब्रह्मा जी का वरदान कहकर अवश्य भवितव्यता अर्थात् अवश्य होने की ओर संकेत किया जाता है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि अपूर्णता अथवा खालीपन की अनुभूति को विनष्ट करने के लिए मनुष्य जिन भौतिक अथवा मानसिक संसाधन रूप शस्त्रों का सहारा लेता है– उन शस्त्रों की सहायता से अपूर्णता अथवा खालीपन की अनुभूति को विनष्ट नहीं किया जा सकता। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानना अनिवार्य है। तभी मनुष्य अपने विचारों का निर्माता और नियन्ता होकर अपने भाव (feeling), वृत्ति (attitude), कर्म (action) तथा दृष्टि (perception) का भी निर्माता बनकर आत्म-निर्भरता पूर्वक खालीपन की अनुभूति से मुक्त हो सकता है।

११. लक्ष्मण द्वारा भूमि में गर्त्त का निर्माण–

गर्त (गड्ढे) के निर्माण का अर्थ है– भूमि को गहरा खोदना। अध्यात्म के स्तर पर मनुष्य की प्रकृति अर्थात् मन-बुद्धि को ही भूमि कहा जाता है और भूमि को खोदने का अर्थ है– अपनी ही प्रकृति अर्थात् मन-बुद्धि को ध्यानपूर्वक गहराई तक देखना। परन्तु अपनी ही प्रकृति (मन-बुद्धि) को ध्यानपूर्वक देखना तभी सम्भव है जब मनुष्य को यह समझ या जाग्रति आ जाए कि वह प्रकृति से अलग, प्रकृति का स्वामी, प्रकृति का नियन्ता चैतन्य-शक्ति आत्मा है। स्व स्वरूप– चैतन्य-स्वरूप में स्थित होकर ही मनुष्य यह समझ पाता है कि वही अपने प्रत्येक संकल्प का, विचार का निर्माता है, अतः जैसा चाहे, वैसा विचार रचकर जीवन का नव निर्माण कर सकता है। उसके अपने विचार या संकल्प (thoughts) ही भाव

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(feelings) का निर्माण करते हैं और भाव (feelings) से दृष्टिकोण या वृत्ति (attitude) निर्मित होती है। दृष्टिकोण (attitude) के अनुसार मनुष्य कर्म (actions) करता है और उसके अपने कर्म (actions) ही आदत (habit) बनकर दृष्टि (perception) का निर्माण करते हैं। जैसी दृष्टि (perception) होती है, वैसा व्यक्तित्व (personality) बनता है और अन्ततः व्यक्तित्व (personality) के आधार पर ही मनुष्य अपने भाग्य (destiny) का निर्माता हो जाता है। इस गहरी समझ को ही कथा में लक्ष्मण द्वारा भूमि में गर्त का निर्माण करना कहा गया है।

१२. राम-लक्ष्मण द्वारा विराध को गर्त्त में डालकर गाड़ देना–

उपर्युक्त वर्णित यही गहरी समझ मनुष्य को स्वयं के प्रति उत्तरदायी बनाकर आत्म-निर्भर बना देती है, जिससे मनुष्य स्थिति अथवा परिस्थिति के आधीन न होकर स्थिति अथवा परिस्थिति को ही अपने आधीन कर लेता है। धीरे-धीरे पर-निर्भरता समाप्त होने से अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति भी समाप्त हो जाती है, जिसे कथा में राम-लक्ष्मण द्वारा विराध राक्षस को गर्त्त में डालकर गाड़ देना कहा गया है।

१३. विराध की शाप से मुक्ति–

अपूर्णता अथवा खालीपन की अनुभूति के समाप्त होने का अर्थ है– पूर्णता की अनुभूति से युक्त हो जाना, जिसे कथा में विराध राक्षस का शाप से मुक्त होकर पुनः अपने पूर्व स्वरूप गन्धर्व स्वरूप को प्राप्त हो जाना कहकर इंगित किया गया है।

कथा का अभिप्राय

प्रस्तुत कथा विराध राक्षस अर्थात् अपूर्णता (खालीपन, रिक्तता) की अनुभूति से सम्बन्धित तीन बिन्दुओं पर प्रकाश ड़ालती है।

पहला बिन्दु है– अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति से होने वाली हानि, जिसे विराध राक्षस द्वारा सीता को पकड़ने के रूप में चित्रित किया गया है।

दूसरा बिन्दु है– अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति के उत्पन्न होने का कारण, जिसे तुम्बुरु नामक गन्धर्व की रम्भा नामक अप्सरा पर आसक्ति और कुबेर की सेवा में अनुपस्थिति के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तीसरा बिन्दु है– अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति को विनष्ट करने का उपाय, जिसे राम-लक्ष्मण द्वारा विराध को पहले ज्ञान रूपी शस्त्रों से घायल करने और फिर भूमि में गर्त्त बनाकर उसमें गाड़ देने के रूप में चित्रित किया गया है।

पहला बिन्दु–

पहले बिन्दु के रूप में कथा संकेत करती है कि अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति मनुष्य को बेचैन बनाती है, पीड़ित करती है, इसीलिए मनुष्य इस अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति से मुक्त होने के लिए यथासम्भव अनेक प्रकार के उपायों का आश्रय ग्रहण करता है। कभी वह भौतिक संसाधनों को अपनाकर अर्थात् वस्तुओं को खरीदकर, घूम-फिरकर अथवा खा-पीकर मनोरंजन द्वारा इस खालीपन को समाप्त कर देना चाहता है अथवा कभी मानसिक संसाधनों को अपनाकर अर्थात् दूसरों से प्रतिष्ठा, प्रशंसा, सम्मान आदि की इच्छा करके उस अपूर्णता (खालीपन) की अनुभति को दूर करना चाहता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि उपर्युक्त वर्णित बाहरी उपायों को अपनाकर भी खालीपन की अनुभूति तो वैसी की वैसी ही बनी रहती है। इसके विपरीत, मनुष्य की पवित्र-प्रकृति (पवित्र मन-बुद्धि) इच्छाओं, कामनाओं, आशाओं, वासनाओं के अधिक वशीभूत हो जाती है, जिसे कथा में विराध राक्षस द्वारा सीता को पकड़ लेने के रूप में चित्रित किया गया है।

दूसरा बिन्दु–

दूसरे बिन्दु के रूप में कथा संकेत करती है कि स्वस्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण जब मनुष्य अन्तर्मुखता से विमुख होकर अर्थात् अपने ही विचारों की गुणवत्ता पर दृष्टिपात न करके पूर्णतः बहिर्मुख हो जाता है और अनेकानेक बाहरी आकर्षणों में आसक्त होकर उन्हीं में उलझ जाता है, तब ही अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति उत्पन्न होती है क्योंकि अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति का सम्बन्ध आत्मा से है, शरीर से नहीं। आत्मा के स्वभाव अर्थात् सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा स्थिरता आदि से विपरीत चले जाना ही इस खालीपन की अनुभूति को निमन्त्रित करता है। इसलिए शरीर से सम्बन्ध रखने वाला कोई भी बाहरी संसाधन उसकी समाप्ति में उपयोगी नहीं हो सकता। पूर्णता की अनुभूति के लिए तत्सम्बन्धित आन्तरिक उपाय अर्थात् अन्तर्मुख होकर अपने ही विचार, भाव, दृष्टिकोण, कर्म, दृष्टि तथा व्यक्तित्व आदि पर ध्यान देना अनिवार्य है, जिसे कुबेर की सेवा में उपस्थित होने की आवश्यकता के रूप में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

व्यक्त किया गया है।

तीसरा बिन्दु–

तीसरे बिन्दु के रूप में कथा संकेत करती है कि खालीपन की अनुभूति को समाप्त करने के लिए अनिवार्य आवश्यकता है– अपने स्वरूप को पहचान लेने की, जिसे कथा में राम कहा गया है। मनुष्य सबसे पहले यह जाने कि वह शरीर नहीं है अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी, शरीर का नियन्ता चैतन्य-शक्ति आत्मा है। अपने प्रत्येक विचार का निर्माता मनुष्य स्वयं है। अच्छे या बुरे भावों का निर्माण उसने स्वयं किया है। अपने सकारात्मक अथवा नकारात्मक दृष्टिकोण को उसी ने बनाया है– किसी दूसरे ने नहीं। भाग्य के रूप में जो भी मिल रहा है– उसका निर्माता वह स्वयं है, दूसरा कोई नहीं। कोई भी स्थिति अथवा परिस्थिति उत्प्रेरक का कार्य अवश्य कर सकती है, परन्तु स्थिति अथवा परिस्थिति को लेकर विचार का निर्माण मनुष्य स्वयं ही करता है। यही समझ पहले तो मनुष्य को स्वयं के प्रति उत्तरदायी (self-responsible) बनाती है और फिर सुख अथवा दुःख के लिए पर-निर्भरता को समाप्त करती है। अब मनुष्य आत्म-निर्भर होकर अपनी इच्छा के अनुसार अपने जीवन को दिशा देने में समर्थ होता है। यही आन्तरिक आत्म-निर्भरता मनुष्य को पूर्णता की अनुभूति की ओर अग्रसर कर देती है अर्थात् अपूर्णता (खालीपन) की अनुभूति का विनाश हो जाता है जिसे कथा में राम-लक्ष्मण द्वारा विराध राक्षस के शरीर को भूमि में गर्त्त बनाकर उसमें गाड़ देने के रूप में इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Feeling of Voidness gets eliminated by Self-Knowledge as depicted in the story of Demon Virādha

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇyakāṇḍa, Chapters 2-4), there is a story of Demon Virādha. It is said that Rāma alongwith Sītā and Lakṣmaṇa saw Virādha – a horrible Demon when he entered Daṇḍakavana. The Demon immediately caught hold of Sītā and asked Rāma to give his introduction. Rāma introduced himself as Ikṣvākuvaṁśī and asked Demon also to introduce himself. Demon told that he is son of Java and Śatahṛdā, but everybody knows him as Virādha and that Brahmā has blessed him with a boon that no weapon could kill him.

Hearing this, Rāma started showering his arrows on him to liberate Sītā. Virādha got injured and he liberated Sītā but bodily lifted Rāma and Lakṣmaṇa and put them on his shoulders. Rāma and Lakṣmaṇa quickly cut out both of his arms but still he did not die. At last, when Rāma and Lakṣmaṇa could not kill him by this, they decided to bury him in a deep pit. In the meanwhile Virādha revealed to them that he is a Gandharva named Tumburu. One day, when he was attracted by Rambhā damsel and could not serve Kubera in time then Kubera had cursed him to become a demon. But on his request, Kubera had assured him that he would be liberated by Rāma when Rāma will come to the forest. Hence Virādha requested Rāma to liberate him now. Rāma asked Lakṣmaṇa to dig a pit and bury him.

The story is symbolic and related to the Feeling of Voidness (emptiness) symbolized as Demon Virādha. The story points to three following aspects about this feeling of Voidness.

1. The Feeling of Voidness is very harmful as it immediately grabs the Purity of Mind and Intellect symbolized as Sītā being caught by Demon Virādha. The story hints that the Feeling of Voidness always depresses a person and he tries his best to get rid of it. He runs towards the objects of pleasure because he has an illusion that material objects may heal his voidness. At other times he feels that name, fame, respect and honour will help him

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

in removing his voidness. Therefore he anxiously tries to secure them from out side but ultimately he finds that he is still empty. This continuous craving leads him towards mental impurity and unstability.

2. This Feeling of Voidness is generated when a person forgets his Real Identity. He becomes extrovert and gets entangled in wordly pleasures. He does not know that this Feeling of Voidness is related to Soul and not to the Body. Therefore to the extent a person goes away from Soul, this feeling of voidness goes on increasing. On the contrary when a person comes near the soul, this Feeling of Voidness reduces and ultimately disappears.

3. This Feeling of Voidness can be destroyed when a person realizes his own Real Self and becomes the Master of his body. He then properly understands that he is the Creator of his own Thoughts. His own Thoughts create Feelings and all his Feelings, get together, make his Attitude. His own Attitude takes him towards Action and his Action converted into Habit makes his Perception. This Perception builts his Personality and Personality makes his Destiny. This Deep Introspection and Understanding makes a person Self Responsible and Self Responsibility leads him to Self Dependency. A Self Dependent person liberates himself from Feeling of Voidness. This is symbolized as digging up a deep pit in the earth i.e. going deeper and deeper as described above by Lakṣmaṇa and burying demon Virādha in that pit by Rāma and Lakṣmaṇa.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१६. शरभंग मुनि कथा

(आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के निष्कामी मन के महत्त्व का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
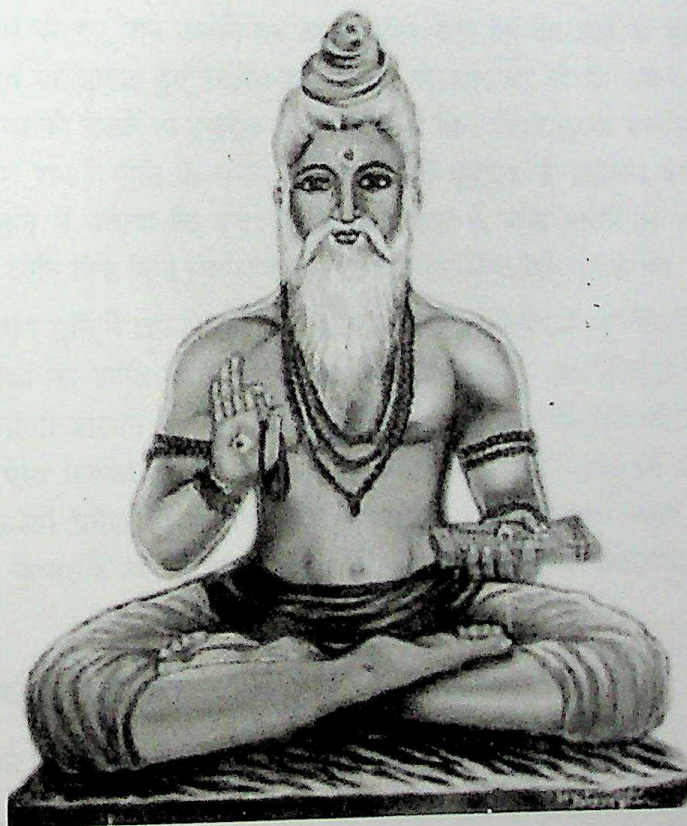
शरभंग मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के निष्कामी मन के महत्त्व का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड में (सर्ग ५) शरभंग मुनि की छोटी सी कथा इस प्रकार है–

कथा का स्वरूप

विराध का वध करके जब राम अनुज लक्ष्मण एवं सीता के साथ शरभंग मुनि के आश्रम पर गए, तब उन्होंने यह अद्भुत दृश्य देखा कि देवताओं के साथ एक सुन्दर रथ पर आरूढ़ हुए इन्द्रदेव शरभंग मुनि से बात कर रहे हैं। राम आगे बढे किन्तु राम को देखते ही इन्द्रदेव शरभंग मुनि से विदा लेकर तुरन्त स्वर्गलोक को चले गए। राम ने मुनि के समीप पहुँचकर उनसे इन्द्रदेव के आगमन का कारण पूछा। मुनि ने बताया कि इन्द्रदेव उन्हें स्वर्गलोक ले जाना चाहते थे परन्तु वे आपका दर्शन किए बिना स्वर्गलोक अथवा ब्रह्मलोक जाना नहीं चाहते थे।

शरभंग मुनि ने तप से प्राप्त हुए लोकों को राम को देना चाहा परन्तु राम ने सब लोकों की प्राप्ति कराने का आश्वासन देकर मुनि से अपने निवास के लिए स्थान माँगा। शरभंग ने कहा कि सुतीक्ष्ण मुनि ही आपके निवास की व्यवस्था करेंगे। ऐसा कहकर शरभंग मुनि ने राम के देखते-देखते अग्नि को प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश किया और अपने पुराने शरीर का परित्याग करके वे एक तेजस्वी कुमार के रूप में प्रकट होकर सभी लोकों को लांघकर ब्रह्मलोक में पहुँच गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा को समझने के लिये पहले प्रतीकों को समझना उपयोगी होगा।

१. शरभंग मुनि–

शरभंग शब्द शर तथा भंग नामक दो शब्दों के मेल से बना है। शर शब्द क्षर का ही तद्भव (बिगड़ा हुआ) स्वरूप प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है– विनाशशील तथा भंग का अर्थ है– विनाश। अतः शरभंग का अर्थ हुआ– विनाशशील का विनाश। मुनि शब्द पौराणिक साहित्य में मन का वाचक है। अतः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शरभंग मुनि के रूप में ऐसे मन को इंगित किया गया है, जिसने समस्त विनाशशील पदार्थों का विनाश कर दिया हो अर्थात् जो समस्त विनाशशील पदार्थों के प्रति कामना से रहित हो गया हो। एक शब्द में यदि कहा जाए तो निष्कामी, निःस्पृही मन को ही यहाँ शरभंग मुनि कहकर संकेतित किया जा सकता है। इस शरभंग मुनि अर्थात् निष्कामी, निःस्पृही मन को समझाने के लिए ही कथा के अन्दर इन्द्रदेव के आगमन की अवान्तर घटना का समावेश किया गया है।

इन्द्रदेव का देवताओं के साथ रथ पर आरूढ़ होकर शरभंग मुनि के समीप आना, शरभंग मुनि से स्वर्गलोक चलने के लिए आग्रह करना परन्तु शरभंग मुनि का इन्द्रदेव के साथ स्वर्गलोक में न जाकर राम के दर्शन के प्रति उत्सुक होना यह संकेत करता है कि निष्कामी, निःस्पृही मन किसी भी नश्वर पदार्थ में नहीं अटकता। वह मन केवल आत्म-ज्ञान (स्व-स्वरूप का ज्ञान) के आगमन के प्रति उत्सुक होता है।

२. शरभंग मुनि का प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश–

प्रज्वलित अग्नि जाग्रत चेतना को इंगित करती है। चेतना की दो ही स्थितियां होती हैं। एक प्रसुप्त (सोई हुई) तथा दूसरी जाग्रत (जागी हुई)। सोई हुई चेतना की स्थिति में तो किसी भी प्रकार का रूपान्तरण सम्भव नहीं है। परन्तु कुछ भी श्रेष्ठ पाने के लिए चेतना का जाग्रत होना अर्थात् तत्सम्बन्धित प्रबल इच्छा और तैयारी (पात्रता) का होना अनिवार्य है।

३. शरभंग मुनि द्वारा पुराने वृद्ध शरीर का परित्याग तथा नूतन कुमार के रूप में प्राकट्य–

पुराना वृद्ध शरीर देह-दृष्टि को तथा नूतन कुमार के रूप में प्राकट्य आत्म-दृष्टि को इंगित करता है। यहाँ यह संकेतित किया गया है कि कामना-युक्त मन कामना रहित (निष्काम) होने तक चूँकि शरीर-भाव (मैं शरीर हूँ– इस संकल्प में रहना) में ही विद्यमान रहता है, अतः शरीर-भाव से शरीर-दृष्टि का निर्मित होना सहज और स्वाभाविक है। परन्तु कामना रहित मन को जैसे ही आत्म-ज्ञान अर्थात् आत्म-स्वरूप का ज्ञान (राम का दर्शन) हो जाता है– वैसे ही पुरानी देह-दृष्टि भी आत्म-दृष्टि में रूपान्तरित हो जाती है। चूँकि अनेक जन्मों की लम्बी यात्रा में एक शरीर को छोड़ने तथा दूसरे शरीर को धारण करने के कारण निर्मित हुई यह शरीर-दृष्टि बहुत पुरानी है, इसलिए इसे कथा में वृद्ध कहकर इंगित किया

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गया है। इसके विपरीत आत्म-दृष्टि एकदम नई है, इसीलिए इसे कथा में नूतन कुमार के रूप में चित्रित किया गया है।

४. शरभंग मुनि का सब लोकों को लांघकर ब्रह्मलोक में पहुँचना–

लोक शब्द पौराणिक साहित्य में दृष्टि का वाचक है। मनुष्य अपनी आध्यात्मिक साधना में जैसे-जैसे प्रगति करता है, वैसे-वैसे उसके भीतर दया-दृष्टि, शुभ-दृष्टि, परमार्थ-दृष्टि, प्रेम-दृष्टि तथा करुणा-दृष्टि आदि अनेक प्रकार की दृष्टियों का निर्माण होता जाता है। इन्हें ही कथा में विभिन्न लोक कहकर इंगित किया गया है। परन्तु आत्म-दृष्टि के फलस्वरूप ब्रह्म-दृष्टि (सभी के प्रति आत्म-दृष्टि) के विकसित होने पर साधक द्वारा उपर्युक्त वर्णित सभी दृष्टियों का लंघन हो जाता है।

कथा का अभिप्राय

जीवन को देखने की दो ही दृष्टियाँ हैं। एक है– देह-दृष्टि तथा दूसरी है– आत्म-दृष्टि। जब मनुष्य स्वयं को देह (शरीर) मात्र मानता है, तब इसी विचार या संकल्प के अनुसार उसकी भावनाएँ भी निर्मित होती हैं। समस्त भावनाएँ मिलकर उसके दृष्टिकोण (वृत्ति) को बनाती हैं। दृष्टिकोण के आधार पर मनुष्य कर्म करता है और कर्म की बार-बार आवृत्ति से उसके भीतर देह-दृष्टि का निर्माण हो जाता है। अत: देह-दृष्टि के निर्माण में मनुष्य को पृथक् से कुछ भी नहीं करना पड़ता। केवल देह के विचार या संकल्प (मैं शरीर हूँ– यह विचार) के आधार पर ही धीरे-धीरे देह-दृष्टि का निर्माण हो जाता है।

इसके ठीक विपरीत, इस विचार या संकल्प को धारण करने पर कि मैं देह (शरीर) मात्र नहीं, अपितु देह (शरीर) को चलाने वाली एक शक्ति, एक आत्मा हूँ, तब उपर्युक्त वर्णित शृंखला (विचार – भाव – दृष्टिकोण – कर्म – आदत – दृष्टि) के आधार पर ही मनुष्य में आत्म-दृष्टि का निर्माण होता है और मनुष्य स्वयं को आत्म-स्वरूप देखता हुआ धीरे-धीरे दूसरों को भी आत्म-स्वरूप देखने लगता है।

अत: देह-दृष्टि से आत्म-दृष्टि में रूपान्तरण का एकमात्र मूल आधार है– मनुष्य का यह विचार या संकल्प कि मैं आत्मा (चैतन्य-शक्ति) हूँ– शरीर नहीं। परन्तु आत्मा के विचार में स्थित होना तभी सहज होता है जब मन निष्काम हो। कामनाओं से भरा हुआ मन आत्मा के विचार को धारण करने में समर्थ नहीं होता। प्रस्तुत कथा के माध्यम से दो महत्त्वपूर्ण संकेत किए गए हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१. पहला संकेत यह है कि जो मन विनाशशील पदार्थों की कामना में उलझा हुआ है, उसके लिए आत्मस्वरूपता का विचार या संकल्प सम्भव नहीं है। इसके विपरीत निःस्पृह, निष्कामी अर्थात् कामनाओं से मुक्त हो चुके मन के लिए इस विचार या संकल्प को धारण करना कि मैं आत्मा हूँ– अत्यन्त सहज है। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि निःस्पृह, निष्कामी मन के समक्ष आत्म-ज्ञान (आत्म-स्वरूप) स्वतः प्रकट होता है, जिसे कथा में शरभंग मुनि के आश्रम में राम का प्रविष्ट होना कहा गया है।

२. दूसरा महत्त्वपूर्ण संकेत यह है कि निःस्पृहता, निष्कामता (जिसे शरभंग मुनि कहा गया है) यद्यपि अत्यन्त श्रेष्ठ स्थिति है, परन्तु सम्पूर्ण या पर्याप्त नहीं है। निष्कामी मन (मनुष्य) को भी आत्म-ज्ञान में स्थित होना अनिवार्य है। आत्म-ज्ञान अर्थात् स्वस्वरूप में स्थित होकर ही देह-दृष्टि का आत्म-दृष्टि में रूपान्तरण सम्भव है और फिर आत्म-दृष्टि ही शनैः-शनैः विकसित होकर ब्रह्म-दृष्टि या सभी के प्रति आत्म-दृष्टि बन जाती है, जिसे कथा में शरभंग मुनि का पहले वृद्ध से कुमार बन जाना और फिर ब्रह्मलोक में स्थित हो जाना कहा गया है।

प्रकारान्तर से कथा का तात्पर्य यह है कि विश्व के प्रति प्रेम भाव में विद्यमान होना जीवन का आनन्द है और उद्देश्य भी। परन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पहले आत्म-दृष्टि का निर्माण होना आवश्यक है और आत्म-दृष्टि का निर्माण आत्म-ज्ञान (मैं सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा हूँ– इस विचार या संकल्प में नित्य स्थित) में अवस्थित हुए बिना सम्भव नहीं है। आत्म-ज्ञान में अवस्थिति तभी सम्भव है, जब मन निष्काम हो अर्थात् सभी क्षर (विनाशशील) पदार्थों के प्रति कामना से रहित हो गया हो और आत्म-ज्ञान हेतु भी उत्सुक हो।

Importance of Detached Mind of a Self-Knowledged Person as described through the story of Sage Śarabhaṅga

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇyakāṇḍa, chapter 5), there is a short story of Sage Śarabhaṅga. It is said that after burying demon Virādha, Rāma with Lakṣmaṇa and Sītā reached hermitage of sage Śarabhaṅga. He saw Indra communicating with Śarabhaṅga. But as soon as Rāma reached there, Indra immediately disappeared.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Rama asked sage Śarabhaṅga the reason for coming of Indra. Śarabhaṅga told that Indra had come to take him to heaven but he refused as he was only interested in seeing you. Rāma asked Śarabhaṅga for the place to live but Śarabhaṅga requested Rāma to go to sage Sutīkṣṇa for this purpose.

In presence of Rāma, sage Śarabhaṅga produced fire, entered that fire, came out of that fire as a young one and proceeded to Brahmaloka.

The story is symbolic and depicts Detached Mind as under–

1. A Detached Mind never attracts towards pleasure. It is only inclined towards Self-Knowledge symbolized as denying of sage Śarabhaṅga to go to heaven but waiting for coming of Rāma.

2. A Detached Mind develops so many qualities symbolized as obtaining of different lokas by sage Śarabhaṅga.

3. A Detached Mind is so much eligible for Self-Knowledge that Self-Knowledge itself descends symbolized as coming of Rāma in the hermitage of Sage Śarabhaṅga.

4. A Detached Mind is quite virtuous but still perceives everything as body. Hence as soon as it knows and realizes Self, the old Body–Perception changes into new Soul–Perception symbolized as the transformation of sage Śarabhaṅga from old age to young.

5. This new Soul–Perception also expands and becomes one with all. This is the ultimate goal of life and now nothing is needed. This is symbolized as sage Śarabhaṅga going to Brahmaloka transcending all the lokas.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१७. सुतीक्ष्ण मुनि कथा

(आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन के महत्त्व का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुतीक्ष्ण मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन के महत्त्व का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ७,८, ११) में वर्णित सुतीक्ष्ण मुनि की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

शरभंग मुनि से मिलकर जब राम, लक्ष्मण एवं सीता के साथ सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर पहुँचे, तब मुनि ने उनका अभिनन्दन किया और कहा कि वे उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे, इसीलिए शरीर को त्यागकर देवलोक में नहीं गए थे। सुतीक्ष्ण मुनि ने तप से प्राप्त हुए लोकों को राम को देना चाहा परन्तु राम ने उन्हें ही लोक प्रदान करने का आश्वासन देकर अपने निवास हेतु स्थान माँगा। सुतीक्ष्ण मुनि ने अपने आश्रम को ही निवास हेतु श्रेष्ठ स्थान बतलाते हुए राम से कहा कि यहाँ ऋषियों का समुदाय सदा आता-जाता रहता है, फल-मूल सर्वदा सुलभ होते हैं, मृगों के झुण्ड आते हैं और मन को लुभाकर लौट जाते हैं तथा मृगों के उपद्रव के सिवा यहाँ कोई दोष नहीं है। राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ रात्रि में वहीं निवास किया परन्तु प्रातःकाल होने पर दण्डकारण्य में निवास करने वाले ऋषियों के आश्रम- मण्डलों का दर्शन करने के लिए उन्होंने सुतीक्ष्ण मुनि से आज्ञा माँगी। सुतीक्ष्ण मुनि ने आश्रम-मण्डलों का दर्शन करके पुनः लौट आने के लिए राम से प्रार्थना की। तदनुसार राम सब ओर घूम-फिरकर सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर लौट आए और दस वर्ष तक वहीं रहे।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है। अतः सभी प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी होगा।

१. सुतीक्ष्ण मुनि–

सुतीक्ष्ण शब्द सुति और ईक्षण नाम दो शब्दों के मिलने से बना है। सुति (सु-क्तिन्) का अर्थ है– सोमरस को निकालना और ईक्षण का अर्थ है– सोचना, विचारना, समझना या देखना आदि। सोमरस एक वैदिक शब्द है जिसका अभिप्राय है– अमृत अर्थात् सुख, शान्ति, प्रेम तथा आनन्द से भरपूर चैतन्य-शक्ति आत्मा।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अतः सोमरस को निकालने का अर्थ हुआ– सुख, शान्ति, प्रेम तथा आनन्द से भरपूर चैतन्य-शक्ति आत्मा को विस्मृति से स्मृति में लाना अर्थात् सतत रूप से यह समझना कि मैं शरीर नहीं हूँ, अपितु शरीर को चलाने वाला, सुख, शान्ति, प्रेम तथा आनन्द से भरपूर चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ।

मुनि शब्द मन को इंगित करता है, अतः जो मन सुख, शान्ति, प्रेम तथा आनन्द से भरपूर चैतन्य-शक्ति आत्मा के विचार में, चिन्तन में, स्मरण में प्रवृत्त हो गया है– वह सुतीक्ष्ण मुनि है। एक शब्द में यदि कहना चाहें तो आत्मोन्मुख मन को अथवा ध्यानस्थ मन को सुतीक्ष्ण मुनि कहा जा सकता है।

आत्मोन्मुख मन अथवा ध्यानस्थ मन कहने से अधिकांशतः यह धारणा उभरती है कि आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन वह है जो समस्त कर्त्तव्य-कर्मों को छोड़कर आँख बन्द करके बैठ गया है। परन्तु यह धारणा सही नहीं है। आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन वह है जो सुख, शान्ति, प्रेम तथा आनन्द स्वरूप आत्मा का सतत स्मरण रखता हुआ समस्त कर्त्तव्य-कर्मों का यथोचित निर्वाह करता है।

इस आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन का लक्ष्य है– सतत आत्म-चिन्तन करते हुए मनुष्य को उसकी इस सही पहचान में स्थित करा देना कि वह शरीर नहीं है, अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी, सुख, शान्ति, प्रेम तथा आनन्द से भरपूर, अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा है। इस सही पहचान के आगमन को ही कथा में सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में राम का आगमन कहकर इंगित किया गया है।

२. सुतीक्ष्ण मुनि को तप से प्राप्त हुए लोक–

आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन श्रेष्ठ सामर्थ्य से युक्त होकर दया-दृष्टि, सेवा-दृष्टि, परोपकार-दृष्टि, स्नेह-दृष्टि तथा क्षमा-दृष्टि जैसी जिन अनेक दृष्टियों से युक्त हो जाता है, उन्हें ही कथा में सुतीक्ष्ण मुनि द्वारा तप से प्राप्त हुए लोक कहा गया है। आत्म-दृष्टि के विकसित होने पर उपर्युक्त वर्णित सभी दृष्टियों का आत्म-दृष्टि में अन्तर्भाव हो जाता है, इसलिए कथा में कहा गया है कि सुतीक्ष्ण मुनि ने तप से प्राप्त हुए लोकों को राम को देना चाहा।

३. सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में ऋषियों का आना-जाना–

ऋषि शब्द श्रेष्ठ विचार का वाचक है। अतः सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में ऋषियों का आना-जाना कहकर यह संकेत किया गया है कि आत्मोन्मुख अथवा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ध्यानस्थ मन की स्थिति में ही मन के भीतर श्रेष्ठ विचारों का आना-जाना सतत बना रहता है। शरीर अथवा संसार की ओर लगा हुआ मन इस योग्य नहीं होता कि वह अपने भीतर श्रेष्ठ विचारों को धारण कर सके।

४. सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में फल-मूल का सर्वदा सुलभ होना–

यहाँ फल शब्द कार्य (effect) का और मूल शब्द कारण (cause) का वाचक है। अतः सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में फल-मूल की सुलभता कहकर यह संकेत किया गया है कि आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन ही कार्य और कारण का सतत चिन्तन करता है। आत्मा (मनुष्य) की यात्रा अनवरत है। वह एक शरीर को छोड़ता है तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करता है। शरीर छोड़ने और ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में वह जो भी मानसिक, वाचिक अथवा कायिक कर्म करता है– उनकी छापें उसके चित्त (अवचेतन मन) में इकट्‌ठी होती हैं। फिर उन छापों के अनुसार ही जीवन में विभिन्न परिस्थितियाँ उपस्थित होती हैं। जीवन में उपस्थित हुई परिस्थितियाँ वास्तव में पूर्व में किए गए अपने ही कर्मों का कार्य (परिणाम/फल) है। उपस्थित परिस्थितियों के आधार पर जब मनुष्य पुनः कर्म करता है, तब उसका वह कर्म ही भविष्य में आने वाली परिस्थितियों का कारणरूप हो जाता है। इस आधार पर आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन कार्य-कारण का सम्यक् चिन्तन करता हुआ व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों के निर्माण से सदा बचा रहता है। शरीर अथवा संसार-केन्द्रित मन में इस कार्य-कारण की चिन्तना नहीं होती।

५. सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में मृगों का आना-जाना–

मृग शब्द अन्वेषण अर्थ वाली मृग् धातु से बना है। अतः पौराणिक साहित्य में आया हुआ मृग शब्द किसी पशु-विशेष का वाचक न होकर अन्वेषण अथवा खोज के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में मृगों का आना-जाना कहकर यह संकेत किया गया है कि आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन ही अन्वेषण शक्ति से युक्त होता है, अतः उसका सारा मनन-चिन्तन ही अन्वेषण-परक होता है। वह प्रत्येक विषय की खोजबीन करके उसके मर्म को समझने का यथासम्भव प्रयास करता है। शरीर अथवा संसार-केन्द्रित मन में यह अन्वेषण- क्षमता नहीं होती।

६. सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में मृगों का उपद्रव–

मृगों का उपद्रव कहकर यह संकेत किया गया है कि आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन यद्यपि अन्वेषण-क्षमता से युक्त होता है और यथासम्भव खोजबीन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करके विषय के मर्म को समझ भी लेता है परन्तु अनेक बार बहुत खोजबीन के बाद भी वह कठिन विषयों का मर्म नहीं समझ पाता। अतः समाधान प्राप्त होने तक मन के भीतर खोज सम्बन्धी उठापटक चलती ही रहती है, जो मन की स्थिरता में व्यवधान स्वरूप ही है।

७. राम का ऋषियों के आश्रम-मण्डलों में घूमना–

चूँकि ऋषि श्रेष्ठ विचारों के प्रतीक हैं, अतः ऋषियों के आश्रम-मण्डलों में राम के घूमने का अभिप्राय है– अपने सही स्वरूप– आत्म-स्वरूप की पहचान हो जाने पर मनुष्य का श्रेष्ठ विचारों के बीच रहकर उन पर सतत चिन्तन-मनन करना, उन श्रेष्ठ विचारों को जीवन में उतारना तथा उनसे यथासम्भव दिशा-निर्देश ग्रहण करना।

८. राम का दस वर्ष तक सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में रहना–

दस वर्ष कहकर यहाँ मनुष्य के शरीर में क्रियाशील दस प्राणों- पाँच स्थूल प्राणों तथा पाँच सूक्ष्म प्राणों की ओर संकेत किया गया है। पाँच स्थूल प्राण हैं– प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान और पाँच सूक्ष्म प्राण हैं– नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनञ्जय। राम का दस वर्ष तक सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में रहना यह संकेत करता है कि स्व-स्वरूप की पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान जब तक सम्पूर्ण प्राणों में आत्मसात् न हो जाए, तब तक मन का आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ रहना अनिवार्य है अर्थात् मनुष्य अपने ध्यान को, अपने विचार को, अपनी चिन्तना को तब तक आत्मोन्मुख बनाए रखे, जब तक आत्म-स्वरूपता (आत्म-ज्ञान) प्रगाढ़ होकर प्राणों में आत्मसात् न हो जाए। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि ध्यानस्थ मन के भीतर एक न एक दिन आत्म-ज्ञान का जो आगमन होता है, वह तब तक वहाँ रहता है, जब तक वह प्राणों में आत्मसात् न हो जाए।

कथा का अभिप्राय

प्रस्तुत कथा के माध्यम से आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन के महत्त्व को अनेक रूपों में दर्शाया गया है।

१. आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन ही इस योग्य होता है कि वह श्रेष्ठ विचारों की धारणा करके उन पर सतत चिन्तन-मनन करता है। सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में ऋषियों का आना-जाना कहकर इसी तथ्य को इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२. आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन जीवन में घटित प्रत्येक घटना के कारण और कार्य पर विचार करने की सामर्थ्य से युक्त होता है। वह समझता है कि जीवन में घटित प्रत्येक घटना किसी पूर्व कर्म का कार्य (परिणाम) भी होती है और किसी भावी कर्म का कारण भी। सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में फल-मूल की सदैव सुलभता के रूप में इसी तथ्य को व्यक्त किया गया है।

३. आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन अन्वेषण-परक होता है। वह किसी भी विषय की खोजबीन करके समाधान तक पहुँचने का यथासम्भव प्रयत्न करता है। सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में मृगों का आना-जाना कहकर इसी तथ्य का संकेत किया गया है।

४. आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन अन्वेषण-परक होने पर भी अनेक बार समाधान प्राप्त न होने के कारण ऊहापोह में पड़ जाता है। मृगों के उपद्रव के रूप में इसी बात को संकेतित किया गया है।

५. आत्मोन्मुख अथवा ध्यानस्थ मन एक न एक दिन आत्म-ज्ञान को प्राप्त कर लेता है, जो उसका मूल उद्देश्य ही है। सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में राम का आगमन कहकर इसी तथ्य को व्यक्त किया गया है।

६. मन के ध्यानस्थ रहने पर ही एक न एक दिन आत्म-ज्ञान सम्पूर्ण (दसों) प्राणों में आत्मसात् हो जाता है, जिसे कथा में राम का दस वर्ष तक सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में रहना कहा गया है।

अतः कथा यह संदेश देती है कि मनुष्य अपने मन को आत्मोन्मुख करे, ध्यानस्थ बनाए। आत्मोन्मुख मन में आत्म-ज्ञान का प्रादुर्भाव होता ही है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Importance of Meditative Mind of a Self-Knowledged Person as described through the story of Sage Sutīkṣṇa

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇya Kāṇḍa, chapters 7, 8, 11), there is a story of Sage Sutīkṣṇa. It is said that Rāma with Lakṣmaṇa and Sītā reached the hermitage of sage Sutīkṣṇa. Sutīkṣṇa was already waiting for him and did not go to devaloka. As Rāma reached, he desired to donate his lokas to Rāma but Rāma did not accept and assured him to offer them back.

Now when Rāma asked Sutīkṣṇa for some place to live, he requested Rāma to live in his hermitage, describing it's qualities. He told Rāma that Ṛṣis always visit here, fruits and roots are always available, folks of deers wander here but sometimes they also create disturbance here.

Hearing this, Rāma stayed there that night but next morning he asked permission to go to other Āśramas. After getting permission, Rāma went to other Āśramas, met there with Ṛṣis and returned back to the hermitage of Sutīkṣṇa and lived there for ten years.

The story is symbolic and relates to the Importance of Meditative Mind symbolized as Sage Sutīkṣṇa. Meditative Mind means a Mind focused to Soul. The story describes the Importance of this Meditative Mind as under–

1. A Meditative Mind is able to greet, concentrate and contemplate eminent, pure thoughts symbolized as regular visits of Ṛṣis in the hermitage of Sutīkṣṇa.

2. A Meditative Mind is able to understand the Concept of Cause and Effect symbolized as having fruits and roots in the hermitage of Sutīkṣṇa.

3. A Meditative Mind is able to seek or search the secrets of those points which are deep and hidden. This is symbolized as the free wandering of deers in the hermitage of Sutīkṣṇa.

4. A Meditative Mind although is able to search the secrets, yet sometimes gets entangled in such deep subjects and topics

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

which create panic. This is symbolized as the panic of deers in the hermitage of Sutīkṣṇa.

5. A Meditative Mind is able to obtain the knowledge of Self. This is symbolized as the coming of Rāma in the hermitage of Sutīkṣṇa.

6. A Meditative Mind is also able to retain the knowledge of Self until it gets totally absorbed. This is symbolized as the living of Rāma for ten years in the hermitage of Sutīkṣṇa.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१८. अगस्त्य मुनि कथा

(आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आत्म-भाव-युक्त
मन के महत्त्व का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
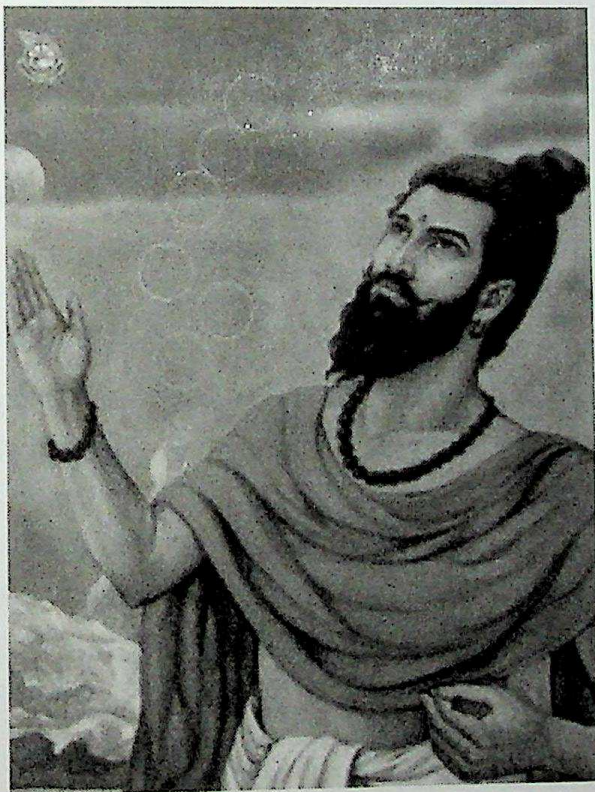
अगस्त्य मुनि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य के आत्म-भाव-युक्त मन के महत्त्व का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ११ से १३) में वर्णित अगस्त्य मुनि की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में निवास करते हुए एक दिन जब राम के मन में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य के दर्शन की इच्छा हुई, तब सुतीक्ष्ण मुनि ने उन्हें अगस्त्य आश्रम में पहुँचने हेतु मार्ग का यथायोग्य दिशा-निर्देश दिया। तदनुसार राम, लक्ष्मण और सीता के साथ अगस्त्य आश्रम की ओर चल दिए। मार्ग में चलते हुए राम ने अगस्त्य मुनि के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा कि अगस्त्य जी ने एक बार लोक-हित की कामना से दो असुरों को दग्ध किया था और दक्षिण दिशा को शरण लेने योग्य बना दिया था।

असुरों का वर्णन करते हुए राम ने कहा कि इल्वल और वातापि नाम के दो असुर थे। वे दोनों भाई साथ-साथ रहते थे और ब्राह्मणों की हत्या करते थे। इल्वल ब्राह्मणों को श्राद्ध हेतु भोजन के लिए निमन्त्रित करता था और वातापि को शाक के रूप में पकाकर ब्राह्मणों को खिला देता था। जब ब्राह्मण भोजन कर लेते थे, तब इल्वल वातापि को पुकारता था और इल्वल की पुकार को सुनकर वातापि ब्राह्मणों का पेट फाड़कर बाहर निकल आता था। एक बार देवताओं की प्रार्थना से महामुनि अगस्त्य ने भी जान-बूझकर शाक-रूपधारी वातापि का भक्षण किया था। जब वे भोजन कर चुके और हमेशा की तरह इल्वल ने वातापि को पुकारा, तब वातापि बाहर नहीं आ सका क्योंकि अगस्त्य जी ने वातापि को पचा लिया था और वह यमलोक जा चुका था। अब इल्वल ने क्रोधपूर्वक महामुनि अगस्त्य को मारना चाहा परन्तु अगस्त्य ने अपने उद्दीप्त तेज से इल्वल को भी मार ड़ाला।

अगस्त्य के प्रभाव का वर्णन करते हुए राम ने पुनः कहा कि एक बार पर्वत-श्रेष्ठ विन्ध्य जब सूर्य का मार्ग रोकने के लिए बढ़ा, तब अगस्त्य के कहने से ही वह नम्र हो गया और उनके आदेश का पालन करता हुआ फिर कभी नहीं बढ़ा।

इस प्रकार अगस्त्य के प्रभाव का अनेक प्रकार से वर्णन करते हुए राम, लक्ष्मण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

और सीता के साथ अगस्त्य के आश्रम में पहुँच गए। परस्पर मिलकर सभी बहुत आनन्दित हुए और एक दूसरे का यथायोग्य सत्कार हुआ। अगस्त्य ने राम को विजय-प्राप्ति हेतु विष्णु का दिया हुआ दिव्य धनुष, ब्रह्मा जी का दिया हुआ उत्तम बाण, इन्द्र के दिए हुए दो तूणीर तथा एक तलवार प्रदान की। राम द्वारा निवास हेतु स्थान पूछने पर अगस्त्य ने उन्हें पञ्चवटी में रहने का परामर्श दिया। तदनुसार राम पञ्चवटी की ओर प्रस्थित हो गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है। अत: प्रतीकों को समझना उपयोगी है।

१. अगस्त्य–

अगस्त्य शब्द अग और स्त्य नामक दो शब्दों के मिलने से बना है। अग (अ - ग) का अर्थ है– अगति अर्थात् गति-हीन। गति-हीन (परिवर्तन-हीन) केवल आत्मा है, अत: अग शब्द आत्मा का वाचक है। स्त्य शब्द का अर्थ है– विस्तार या फैलाव। अत: अगस्त्य शब्द का अर्थ हुआ– आत्मा का विस्तार या फैलाव। पौराणिक साहित्य में अगस्त्य के समान पुरस्त्य (पुलस्त्य) शब्द का प्रयोग भी प्रचुरता से हुआ है, जिसका अर्थ है– पुर(शरीर) का विस्तार या फैलाव। मनुष्य के जीवन की दो विशेष स्थितियाँ हैं। एक स्थिति है– आत्मा के फैलाव की अर्थात् सबको आत्मा के भाव से देखने की तथा दूसरी स्थिति है– शरीर के फैलाव की अर्थात् सबको शरीर के भाव से देखने की।

अगस्त्य को समझने के लिए ऐसा भी कहा जा सकता है कि मनुष्य की आध्यात्मिक साधना के दो पक्ष हैं। एक है– व्यक्तिगत विकास का पक्ष जिसके अन्तर्गत मनुष्य स्वयं को शरीर न समझकर आत्मा समझने का सतत अभ्यास करता है और एक न एक दिन स्वयं को स्व-स्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित कर लेता है। दूसरा है– सामाजिक पक्ष जिसके अन्तर्गत मनुष्य आत्म-स्वरूप में स्थित होता हुआ अपने से भिन्न दूसरों को भी आत्म-स्वरूप में देखने का अभ्यास करता है और एक न एक दिन आत्मा के विस्तार में स्थित हो जाता है अर्थात् सभी को आत्म-भाव से देखने लगता है।

प्रस्तुत कथा में राम और अगस्त्य का मिलन यह इंगित करता है कि अब आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य (राम) सबके प्रति आत्म-भाव (अगस्त्य) से युक्त हो गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२. इल्वल–

इल्वल शब्द इल् तथा वल से बना है। इल् धातु चलने-फिरने अथवा जाने के अर्थ में प्रयुक्त होती है तथा वल का अर्थ है– मुड़ना या आकृष्ट होना। अतः इल्वल का अर्थ है– ऐसा मन जो चलने-फिरने वाले शरीर की ओर मुड़ गया है अथवा आकृष्ट हो गया है। शास्त्रों की भाषा में इसे ही देह का अभिमान कहा जाता है क्योंकि देहाभिमान का अर्थ ही है– अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण अपनी गलत पहचान शरीर (मैं शरीर हूँ) से जुड़ जाना। चूँकि देह का अभिमान या देह-भाव एक नकारात्मक शक्ति है, इसलिए इसे कथा में असुर कहा गया है।

३. वातापि–

वातापि शब्द वा अव्यय के साथ तापि के योग से बना है। तापि का अर्थ है– ताप देने वाला। यह शब्द गागर में सागर की तरह उन सभी बातों को अपने भीतर समेटे हुए है, जो बातें देह-भाव में रहने पर मनुष्य को ताप (दुःख) प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए–

१. अपने आपको शरीर समझने के कारण जब मनुष्य अपने और पराए के भेद से भर जाता है, तब अपनों के प्रति तथा अपनी वस्तुओं के प्रति भी जिस आसक्ति से युक्त हो जाता है, वही आसक्ति उसे ताप प्रदान करती है।

२. अपने आपको शरीर समझने के कारण जब मनुष्य अपनी विभिन्न भूमिकाओं (roles) को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेता है, तब उस-उस भूमिका के प्रति कही हुई छोटी सी बात भी उसे ताप प्रदान करती है।

३. अपने आपको शरीर समझते हुए जब मनुष्य पारस्परिक सम्बन्धों में व्यवहार करता है, तब प्रत्येक सम्बन्ध में इतनी आशाओं, अपेक्षाओं से युक्त हो जाता है कि वे आशाएँ, अपेक्षाएँ ही ताप का कारण बन जाती हैं।

४. अपने आपको शरीर समझने के कारण मनुष्य स्वयं के सही होने के विचार से इतनी प्रगाढ़ता से संयुक्त हो जाता है कि दूसरे को बहुत शीघ्र गलत ठहराता है और अपनी पसन्द को ही उचित मानकर नापसन्द के प्रति क्रोधित तक हो जाता है। क्रोध आदि विकार नकारात्मक ऊर्जाएँ हैं, जो उसे ही ताप प्रदान करती हैं।

५. अपने आपको शरीर समझते हुए भी मनुष्य दूसरे शरीर (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) की पूर्ण भिन्नता को स्वीकार नहीं करता और विशेष रूप से विचार-शरीर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(सोच) की समानता के प्रति बहुत अधिक आग्रहशील होता है। अत: असम्भव कार्य के कभी भी सम्भव न होने से अन्तत: स्वयं को ही ताप प्रदान करता है।

६. स्वयं को शरीर समझने के कारण मनुष्य यह भूल ही जाता है कि उसका प्रत्येक विचार उसकी अपनी रचना है। कोई भी स्थिति अथवा परिस्थिति उत्प्रेरक तो अवश्य हो सकती है परन्तु उस स्थिति अथवा परिस्थिति को लेकर विचार की रचना करना प्रत्येक मनुष्य के अपने हाथ में है। इस ज्ञान से अपरिचित होने के कारण मनुष्य या तो दोषारोपण-वृत्ति से युक्त हो जाता है अथवा स्वयं को ही बेचारा समझकर ताप-युक्त हो जाता है।

ये मात्र कुछ उदाहरण हैं, जो शरीर अर्थात् देह-भाव में रहते हुए मनुष्य को ताप प्रदान करते हैं और उसी की सात्त्विकता को अथवा सकारात्मक विचार-शक्ति को नष्ट करते हैं। इसी तथ्य को कथा में यह कहकर संकेतित किया गया है कि इल्वल नामक असुर वातापि के माँस को छद्म रूप से पकाकर ब्राह्मणों को खिला देता था जिससे वातापि तो पुन: जीवित हो जाता परन्तु ब्राह्मण नष्ट हो जाते।

तापि शब्द के साथ वा अव्यय को जोड़कर यह संकेत किया गया है कि ताप देने वाली उपर्युक्त वर्णित सभी बातें केवल उसी मनुष्य को संतप्त करती हैं, जो देह-भाव में जीता है। आत्म-भाव में जीने वाला मनुष्य तो इन सब बातों से पूर्णत: अछूता रहकर न केवल ताप को विनष्ट करता है, अपितु देह-भाव का भी पूर्णत: विनाशक हो जाता है, जिसे कथा में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य द्वारा पहले वातापि को पचा लेने के रूप में और फिर उसके भाई इल्वल को भी दग्ध कर देने के रूप में इंगित किया गया है।

४. ब्राह्मण–

ब्राह्मण शब्द मनुष्य की सात्त्विक प्रकृति अथवा सकारात्मक विचार-शक्ति को इंगित करता प्रतीत होता है। ब्राह्मणों द्वारा वातापि के माँस को छद्मयुक्त भोजन के रूप में खा लेने का अर्थ है– सात्त्विक प्रकृति मनुष्य का देहाभिमान के कारण किसी न किसी बात को लेकर संताप युक्त रहना। ब्राह्मणों का पेट फाड़कर वातापि के बाहर निकल जाने परन्तु ब्राह्मणों के मर जाने का अर्थ है– देहाभिमान के कारण उत्पन्न हुए संतापों का तो ज्यों का त्यों बने रहना परन्तु उन संतापों के कारण उत्पन्न हुए नकारात्मक विचारों से सात्त्विक प्रकृति का विनष्ट हो जाना। अगस्त्य द्वारा वातापि को पचा लेने, अत: वातापि के मर जाने का अर्थ है– सबके

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रति आत्म-भाव का फैलाव हो जाने पर किसी भी सम्बन्ध (relation) में आशा, अपेक्षा, आसक्ति आदि न होने के कारण मनुष्य का संताप-मुक्त हो जाना।

५. विन्ध्य पर्वत–

विन्ध्य का अर्थ है– बींधने योग्य तथा पर्वत का अर्थ है– सुदृढ़ या ऊँचा। अतः विन्ध्य पर्वत बींधने योग्य एवं सुदृढ़ अहंकार को इंगित करता प्रतीत होता है। यद्यपि यह अहंकार ही आत्मा रूपी सूर्य के उदय और प्रसार में सबसे बड़ी बाधा है परन्तु आत्म-भाव का फैलाव हो जानेपर यही अहंकार नम हो जाता है, झुक जाता है जिसे कथा में अगस्त्य के कहने से विन्ध्य पर्वत के विनम्र होने के रूप में चित्रित किया गया है।

६. दक्षिण दिशा–

वेदों तथा पुराणों में दक्षिण दिशा दक्षता (कुशलता) प्राप्ति की दिशा कही जाती है। दक्षता प्राप्त करने के लिए मनुष्य के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है– उसका अपना अहंकार। अहंकार के झुकने पर ही मनुष्य के लिए दक्षता-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

७. राम को अगस्त्य से दिव्य शस्त्रों की प्राप्ति–

प्रत्येक मनुष्य को जन्म से प्राप्त हुए अहं (तत्व रूप), बुद्धि, मन तथा इन्द्रिय आदि तत्त्व वे महत्त्वपूर्ण संसाधन (शस्त्र) हैं, जिनका उपयोग वह हर समय किसी न किसी रूप में करता ही है। देह-भाव में स्थित रहने पर ये सब संसाधन (शस्त्र) अपने मूल स्वरूप– दिव्य स्वरूप को खोकर अदिव्यता को धारण कर लेते हैं। परन्तु आत्म-भाव का विस्तार हो जाने पर यही संसाधन पुनः अपने मूलस्वरूप– दिव्य स्वरूप में लौट आते हैं। विष्णु के धनुष, ब्रह्मा के बाण, इन्द्र के तूणीर तथा तलवार के रूप में इसी तथ्य की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है।

कथा का अभिप्राय

प्रस्तुत कथा के माध्यम से दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों का चित्रण किया गया है। पहला तथ्य यह है कि अपनी सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होने पर ही मनुष्य सबके प्रति आत्म-भाव में स्थित हो सकता है तथा दूसरा तथ्य यह है कि सबके प्रति आत्म-भाव रखकर मनुष्य स्वयं ही अनेक प्रकार से लाभान्वित होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पहला तथ्य–

आध्यात्मिक साधना के पथ पर चलने वाले मनुष्य का सबसे पहला लक्ष्य है– अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेना अर्थात् अपनी इस पहचान में स्थित होना कि मैं शरीर नहीं हूँ, अपितु शरीर को चलाने वाला, अजर-अमर-अविनाशी, चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ। आत्म-स्वरूप में स्थित होकर ही मनुष्य अपने समस्त विचारों का निर्माता और नियन्ता बनता है और पहली बार यह समझ पाता है कि आत्मा होने के कारण वह आत्मा के गुणों– सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द से स्वभावतः भरपूर है। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप की यह पहचान होना अत्यन्त श्रेष्ठ स्थिति है, जिसे रामकथा में राम नामक पात्र के रूप में दर्शाया गया है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित होना अत्यन्त श्रेष्ठ है और अनिवार्य भी परन्तु फिर भी वह मनुष्य की आध्यात्मिक साधना का व्यक्तिगत (एकांगी) पक्ष ही है। साधना की पूर्णता के लिए स्वस्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित रहते हुए सबके प्रति भी आत्म-भाव रखना आवश्यक है। यही साधना का सामाजिक पक्ष है, जिसे कथा में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य (अर्थात् आत्मा के विस्तार) के रूप में संकेतित किया गया है।

दूसरा तथ्य–

सबके प्रति आत्म-भाव रखना (राम – अगस्त्य मिलन) मनुष्य को अनेक प्रकार से लाभान्वित करता है।

पहला लाभ है–

देह-भाव (मैं शरीर हूँ– इस भाव में रहना) के कारण अनेक स्रोतों से आ रहे संताप (दुःख) की समाप्ति, जिसे इल्वल और वातापि नामक दो असुरों की कथा के माध्यम से समझाने का प्रयास किया गया है। इस कथा में मनुष्य का देह-भाव ही इल्वल है और संताप ही वातापि नामक असुर है। कथा यह संकेत करती है कि अपने आपको शरीर समझने के कारण सात्त्विक प्रकृति वाला मनुष्य भी कभी आसक्ति से पीड़ित होता है तो कभी भूमिकाओं को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर किसी की कही हुई छोटी-छोटी बातों से दुःखी हो जाता है। कभी पारस्परिक सम्बन्धों में रहते हुए आशाओं, अपेक्षाओं को रखने और फिर उनके पूरा न होने के कारण दुःख का अनुभव करता है तो कभी एक दूसरे की पसन्द-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नापसन्द को ही बहुत बड़ा विषय बनाकर संतप्त होता है। कभी दूसरों को बदलने जैसे असम्भव कार्य को भी सम्भव बनाने की व्यर्थ कोशिश में पीड़ित होता है तो कभी अपनी कमजोर आत्म-शक्ति के कारण अपने ऊपर ही नियन्त्रण न रहने से संतप्त होता है। इसी सम्पूर्ण तथ्य को कथा में ब्राह्मणों द्वारा वातापि नामक असुर को भोजन के रूप में खा लेने के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा पुनः संकेत करती है कि सबके प्रति आत्म-भाव में रहकर मनुष्य इन सब संतापों से छूट जाता है क्योंकि सभी को आत्मरूप समझकर अब वह सबके प्रति समत्व दृष्टि से युक्त हो जाता है और सभी के शरीरों की भिन्नता के प्रति पूर्ण स्वीकार भाव को धारण कर लेता है। इस संताप-मुक्ति को ही कथा में अगस्त्य द्वारा वातापि नामक असुर को पचा लेने के रूप में चित्रित किया गया है।

दूसरा लाभ है–

देह-भाव के कारण अनेक स्रोतों से उत्पन्न हुए अहंकार का झुक जाना, जिसे कथा में विन्ध्य पर्वत के झुकने के रूप में संकेतित किया गया है। मनुष्य के भीतर धन, यश, पद, नाम तथा रूप आदि अनेक स्रोतों से जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है, वही उसके आत्मिक धन (सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द) को व्यवहार क्षेत्र में व्यक्त नहीं होने देता। परिणामस्वरूप मनुष्य गुणों का धनी होते हुए भी निर्धन जैसा बना रहता है।

कथा संकेत करती है कि सबके प्रति आत्म-भाव रखने से जब मनुष्य का अहंकार झुक जाता है, तब ही मनुष्य की उन्नति का मार्ग सदा-सदा के लिए खुल जाता है, जिसे कथा में अगस्त्य मुनि द्वारा दक्षिण दिशा को निर्मल बना देने के रूप में चित्रित किया गया है।

तीसरा लाभ है–

आत्मा के विस्तार अर्थात् सबके प्रति आत्म-भाव से आत्मस्थ मनुष्य को दिव्यता की प्राप्ति, जिसे कथा में मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य से राम को प्राप्त हुए दिव्य अस्त्रों के रूप में इंगित किया गया है। विष्णु के धनुष, ब्रह्मा के बाण, इन्द्र के तरकस तथा तलवार रूप दिव्य अस्त्रों के द्वारा सम्भवतः यह संकेत किया गया है कि आत्मस्थ मनुष्य (राम) को जन्म से ही प्राप्त हुए अहं (मैं तत्त्व), बुद्धि, मन तथा इन्द्रिय रूपी सभी संसाधन अब अपने अर्जित (मलिन) स्वरूप का परित्याग करके पुनः अपने मूलस्वरूप– दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Self-Knowledge leads to Self-Expansion as depicted through the story of Sage Agastya

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇya Kāṇḍa, chapters 11 to 13), there is a story of sage Agastya. It is said that once Rāma with Sītā and Lakṣmaṇa went to meet sage Agastya. On the way, Rāma, highlighting the qualities of Agastya told Lakṣmaṇa that Ilvala and Vātāpi were two brothers and lived together. Ilvala used to invite Brāhmiṇs for food and used to feed them foul food cooked from the flesh of Vātāpi. When Brāhmiṇs used to finish their food, Ilvala used to call his brother Vātāpi and Vātāpi used to come out tearing their stomachs. Thus a lot of Brāhmiṇs died.

Once Sage Agastya also went there and ate his foul food. But as soon as Ilvala called his brother as usual, Vātāpi could not come out because Sage Agastya had digested him. Seeing this end of Vātāpi, Ilvala got angry and tried to kill Agastya but he was also killed by the powerful sage Agastya.

Rāma also told Lakṣmaṇa that once mountain– Vindhya grew high to stop the way of Sun but on Agastya's request, it bowed down on one side and gave way to Sun and never rose again.

Thus describing the powers of Agastya, Rāma reached his hermitage. There everyone greeted each other and Rāma received divine weapons from Sage Agastya as a gift.

The story points out the expansion of Self symbolized as sage Agastya. Agastya word itself means the expansion of the Self.

The story describes significance of this expansion but prior to this expansion, the Knowledge of Self i.e. Ātmajñāna is compulsory which is symbolized as Rāma. Only a person knowing his own Real Self is capable of its Expansion.

The Knowledge of Self, i.e., Ātmajñāna is a marvellous achievement in one's life. It makes a person capable of creating and controlling own thoughts and for the first time he knows his own Real Wealth of happiness, peace, power, purity, love, knowledge and bliss.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

This Knowledge of Self is marvellous but this is the first step of one's spiritual journey. The second step is still awaiting to be fulfilled. This second step is known as the Expansion of the Self symbolized as the meeting of Rāma with Sage Agastya.

The story describes many benefits of this Expansion as follows.

1. All sorrows, miseries and misfortunes diminish as soon as the Self Expands. This is symbolized through the story of Demon Ilvala and Vātāpi.

Living in body-consciousness, a virtuous person lives his life with attachments, desires, expectations and blames. His ego gets hurt. He gets entangled in liking and disliking. This all destroys his positivity symbolized as the dying of Brāhmiṇs by eating foul food served by Demon Ilvala.

But this situation changes when the Self Expands. Now a person lives in equanimity. He accepts everyone as he is. Hence all types of pains come to an end symbolized as the digestion of demon Vātāpi by sage Agastya.

2. One's own ego bow down as soon as Self Expands symbolized as the bending of mountain Vindhya by Sage Agastya. It is important to know that the Ego is a big obstacle in the path of progress as all qualities hide in its presence. But as soon as Ego falls, all qualities again start Expanding.

3. A person gets Divine Weapons as soon as the Self Expands symbolized as having divine weapons by Rāma from Agastya. It appears that the resources like Self, Intellect, Mind and Senses etc. are like weapons which transform into divinity when the Self Expands.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१९. शूर्पणखा कथा

(आत्म-ज्ञान के समक्ष देहासक्ति के प्रभावहीन होने का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
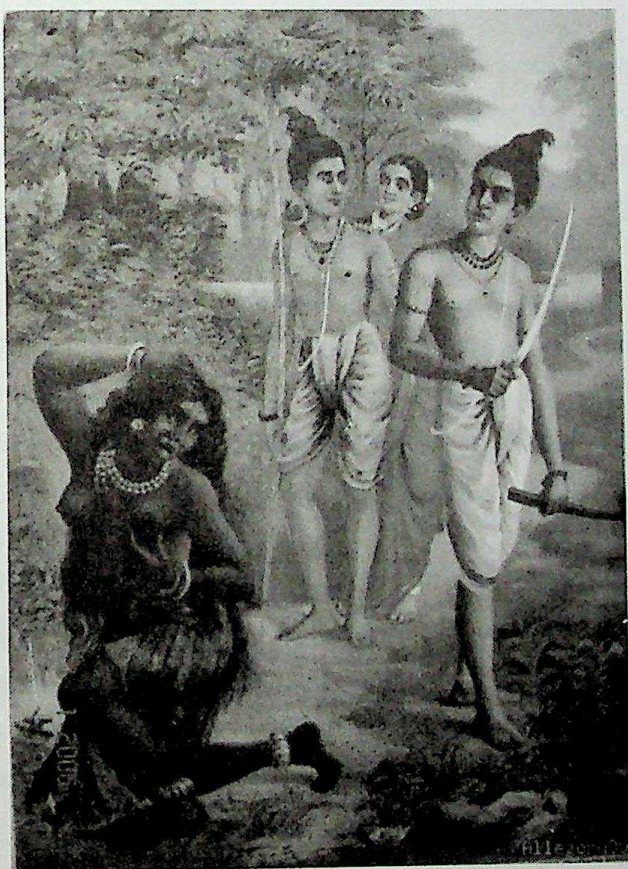
शूर्पणखा की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान के समक्ष देहासक्ति के प्रभावहीन होने का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग १७ से ३०) में वर्णित शूर्पणखा की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

अगस्त्य मुनि ने राम को जब पञ्चवटी में रहने का परामर्श दिया, तब राम, लक्ष्मण और सीता के साथ पञ्चवटी के रमणीय प्रदेश में आ गए और लक्ष्मण द्वारा निर्मित पर्णशाला में सुखपूर्वक रहने लगे। पञ्चवटी के निकट ही गोदावरी नदी बहती थी, जिसमें स्नान करके राम, लक्ष्मण और सीता के साथ बहुत सुख पाते थे। एक दिन परस्पर बातचीत में लगे हुए राम के पास अकस्मात् एक राक्षसी आई जो रावण नामक राक्षस की बहिन शूर्पणखा थी। राम को देखते ही वह राक्षसी काम से मोहित हो गई और राम से पञ्चवटी में आगमन का प्रयोजन पूछने लगी। राम ने कहा कि वे दशरथ के पुत्र हैं और धर्मरक्षा के उद्देश्य से भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता के साथ इस वन में निवास करने के लिए आए हैं। राम द्वारा राक्षसी का परिचय पूछने पर राक्षसी ने कहा कि वह इच्छानुसार रूप धारण करने वाली, रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, खर तथा दूषण की बहन शूर्पणखा है और समस्त प्राणियों के मन में भय उत्पन्न करती हुई इस वन में अकेली विचरती है।

शूर्पणखा ने राम को अपना पति बनाना चाहा परन्तु राम ने परिहासपूर्वक लक्ष्मण को ही पति बनाने का परामर्श दिया। शूर्पणखा लक्ष्मण के पास गई परन्तु लक्ष्मण ने भी जब उसे पुनः राम के पास भेज दिया, तब वह क्रोध से भरकर सीता को खा जाने के लिए उद्यत हुई। राम ने शूर्पणखा को विरूप करने के लिए तुरन्त लक्ष्मण को आज्ञा दी। तदनुसार लक्ष्मण ने तलवार निकालकर शूर्पणखा के नाक-कान काट लिए। नाक-कान कट जाने पर शूर्पणखा जोर से चिल्लाती हुई वन के भीतर भाग गई और जनस्थान-निवासी अपने भाई खर के पास पहुँची। शूर्पणखा के विरूप होने का समस्त वृत्तान्त जानकर खर अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने राम के वध के लिए चौदह राक्षसों को भेजा। राम ने सभी चौदह राक्षसों का जब वध कर दिया, तब शूर्पणखा की ललकार से उत्तेजित हुए खर तथा दूषण ने चौदह

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हजार राक्षसों की सेना के साथ पञ्चवटी में आकर राम के साथ युद्ध किया परन्तु राम ने अकेले ही समस्त सेना के साथ खर तथा दूषण का भी वध कर दिया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है। अत: पहले सभी प्रतीकों को समझ लेना आवश्यक है।

१. पञ्चवटी–

पञ्चवटी शब्द पञ्च और वटी नामक दो शब्दों के मेल से बना है। पञ्च का अर्थ है– पाँच, जो पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों को इंगित करता प्रतीत होता है। वटी (घेरना अर्थ वाली वट् धातु से निर्मित) का अर्थ है– घेरा, बाड़ा, स्थान, वाटी अथवा वाटिका। अत: पञ्चवटी का अर्थ हुआ– पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों का घेरा या बाड़ा या स्थान। मनुष्य के जीवन का सारा व्यापार (व्यवहार) इन्हीं इन्द्रियों के माध्यम से सम्पन्न हो रहा है, इसलिए पञ्चवटी को व्यवहार-क्षेत्र कहा जा सकता है। राम का पञ्चवटी में आगमन यह संकेतित करता है कि आत्म-ज्ञान अब केवल मन (सोच) तक सीमित नहीं रहा है। वह अब मन (सोच) के स्तर से व्यवहार के स्तर पर उतर गया है।

२. पर्णशाला–

पर्णशाला शब्द वास्तव में पणशाला शब्द का ही छिपा हुआ स्वरूप है। पण का अर्थ है– व्यापार, व्यवहार या लेन-देन। अत: पणशाला का अर्थ हुआ– वह स्थान या शाला जहाँ से व्यापार या लेन-देन हो रहा है। चूँकि सम्बन्ध-सम्पर्क में आने पर सारा लेन-देन (इन्द्रियगत व्यवहार) मन:शक्ति अर्थात् विचार-शक्ति (लक्ष्मण) के द्वारा ही सम्पन्न हो रहा है, इसलिए कथा में पञ्चवटी के भीतर लक्ष्मण द्वारा पर्णशाला के निर्माण को दर्शाया गया है।

३. पञ्चवटी के समीप गोदावरी नदी का प्रवाहित होना–

गोदावरी शब्द गो, दा तथा वरी नामक तीन शब्दों के मेल से बना है। गो का अर्थ है– चेतना, दा का अर्थ है– दान तथा वरी का अर्थ है– श्रेष्ठ। अत: गोदावरी का अर्थ हुआ– चेतना के दान का श्रेष्ठ स्थान। पञ्चवटी के निकट गोदावरी का बहना कहकर यह संकेतित किया गया है कि इन्द्रियाँ ही चेतना के दान का (बहने का) श्रेष्ठ स्थान हैं अर्थात् इन्द्रियों के माध्यम से ही सुनना, बोलना, देखना, चखना, उठना, बैठना आदि के रूप में चेतना का दान सतत रूप से हो रहा है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४. शूर्पणखा–

शूर्पणखा शब्द शूर्प तथा नखा नामक दो शब्दों के मेल से बना है। शूर्प का सामान्य अर्थ है– सूपड़ा या छाज जो अनाज को साफ करने के काम आता है। परन्तु यह सूपड़ा अनाज को स्वयं साफ नहीं कर सकता। यह केवल एक यन्त्र है। अनाज की सफाई तभी हो सकती है जब कोई मनुष्य उस यन्त्र (सूपड़े) को हाथ में लेकर उसका समुचित उपयोग करे। मनुष्य को प्राप्त हुआ शरीर भी सूपड़े के समान एक यन्त्र ही है, जिसका समुचित उपयोग तभी किया जा सकता है जब मनुष्य स्वयं को शरीर रूपी यन्त्र से अलग, शरीर का उपयोग करने वाली एक शक्ति, एक आत्मा समझे। परन्तु स्वयं को भूलकर जब मनुष्य शरीर रूपी यन्त्र को ही अपना आप (अर्थात् यह शरीर ही मैं हूँ) समझ बैठता है, तब वह समझ एक खण्डित समझ कही जाती है। अध्यात्म के क्षेत्र में यही खण्डित समझ शरीर-चेतना कहलाती है और पुराणों ने इसे दिति नाम भी दिया है, जिससे दैत्य उत्पन्न होते हैं। वेदों में इसी दिति को शूर्प कहा गया है। यथा– दितिः शूर्पम् अदितिः शूर्पग्राही अर्थात् दिति शूर्प (सूपड़ा) है और अदिति उस शूर्प को ग्रहण करने वाली है। इस प्रकार शूर्पणखा शब्द में शूर्प शब्द शरीर-चेतना अर्थात् मैं शरीर हूँ– इस खण्डित समझ को संकेतित करता है।

नखा शब्द नहा शब्द का तद्भव (बिगड़ा) स्वरूप है और बांधना अर्थ वाली नह् धातु से बना है। अतः शूर्पणखा या शूर्पनहा का अर्थ हुआ– बाँधने वाली शरीर-चेतना। शरीर-चेतना ही मनुष्य को बाँधती है अर्थात् बन्धन में ड़ालती है क्योंकि अब मनुष्य स्वयं को शरीर समझकर सबसे पहले शरीर में आसक्त होता है और फिर शरीर के आधार पर निर्मित हुई अपनी समस्त भूमिकाओं को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर उनमें अत्यन्त आसक्त हो जाता है। अतः बाँधने वाली शरीर-चेतना अर्थात् देहासक्ति को ही शूर्पणखा कहा जा सकता है।

चूँकि देहासक्ति ही धीरे-धीरे अन्य आसक्तियों (भूमिकाओं में आसक्ति, धन-वैभव में आसक्ति, सुखों में आसक्ति आदि) के रूप में प्रकट होती है, इसलिए कथा में शूर्पणखा को इच्छानुसार रूप धारण करने वाली कहा गया है।

देहासक्ति एक नकारात्मक भाव है, इसलिए इसे राक्षसी कहना उचित ही है। देहाभिमान (रावण) की स्थिति में देहासक्ति भी निश्चित रूप से रहती ही है, इसलिए इसे कथा में रावण की बहिन कहकर संकेतित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

५. शूर्पणखा का दण्डकारण्य में विचरना–

शूर्पणखा का दण्डकारण्य में विचरना कहकर यह संकेत किया गया है कि प्रबल विचार और भाव संस्कार रूप (बीज रूप) होकर मनुष्य के गहरे मन (अवचेतन मन) में विद्यमान होते हैं, और सम्बन्धों में इनका प्राकट्य केवल तब ही सम्भव होता है, जब वे चेतन मन के तल पर प्रकट होते हैं। देहासक्ति भी संस्कार रूप (बीज रूप) होकर मन की गहराई (अवचेतन मन) में पड़ी रहती है और वहीं से निकलकर चेतन मन के तल पर प्रकट होकर सम्बन्ध-सम्पर्क में उपस्थित हो जाती है।

६. शूर्पणखा द्वारा सीता को खाने के लिए उद्यत होना–

यहाँ यह संकेत किया गया है कि देहासक्ति के फलस्वरूप ही मनुष्य के भीतर मैं-मेरा और स्वार्थ के विचार, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता, प्रतिद्वन्द्विता के विचार तथा राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि के विचार उपस्थित हो जाते हैं, जो मनुष्य की पवित्रता अर्थात् पवित्र-सोच (सीता) को खा जाने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं।

७. लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के नाक-कान का छेदन–

यहाँ यह संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) अपनी विचार-शक्ति (लक्ष्मण) के सहारे अकस्मात् उपस्थित हुई आसक्ति को इतना प्रभावहीन बना देता है कि वह आसक्ति निर्बल होकर जहाँ से आई थी, वहीं वापस लौट जाती है। आसक्ति को प्रभावहीन कर देना ही उसके नाक-कान को काटना है।

८. राम द्वारा जनस्थान में रहने वाले खर और दूषण का सेना सहित विनाश–

जनस्थान शब्द सामान्य मनुष्य के ऐसे मन को इंगित करता है, जिसमें मैं और मेरा के रूप में कर्कश, दुष्ट सोच सदैव विद्यमान रहती है। मैं और मेरा के रूप में यह कर्कश, दुष्ट सोच मन के भीतर तभी तक फलती-फूलती है, जब तक मनुष्य को स्वस्वरूप– आत्म-स्वरूप का ज्ञान अर्थात् आत्म-ज्ञान नहीं हो जाता। स्वस्वरूप में स्थित होकर यह सोच सहजता से विनष्ट हो जाती है, जिसे कथा में राम द्वारा खर (कर्कश सोच) तथा दूषण (दुष्ट सोच) के वध के रूप में इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कथा में खर की सेना को संख्या की दृष्टि से चौदह और चौदह सहस्र कहकर यह संकेतित किया गया है कि मैं और मेरा की कर्कश, दुष्ट सोच व्यक्तित्व पर इतना व्यापक प्रभाव ड़ालती है कि वह सोच केवल मन तक सीमित नहीं रह पाती अपितु व्यक्तित्व के सभी चौदहों स्तरों- दसों इन्द्रियों तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहं पर भी फैल जाती है।

९. धर्म-रक्षा के उद्देश्य से राम का वन में आगमन–

धर्म-रक्षा का अर्थ है– आत्मा के धर्म (स्व-धर्म) की रक्षा अर्थात् प्रत्येक आत्मा (मनुष्य) सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द के रूप में जिन गुणों (धर्मों) को धारण करता है, उन सब गुणों की जीवन में स्थापना करना। मनुष्य के जीवन का उद्देश्य भी यही है। परन्तु यह उद्देश्य केवल तभी पूरा हो सकता है, जब मनुष्य आत्म-ज्ञान में स्थित होकर व्यवहार क्षेत्र में उतरे अर्थात् स्वयं को तो आत्मरूप जाने ही, दूसरों को भी आत्म-स्वरूप जानकर तदनुसार जीवन में व्यवहार करे। इससे नए विकार निर्मित नहीं होते और मन की गहराई (चित्त) में जो पुराने विकार पड़े हुए हैं, वे भी धीरे-धीरे बाहर आकर निष्प्रभावी हो जाते हैं।

कथा का अभिप्राय

प्रस्तुत कथा देहासक्ति से सम्बन्धित अनेक तथ्यों को निम्न रूप में प्रकट करती है–

१. अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप (मैं अजर-अमर-अविनाशी, चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ) को भूल जाने के कारण जब मनुष्य स्वयं को देह (शरीर) मात्र ही समझने लगता है, तब वह न केवल देह (शरीर) के प्रति आसक्त हो जाता है, अपितु देह(शरीर) से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं से भी आसक्त हो जाता है। इसी देहासक्ति को कथा में शूर्पणखा के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

२. मनुष्य एक शरीर को छोड़ता है तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करता है। इस एक शरीर को छोड़ने तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में यह देहासक्ति एक संस्कार बनकर चित्त (अवचेतन मन) में चली जाती है और वहाँ से निकलकर सतत रूप से चेतन मन के तल पर प्रकट होती रहती है, जिसे कथा में शूर्पणखा का वन से निकलकर दण्डकारण्य में विचरना कहकर इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. व्यवहार क्षेत्र अर्थात् सम्बन्ध-सम्पर्क में आने पर यही देहासक्ति मन से निकलकर व्यवहार में आती है और प्रत्येक मनुष्य को अपने वश में कर लेती है। प्रस्तुत कथा के माध्यम से यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि जब तक मनुष्य को अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप का ज्ञान नहीं हुआ है और वह स्वयं को तथा दूसरों को भी शरीर समझकर जी रहा है, तभी तक वह इस देहासक्ति के वशीभूत होता है। स्वयं को आत्म-स्वरूप और दूसरों को भी आत्म-स्वरूप देखने पर मनुष्य कभी भी इस देहासक्ति के वशीभूत नहीं होता। अतः यह देहासक्ति प्रभावहीन होकर जैसे आती है, वैसे ही लौट भी जाती है, जिसे कथा में शूर्पणखा का विरूप होकर पुनः वन (अवचेतन मन या चित्त) में भाग जाना कहा गया है।

४. यहाँ यह संकेत भी किया गया है कि देहासक्ति जब एक सामान्य (आत्म-ज्ञान से रहित अथवा अज्ञानी) मनुष्य को अपने वश में करती है, तब सम्बन्धों में आसक्ति तथा भौतिक पदार्थों में आसक्ति आदि के रूप में यही देहासक्ति नित्य नया स्वरूप धारण करने के कारण सुन्दर बनी रहती है और मनुष्य को यह पता भी नहीं चल पाता कि उसके दुःखों का कारण नए-नए स्वरूपों में प्रकट होने वाली देहासक्ति ही है। परन्तु आत्म-ज्ञानी के वशीभूत होने पर यही देहासक्ति न केवल नित्य-नूतन स्वरूप को धारण करने से वंचित हो जाती है, अपितु अपने मूल प्रभाव को भी खो देती है। देहासक्ति की इस प्रभाव-हीनता को ही कथा में शूर्पणखा के नाक-कान के छेदन के रूप में इंगित किया गया है।

५. देहासक्ति एक ऐसा विकार है, जिसके कारण मनुष्य की सोच में मैं और मेरा जैसे दुष्ट विचार सहस्रों प्रकार के व्यर्थ विचारों के साथ भरे रहते हैं और प्रबल भी बने रहते हैं। परन्तु आत्म-ज्ञान के द्वारा देहासक्ति के प्रभावहीन अथवा निर्बल हो जाने पर ये सब विचार भी अधिक समय तक टिक नहीं पाते और विनष्ट हो जाते हैं। इसे ही कथा में राम के द्वारा जनस्थान-निवासी खर-दूषण का सेना सहित विनष्ट हो जाना कहा गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Bodily-Attachment gets subdued by Self-Knowledge as depicted through the story of Śūrpaṇakhā

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇya kāṇḍa, chapters 17 to 30), there is a story of demoness Śūrpaṇakhā. It is said that Śūrpaṇakhā suddenly appeared before Rāma while he was sitting comfortably with Lakṣmaṇa and Sītā. Śūrpaṇakhā introduced herself as a demoness wandering in Daṇḍakāraṇya and a sister of Rāvaṇa, Kuṁbhakarṇa, Vibhīṣaṇa, Khara and Dūṣaṇa. She was so infatuated by Rāma that she expressed her desire to marry him but Rāma smilingly asked her to approach Lakṣmaṇa for this purpose. When Lakṣmaṇa also sent her back to Rāma, she got angry and ran towards Sītā to devour her.

Rāma immediately ordered Lakṣmaṇa to make the demoness ugly. Hence, Lakṣmaṇa cut off her nose and ears. She started crying, went back first to Daṇḍakāraṇya and then to Janasthāna where her two brothers – Khara and Dūṣaṇa were living. Hearing the whole incidence from her, Khara and Dūṣaṇa got infuriated and moved to fight and kill Rāma. But Rāma instead killed them along with their huge army.

The story is symbolic and describes many aspects of Bodily-Attachment.

1. When a person forgets his own Real Self and thinks himself as Body, he gets attached first to the Body and then to his Roles (I am mother or father or brother etc.), Designations (I am doctor or engineer etc.), and Images (I am hindu or muslim or Indian etc.) This Attachment is symbolized as demoness Śūrpaṇakhā in the story.

2. In the long journey of births and deaths, this Attachment to Body gets converted into Saṁskāra and lies deep in sub-conscious mind. This Saṁskāra emerges up in conscious mind when a person comes into interaction with others. This is symbolized as coming of Śūrpaṇakhā in Pañcavaṭī from Daṇḍakāraṇya.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

3. This Saṁskāra of Attachment to Body is very powerful. An ignorant person easily gets affected and entangled into it but a person who Knows his own Real Self never gets affected and entangled into it. This Saṁskāra emerges and tries its best to possess him and to overpower him but becomes powerless before him. This is symbolized as approaching of Śūrpaṇakhā in front of Rāma but going back in same direction after loosing her nose and ears.

4. Attachment of Body is so powerful that if not handled properly, it tries to attack and overpower one's purity. This is symbolized as an effort of Śūrpaṇakhā to devour Sītā.

5. Attachment of Body is closely connected to Ego symbolized as Śūrpaṇakhā – a sister of Rāvaṇa (Ego). A person who Knows his own Real Self and becomes the Controller of his Own Thoughts, immediately controls it till Ego is completely subdued.

6. Attachment of Body first brings the thought of Me and Mine and then this Me and Mine produces a long series of negative thoughts. A Self Knowledged person is only capable to destroy this powerful thought of Me and Mine with all other negative thoughts. This is symbolized as killing of Khara and Dūṣaṇa along with their huge army by Rāma.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२०. मारीच राक्षस कथा

(मोह की प्रबलता तथा आत्म-ज्ञान से मोह के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मारीच राक्षस की कथा के माध्यम से मोह की प्रबलता तथा आत्म-ज्ञान से मोह के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ३१ से ४५ तक) में मारीच राक्षस की कथा का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सीता को अपनी पत्नी बनाने के लिए रावण ने जब सीता के हरण का निश्चय किया, तब वह हरण में सहायता के लिए अपने मित्र ताटका-पुत्र मारीच के पास पहुँचा। मारीच बड़ी-बड़ी मायाओं का प्रयोग करने में कुशल था और समुद्र के दूसरे तट पर आश्रम बनाकर रहता था। रावण ने मारीच को अपना सम्पूर्ण अभिप्राय निवेदन किया और मारीच को कहा कि < तुम स्वर्णमृग बनकर राम के आश्रम में जाकर सीता के सामने विचरण करो। स्वर्णमृग पर मोहित होकर सीता जब स्वर्णमृग को पकड़ने के लिए राम से आग्रह करेगी, तब तुम राम को आश्रम से दूर ले जाना और राम के दूर चले जाने पर मैं सुखपूर्वक सीता का हरण कर लूँगा।>

रावण के अभिप्राय को जानकर मारीच ने उसे पूर्व में घटित हुई घटना का वर्णन करते हुए राम के अद्भुत प्रभाव को बतलाया और सीता-हरण के उद्योग से रावण को विरत करने का यथासम्भव प्रयत्न भी किया। परन्तु किसी भी तरह रावण के न मानने पर राम के हाथों अपने वध को निश्चित मानकर मारीच पंचवटी में पहुँचा और स्वर्णमृग बनकर सीता के सामने विचरने लगा। स्वर्णमृग के अद्भुत रूप को देखकर सीता को बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने राम-लक्ष्मण को पुकारा। लक्ष्मण ने मारीच के कपटपूर्ण वेष को पहचान लिया परन्तु चूँकि मारीच के छल से सीता की विचार-शक्ति हर ली गई थी, अत: सीता ने स्वर्णमृग को जीवित अथवा मृत पकड़ने के लिए राम से आग्रह किया। लक्ष्मण के कथन को ध्यान में रखते हुए राम ने मारीच के वध का निश्चय किया और वे मृग के पीछे-पीछे आश्रम से बाहर निकल गए। कपट-रूप-धारी मारीच बार-बार छिपता हुआ जब राम को बहुत दूर ले गया, तब राम ने अपने ब्रह्मास्त्र से उसका वध कर दिया। मरते समय मारीच ने रावण के कार्य को सम्पन्न करने के लिए अर्थात् लक्ष्मण को भी आश्रम से दूर हटाने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के लिए उच्च स्वर से हा सीते, हा लक्ष्मण कहकर पुकारा। लक्ष्मण यद्यपि मारीच की माया को जानते थे, परन्तु सीता के मार्मिक वचनों ने उन्हें भी आश्रम से बाहर निकलने के लिए बाध्य कर दिया। अन्ततः वे राम के पास चले गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा को समझने के लिए प्रतीकों को समझना आवश्यक होगा।

१. मारीच–

मारीच शब्द मरीचि से बना है। मरीचि का अर्थ है– मृगतृष्णा (मृगमरीचिका) या भ्रम। अतः मगतृष्णा या भ्रम से जो उत्पन्न होता है– वह मारीच है। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण अपने आप को शरीर मान लेना ही मनुष्य का सबसे बड़ा भ्रम है और इस भ्रम के कारण मनुष्य के मन-बुद्धि में जो मोह उत्पन्न होता है, उसे ही यहाँ मारीच कहकर संकेतित किया गया है।

मोह शब्द मुह् धातु से बना है, जिसका अर्थ है– मूर्च्छा, बेहोशी, जड़ता, मूढ़ता, मुग्धता अथवा अज्ञानता आदि। अतः व्यावहारिक स्तर पर इस मोह का अर्थ हो सकता है– मन में रहने वाले 'मेरा' के प्रति मन का जुड़ाव। मेरा शरीर, मेरे बच्चे, मेरा घर, मेरा पैसा, मेरा नाम, मेरा पद, मेरा यश अर्थात् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मेरा-मेरा-मेरा और उस मेरा में आसक्ति।

रामकथा में ही बालकाण्ड के अन्तर्गत विश्वामित्र की कथा में मारीच को ताटका नामक राक्षसी और सुन्द नामक दैत्य का पुत्र कहा गया है। ताटका का अर्थ है– मान्यता और सुन्द का अर्थ है– अशुद्ध मन। अतः 'मैं शरीर हूँ'- यह विचार जब एक मान्यता (ताटका) बनकर मनुष्य के चित्त (अवचेतन मन) में अंकित हो जाता है, तब वही मान्यता मनुष्य के अशुद्ध मन (सुन्द दैत्य) से संयुक्त होने पर मोह को उत्पन्न करती है, जिसे कथा में मारीच कहा गया है। चूँकि यह मोह एक प्रबल विकार है, इसलिए कथा में मारीच को राक्षस के रूप में प्रस्तुत किया गया है। शरीर का अभिमानी मन अर्थात् रावण इस मोह से मित्रता रखता है, इसलिए कथा में रावण को (शरीर के अभिमानी मन को) मारीच का (मोह का) मित्र कहा गया है।

मारीच को बड़ी-बड़ी मायाओं के प्रयोग में कुशल कहकर यह संकेत किया गया है कि मोह कभी भी किसी एक रूप में मनुष्य के सामने नहीं आता। यह हर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बार एक नया रूप धारण कर लेता है, इसलिए मनुष्य की पवित्र-सोच (सीता) उन नए-नए रूपों को पहचान नहीं पाती और मोह के चंगुल में फँस जाती है।

२. मारीच का स्वर्णमृग बनना–

मारीच को स्वर्णमृग बनाकर वास्तव में मोह-स्वरूपता को ही भिन्न प्रकार से संकेतित किया गया है। स्वर्ण का अर्थ है– सोना (एक धातुविशेष)। जैसे स्वर्ण मनुष्य को बहुत आकर्षित करता है, वैसे ही मोह (मेरा) भी मनुष्य मन को बहुत आकर्षित करता है। मेरा परिवार, मेरा घर, मेरा बच्चा, मेरा धन, मेरा नाम, मेरा यश मनुष्य के भीतर अधिकार भाव को उत्पन्न करता है और अज्ञान में रहने पर यही अधिकार भाव मनुष्य को बहुत आकर्षित करता तथा सुख की प्रतीति कराता है।

मृग शब्द मृग् धातु से बना है, जिसका अर्थ है– अन्वेषण या खोज। मोह या मेरा एक ऐसा प्रबल विकार है, जो सब प्रकार से खोज करने योग्य है क्योंकि खोज करने पर ही पता चलता है कि वास्तव में जिसे मनुष्य 'मेरा' कहता है वह क्या है? जब मनुष्य स्वयं को आत्मरूप में समझ पाता है, तब ही उसे यह भलीभाँति ज्ञात होता है कि शरीर, परिवार, सम्बन्ध, घर, नाम, रूप, पद तथा धन आदि कुछ भी मेरा नहीं है। मैं आत्मा तो आत्म-गुणों का अनुभव करने के लिए शरीर, परिवार, सम्बन्ध, घर, नाम, रूप, पद, धन आदि सबका कुछ समय के लिए केवल उपयोग करता हूँ और फिर सब कुछ छोड़कर अपनी अगली यात्रा पर निकल जाता हूँ।

इसके विपरीत जब मनुष्य स्वयं को शरीर समझता है, तब भी उसे यह भलीभाँति ज्ञात होता है कि कुछ भी यहाँ मेरा नहीं है क्योंकि शरीर तक को मुझे यहीं छोड़ना पड़ता है, फिर अन्य सब व्यक्तियों अथवा वस्तुओं की तो बात ही कहाँ है?

अत: यह मोह बहुत आकर्षक भी है और मृग्यमाण (खोज के योग्य) भी। आकर्षक और मृग्यमाण होने के कारण ही मारीच रूपी मोह (मेरा) को यहाँ स्वर्णमृग के रूप में प्रस्तुत किया गया प्रतीत होता है।

३. स्वर्णमृग के प्रति सीता की मुग्धता–

मन-बुद्धि की पवित्रता अथवा पवित्र-सोच को ही रामकथा में सीता कहकर इंगित किया गया है। यह पवित्र-सोच (सीता) आत्म-ज्ञान (राम) की शक्ति है क्योंकि पवित्र-सोच के माध्यम से ही जीवन में आत्म-गुणों की अभिव्यक्ति सम्भव होती है। यह पवित्र-सोच भी एक दिन मोह के वशीभूत हो जाती है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

क्योंकि मोह (मेरा के प्रति आसक्ति) एक ऐसा प्रबल विकार है, जो आकर्षण की अद्भुत माया फैलाकर जीवन में प्रविष्ट हो जाता है। मनुष्य की पवित्र-सोच (पवित्र मन-बुद्धि) उस अद्भुत माया (भ्रम) को पहचान नहीं पाती और अनायास उस आकर्षण से बँध जाती है।

४. लक्ष्मण द्वारा कपटमृग को पहचान लेना–

विचारों की निर्माता और नियन्ता शक्ति को ही रामकथा में लक्ष्मण कहकर संकेतित किया गया है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि मनुष्य की विचार-शक्ति (लक्ष्मण) यद्यपि मोह के कपटपूर्ण स्वरूप को पहचान लेती है और उसके प्रति मनुष्य को सचेत भी करती है, परन्तु मोह में फँस चुकी अथवा मोह के अधीन हो चुकी मनुष्य की सोच (सीता) उस समय इतनी प्रभावी हो जाती है कि उसके समक्ष विचार-शक्ति भी कुछ नहीं कर पाती, मानो पंगु हो जाती है।

५. राम द्वारा मारीच का वध–

आत्म-ज्ञान अर्थात् आत्म-स्वरूप में अवस्थिति को ही रामकथा में राम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। आत्म-ज्ञान का अर्थ है– मनुष्य को यह समझ में आ जाना कि वह शरीर नहीं है अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी चैतन्य-शक्ति आत्मा है। शरीर उसके पास एक श्रेष्ठतम उपकरण की भाँति है, जिसका उसे श्रेष्ठतम उपयोग करना है और शरीर रूप उपकरण का श्रेष्ठतम उपयोग यही है कि आत्म-गुणों अर्थात् सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द में रहते हुए वह समस्त कर्त्तव्य कर्म करे। इस प्रकार स्वयं को आत्मरूप जान लेने पर जब मनुष्य दूसरों को भी आत्म-दृष्टि से देखने लगता है, तब शरीर से सम्बन्ध रखने वाले सभी सम्बन्धों का पूर्ण ध्यान रखते हुए तथा सभी सम्बन्धों में सम्यक् व्यवहार करते हुए भी वह मोह में नहीं फँसता। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि स्वयं मोह ही उस आत्म-ज्ञान के समक्ष उपस्थित होने से ड़रने लगता है क्योंकि आत्म-ज्ञान के समक्ष मोह के उपस्थित होने का अर्थ ही है– मोह की समाप्ति, मोह की मृत्यु। इसे ही कथा में राम द्वारा मारीच के वध के रूप में इंगित किया गया है।

कथा का अभिप्राय

बहुत समय से (अर्थात् अनेकानेक जन्मों से) अपने आपको शरीर मानते रहने के कारण मनुष्य के मन के भीतर यह सुदृढ़ अभिमान एक संस्कार (एक छाप)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के रूप में अंकित हो जाता है कि वह एक शरीर है। फिर इसी देहाभिमान के कारण सबसे पहले 'मैं-मेरा' और स्वार्थ का विचार उत्पन्न होता है, जो धीरे-धीरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, ईर्ष्या तथा आसक्ति जैसे सभी विकारों को उत्पन्न कर देता है। ये सब विकार भी जब अवचेतन मन (चित्त) के भीतर जड़ें जमा लेते हैं, तब संस्कार के रूप में जाने जाते हैं और इन सभी संस्कारों का विनाश केवल तभी संभव होता है, जब मनुष्य आत्म-ज्ञान में स्थित होकर अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता बन जाता है। प्रस्तुत कथा द्वारा मोह नामक विकार के सम्बन्ध में दो संकेत किए गए हैं।

पहले संकेत के रूप में यह स्पष्ट किया गया है कि मोह नामक विकार इतना सुन्दर स्वरूप धारण करके मनुष्य के जीवन में उपस्थित होता है कि मनुष्य अकस्मात् उसे पहचान नहीं पाता और मनुष्य की सोच चाहे वह कितनी भी पवित्र हो, उस सुन्दर स्वरूप पर मुग्ध हो जाती है। स्वर्ण-मृग को देखकर सीता की मुग्धता के रूप में इसी तथ्य को इंगित किया गया है। इसके साथ ही मोह नामक विकार इतना प्रबल भी होता है कि वह कुछ क्षणों के लिए मनुष्य की विचार-शक्ति को प्रभावहीन कर देता है अर्थात् मनुष्य समझ तो लेता है कि यह मोह है, जो उसे वशीभूत कर रहा है परन्तु समझकर भी वह तत्क्षण उसका विनाश नहीं करता, अतः विचार-शक्ति मानो पंगु हो जाती है। लक्ष्मण द्वारा स्वर्ण-मृग के कपटी वेश को पहचान लेने पर भी तत्काल उसे न मारने के रूप में इसी तथ्य को व्यक्त किया है।

दूसरे संकेत के रूप में यह स्पष्ट किया गया है कि भले ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप (आत्म-ज्ञान) में स्थित हो गया हो, अपने विचारों का निर्माता तथा नियन्ता बन गया हो तथा उसकी सोच भी पूर्णतः पवित्र तथा निर्मल हो, परन्तु जब तक चित्त (अवचेतन मन) के भीतर विकारों के संस्कार (बीज) पड़े हुए हैं, तब तक वे विकार चित्त से बाहर निकलेंगे और मनुष्य के जीवन को प्रभावित भी करेंगे। अन्तर केवल इतना होगा कि आत्म-ज्ञान में रहने वाला मनुष्य अपने ज्ञान रूप शस्त्रों की सहायता से उन्हें निरन्तर विनष्ट करता जाएगा और शीघ्र ही सभी विकारों को विनष्ट करके जीवन में सुराज्य को स्थापित कर लेगा। चूँकि आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य अपने शरीर में और शरीर के सम्बन्धों में कभी आसक्त नहीं होता, इसलिए जीवन-व्यवहार में अकस्मात् प्रकट हुए मोह को भलीभाँति देख लेना ही उसके लिए पर्याप्त होता है और वही मोह की मृत्यु भी है। राम की दृष्टि से स्वर्ण-मृग का बार-बार अदृश्य हो जाना परन्तु दृश्य होते ही राम द्वारा उसका वध कर देना इसी तथ्य को संकेतित करता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The Power of Delusion and its Destruction by Self-Knowledge as described through the Story of Demon Mārīca

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇya kāṇḍa, Chapters 31 to 45), there is a story of Demon Mārīca. It is said that when Rāvaṇa decided to kidnap Sītā, he approached Mārīca for help. Rāvaṇa expressed his wish to him and requested to accompany him to go to Pañcavaṭī in the form of a Golden Deer. Rāvaṇa had made a plan that Sītā would be attracted to that Golden Deer and Rāma would run after him to get him alive or dead. Therefore, as soon as Rāma would go far away from the hermitage, he (Rāvaṇa) would dare to enter and kidnap Sītā.

After listening to this plan, Mārīca tried his best to dissuade Rāvaṇa from doing so highlighting the powers of Rāma. But when Rāvaṇa did not listen to his advice, Mārīca ultimately had to accompany him to go to Pañcavaṭī in the form of Golden Deer as per Rāvaṇa's plan. While Mārīca was loitering in front of Sītā, She got attracted and desired to possess that Deer. But Lakṣmaṇa could understand clearly that the Deer was illusiory, hence he cautioned Rāma and Sītā. But inspite of this, Sītā insisted upon Rāma to bring that Deer live or dead. So Rāma had to decide to chase that Deer.

The Deer went far away, disappearing time and again, but at last, Rāma followed and killed him. Now the Deer transformed as a Demon (in his original form) and cried loudly the names of Sītā and Lakṣmaṇa in the voice of Rāma. Sītā heard that voice and told Lakṣmaṇa to go for the help of Rāma. Lakṣmaṇa tried to dissuade her as he knew that it was an illusion but due to sarcastic and bitter words of Sītā, he had to go.

The story is symbolic and points out the Delusion of Mind. Delusion means– a strong Attachment to Me and Mine called as Moha symbolized here as demon Mārīca. This Delusion is a strong Vice and originates from Illusion. When a person thinks himself a body and lives in this thought for a very-very long

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

time, then this Illusory thought converts into a Belief and gives rise to Delusion. This Delusion lies in sub-consious mind, comes up occasionaly to conscious mind and then harms a person's thinking heavily.

The story depicts that this strong Delusion overpowers a body-conscious person but submits to a soul-conscious person. This Delusion overpowers one's Purity symbolized as Sītā and influences one's Thinking symbolized as Lakṣmaṇa but is ultimately destroyed by Self-Knowledge symbolized as killing of demon Mārīca by Rāma.

The story also tells that this Delusion is nothing in itself but it controls a person's Purity (Sītā) in such an overwhelmingly attractive way that the Person (Rāma) never realizes as to when and how his Purity was trapped. This is symbolized as attracting of Sītā by Mārīca in the form of a Golden Deer.

This Deceitful Form of Golden Deer i.e. Svarṇa Mṛga for Delusion is very purposeful. Both the words Golden (Svaṛna) and Deer (Mṛga) are worth investigation. Delusion is very attractive like the gold, therefore 'Golden' word has been used. 'Deer' word is actually 'Mṛga' in the story. In Sanskrit language 'Mṛga' means investigating or searching. As Delusion is a strong vice, therefore this Delusion is worth investigation. A person perfectly knows that ultimately he has to leave everything even his own body but still he is not alert and gets entangled in Attachment i.e., Me and Mine.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२१. संन्यासी-वेश-धारी- रावण द्वारा सीता-हरण कथा

(छलयुक्त देहाभिमान के द्वारा पवित्र–सोच के हरण का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संन्यासी-वेशधारी रावण द्वारा सीता-हरण के माध्यम से छलयुक्त देहाभिमान के द्वारा पवित्र-सोच के हरण का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ४६ से ४९ तक) में वर्णित सीता-हरण की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सीता के कठोर वचन सुनकर जब लक्ष्मण पञ्चवटी से बाहर निकल गए, तब रावण को आश्रम में प्रवेश करने का अवसर मिल गया और वह संन्यासी का वेश धारण करके सीता के समीप पहुँच गया। रावण ने सीता की अनेक प्रकार से प्रशंसा की और सीता भी संन्यासी वेशधारी रावण का अतिथि रूप में पूजन करके तथा भोजन के लिए फल-मूल प्रदान करके राम और लक्ष्मण के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। रावण द्वारा परिचय पूछने पर सीता ने जब राम-लक्ष्मण के साथ अपने वन में आगमन का समस्त वृत्तान्त बताकर रावण से भी उसका परिचय पूछा, तब रावण ने राक्षस रूप में अपना परिचय देते हुए सीता से उसकी पत्नी बन जाने का आग्रह किया। रावण के वचन सुनकर सीता कुपित हो उठी और रावण को धिक्कारने लगी। रावण ने भी रोष में भरकर सीता से पत्नी बन जाने का पुनः आग्रह किया परन्तु सीता के न मानने पर कुपित होकर संन्यासी वेश को त्याग दिया। राक्षस रूप धारण करके रावण ने सीता को अपनी गोद में उठा लिया और माया-निर्मित दिव्य रथ पर बैठकर लंकापुरी में पहुँच गया।

कथा की प्रतीकात्मकता

सर्वप्रथम कथा के प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी होगा।

१. सीता–

रामकथा में सीता नामक पात्र मन-बुद्धि की पवित्रता अथवा पवित्र-सोच को इंगित करता है। जब मनुष्य प्रयत्नपूर्वक निरन्तर ज्ञान को धारण करता हुआ श्रेष्ठ एवं उच्च विचारों को आत्मसात् करता है और व्यर्थ एवं अनुपयोगी विचारों को मन-बुद्धि से बाहर निकाल देता है, तब एक दिन उसकी सोच अवश्य पवित्र हो जाती है, जिसे रामकथा में सीता की उत्पत्ति-कथा के अन्तर्गत जनक द्वारा मन-

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बुद्धि रूपी भूमि में ज्ञान का हल चलाकर सीता की प्राप्ति के रूप में इंगित किया गया है।

यह पवित्र-सोच प्रत्येक आत्मा (मनुष्य) की शक्ति है क्योंकि आत्मा के सभी गुण अर्थात् सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द आदि पवित्र-सोच के माध्यम से ही जीवन में अभिव्यक्त हो पाते हैं। अपवित्र सोच आत्म-गुणों को अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं है। उदाहरण के लिए– आत्मा का सहज गुण है– प्रेम। परन्तु वह प्रेम परस्पर सम्बन्धों में केवल तभी प्रकट हो पाता है, जब मनुष्य की सोच शुद्ध-पवित्र होती है।

यह जान लेना भी आवश्यक है कि मनुष्य की पवित्र-सोच ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सोच के आधार पर ही उसका वाचिक तथा कायिक कर्म सम्पन्न होता है। सोच पवित्र होगी तो बोलने में और कर्म करने में पवित्रता अपने आप आ जाएगी। उन दोनों पर अलग से ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इसीलिये जीवन-सम्बन्धों में रहते हुए मनुष्य की पवित्र-सोच ही महत्त्वपूर्ण होती है। वही सम्बन्धों को प्रेमपूर्ण, विश्वासपूर्ण तथा स्थायी बनाती है। अपवित्र सोच की स्थिति में मनुष्य चाहे कितना भी मधुर भाषण करे अथवा कर्म का भी कितना ही ध्यान रखे, फिर भी सम्बन्ध प्रेमपूर्ण, विश्वासपूर्ण नहीं हो सकते क्योंकि अपवित्र सोच की नकारात्मक तरंगें वचन और कर्म से पहले पहुँचकर सम्बन्धों की समरसता को भंग कर देती हैं।

२. रावण–

अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने से तथा शरीर के ही दिखाई पड़ने परन्तु आत्मा के दिखाई न पड़ने से मनुष्य यह मानने लगता है कि वह एक शरीर है। फिर मृत्यु के रूप में एक शरीर को छोड़ने तथा जन्म के रूप में दूसरे शरीर को ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में धीरे-धीरे स्वयं को शरीर मानना इतना दृढ़तर होता चला जाता है कि मनुष्य अपने समान दूसरे को भी शरीर मानकर न केवल शरीर से जुड़ जाता है अपितु शरीर से सम्बन्ध रखने वाली अपनी समस्त भूमिकाओं से (मैं माँ हूँ, मैं पिता हूँ– आदि के रूप में), अपने पदों से (मैं डाक्टर हूँ, मैं इंजीनियर हूँ– आदि के रूप में), अपनी छवियों से (मैं अमीर हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ– आदि के रूप में) यहाँ तक कि अपने विषय में निर्मित की गई अपनी धारणाओं से भी (मैं हिन्दू हूँ, मैं भारतीय हूँ– आदि के रूप में) ऐसा जुड़ता चला जाता है कि उन्हें ही अपना आप- अपना सत्य स्वरूप समझने लगता है। यही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देहाभिमान है, जिसे रामकथा में रावण कहकर संकेतित किया गया है।

यह देहाभिमान मनुष्य को दुःखी करता है, पीड़ित करता है क्योंकि मनुष्य अपनी भूमिका, पद, छवि अथवा धारणा से जुड़कर जब उसे ही अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेता है, तब किसी के भी द्वारा उस भूमिका, पद, छवि अथवा धारणा के प्रति कुछ भी कह दिए जाने पर वह स्वयं को ही आहत, पीड़ित अथवा दुःखी अनुभव करता है। रावण शब्द का अर्थ ही है– रुलाने वाला, पीड़ित करने वाला, जो रुलाना अर्थ वाली रु धातु में णिच् और ल्युट् प्रत्ययों के योग से बना है। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण जब मनुष्य अपनी भूमिका अथवा पद आदि को ही अपना वास्तविक होना मान लेता है, तब उन भूमिकाओं अथवा पदों का एक शोर (रव) मन के भीतर निरन्तर विद्यमान रहता है। इस शोर अर्थात् रव के आधार पर भी रावण नाम सार्थक प्रतीत होता है।

यह देहाभिमान ही मनुष्य के भीतर पहले 'मैं' और 'मेरा' को उत्पन्न करता है और फिर उसको स्वार्थ की तरफ धकेल देता है। स्वार्थ में पड़े हुए मनुष्य के भीतर धीरे-धीरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, ईर्ष्या तथा आसक्ति आदि सभी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, जिन्हें रामकथा में रावण के परिवार के रूप में इंगित किया गया है।

एक शरीर को छोड़ने तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में यही देहाभिमान अपने विकार रूपी परिवार के साथ संस्कार रूप (छाप रूप) होकर गहरे मन अर्थात् चित्त या अवचेतन मन में चला जाता है और गहरे मन (चित्त या अवचेतन मन) में चले जाने पर फिर उसका विनाश करना सहज नहीं रह जाता क्योंकि स्वयं को शरीर मानने के कारण जिस देहाभिमान की उत्पत्ति होती है, उसी देहाभिमान को शरीर-ज्ञान अथवा शरीर-भाव में रहते हुए कभी नहीं मारा जा सकता। शरीर-ज्ञान अथवा शरीर-भाव से ऊपर उठकर अर्थात् आत्म-ज्ञान (आत्म-भाव) में स्थित होकर ही इस संस्कार रूप धारण कर चुके देहाभिमान का विनाश करना सम्भव होता है, जिसे रामकथा में राम द्वारा रावण का विनाश कहा गया है।

परन्तु चित्त (अवचेतन मन) में पड़े हुए संस्कार केवल चित्त (अवचेतन मन) तक सीमित नहीं रहते। वे चित्त से निकलकर चेतन मन को प्रभावित करते हैं और चेतन मन पर प्रकट हुए वे विकार मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन-व्यवहार में फैल जाते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हैं, जिसे रामकथा में पञ्चवटी तथा जनस्थान में रावण के परिवार की विद्यमानता कहकर संकेतित किया गया है।

रामकथा इस विशेष तथ्य को प्रकट करती है कि रावण और राम दोनों ही मनुष्य-मन के भीतर विद्यमान होते हैं। एक ओर संस्कार रूप धारण कर चुका देहाभिमान (रावण) अपने विकार रूप परिवार के साथ मनुष्य-मन की गहराई (चित्त या अवचेतन मन) में विद्यमान है, तो दूसरी ओर इस देहाभिमान को विनष्ट करने के लिए आत्म-ज्ञान की जाग्रति भी एक न एक दिन मनुष्य-मन के अन्दर ही होती है। चूँकि देहाभिमान (रावण) बहुत पुराना एवं पुष्ट होता है परन्तु आत्म-ज्ञान (राम) एकदम नया, इसलिए यह जान लेना भी अत्यन्त आवश्यक होता है कि संस्कार रूप धारण कर चुके देहाभिमान को आत्म-ज्ञान द्वारा एकदम विनष्ट नहीं किया जा सकता। आत्म-ज्ञान (राम) अनेक प्रकार के ज्ञान रूपी शस्त्रों और शक्तियों के सहारे धीरे-धीरे ही देहाभिमान का विनाश करने में समर्थ होता है। दूसरी ओर, प्रबल देहाभिमान (रावण) भी आत्म-ज्ञान (राम) को वशीभूत करने का यथासम्भव प्रयास करता है और इसी तारतम्य में वह आत्म-ज्ञान को कमजोर करने के लिये आत्म-ज्ञान की शक्ति रूपा उसकी पवित्र-सोच (सीता) का हरण करता है, जिसे कथा में रावण द्वारा सीता का हरण कहकर इंगित किया गया है।

३. रावण द्वारा संन्यासी वेश को धारण करना–

वेश शब्द आचरण का वाचक है, अतः संन्यासी वेश द्वारा यहाँ छलपूर्ण आचरण को इंगित किया गया है। रावण द्वारा संन्यासी वेश को धारण करने का अर्थ है– देहाभिमान के कारण मनुष्य का छलपूर्ण आचरण करना। देहाभिमान में स्थित हुआ मनुष्य जब विकारों को भी सही मान लेता है अथवा विकारों के ऊपर सही होने का पत्रक (tag) लगा देता है अथवा विकारों में रहकर भी विकारों को सही मानता हुआ तदनुसार आचरण करता है, तब उस आचरण को छलपूर्ण आचरण कहा जाता है। उदाहरण के लिए– झूठ बोलते हुए भी झूठ को सही मान लेना और तदनुसार जीना।

४. संन्यासी वेशधारी रावण द्वारा पञ्चवटी से सीता का हरण–

जैसे संन्यासी का वेश सर्वमान्य है, उस पर किसी को सन्देह नहीं होता, उसी प्रकार देह-ज्ञान अथवा देहाभिमान के कारण जीवन में जब काम-क्रोधादि सभी विकार मान्य हो जाते हैं अर्थात् मनुष्य यह स्वीकार करने लगता है कि क्रोध करना तो आवश्यक है क्योंकि अमुक व्यक्ति ने काम ही गलत किया था, आहत होना

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तो स्वाभाविक है क्योंकि अमुक व्यक्ति ने बात ही ऐसी कही थी, प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता तो अनिवार्य है क्योंकि उसके बिना तो काम ही नहीं चल सकता, अपनों से आशाएँ, अपेक्षाएँ तो रहेंगी ही, सच्चाई, ईमानदारी से अब काम नहीं चल सकता आदि-आदि, तब ही वास्तव में पवित्रता अथवा पवित्र-सोच का हरण होता है। तात्पर्य यह है कि मात्र देहाभिमान पवित्र-सोच को नहीं हरता। देहाभिमान के साथ उत्पन्न होने वाले काम-क्रोधादि विकारों को ही जब मनुष्य सही के धरातल पर स्थापित कर देता है, तभी जीवन -व्यवहार से पवित्र-सोच का हरण सम्भव होता है, जिसे कथा में रावण द्वारा पञ्चवटी से सीता का हरण कहकर संकेतित किया गया है।

कथा का अभिप्राय

मनुष्य-मन के भीतर दैवी और आसुरी दोनों पक्ष विद्यमान हैं। रामकथा में वर्णित राम दैवी पक्ष का और रावण आसुरी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं। आसुरी पक्ष के ऊपर दैवी पक्ष की विजय ही जीवन का उद्देश्य है और रामकथा का उद्देश्य भी यही है। परन्तु आसुरी पक्ष इतना शक्तिशाली होता है कि वह दैवी पक्ष को कमजोर बनाने का सतत प्रयास करता रहता है। रावण द्वारा सीता का हरण आसुरी पक्ष द्वारा दैवी पक्ष को कमजोर बनाने का ही एक प्रयास है।

सीता मनुष्य की पवित्र-सोच को इंगित करती है। यह पवित्र-सोच आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) की शक्ति है, जिसका हरण सरल नहीं है। परन्तु देहाभिमान रूप विकार दो प्रकार के छल का प्रयोग करके इस पवित्र-सोच का हरण करता है। पहले छल के रूप में वह मोह नामक विकार की सहायता लेता है, जो आकर्षण फैलाकर पवित्र-सोच को छलता है। मारीच की कथा के माध्यम से इसी छल का चित्रण किया गया है। दूसरे छल के रूप में वह विकारों के औचित्य-प्रतिपादन (विकारों को सही ठहराना) का सहारा लेता है और जीवन-व्यवहार से पवित्र-सोच को हर लेता है। संन्यासी वेश धारी रावण द्वारा सीता-हरण के माध्यम से इसी पक्ष का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप-आत्म-स्वरूप को भूलकर अनात्म-स्वरूप में स्थित हो जाता है अर्थात् अपनी भूमिकाओं तथा पदों आदि को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर (यही मैं हूँ-ऐसा समझकर) उनसे जुड़ाव बना लेता है, तब उसे ही देहाभिमान के रूप में जाना जाता है। यह देहाभिमान यद्यपि सभी विकारों का मूल है परन्तु यह भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सीधे-सीधे पवित्र-सोच को कभी नहीं हरता। जीवन-व्यवहार से पवित्र-सोच का हरण केवल तब होता है, जब मनुष्य देहाभिमान तथा उससे उत्पन्न हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, ईर्ष्या, आसक्ति जैसे सभी विकारों को विकार के रूप में स्वीकार न करके उन्हें उचित मानने लगता है और उस औचित्य को तर्कसंगत भी ठहराता है। उदाहरण के लिए–

कामनाएँ, आशाएँ, अपेक्षाएँ विकार रूप हैं, जो किसी भी सम्बन्ध को हानि पहुँचाती हैं। परन्तु मनुष्य स्वयं को भूमिका (role) समझकर इस अधिकार-भाव में रहते हुए कि अपनों से तो आशाएँ, अपेक्षाएँ होंगी ही, उस आशा, अपेक्षा रूप विकार को उचित ठहरा देता है। फिर ये आशाएँ, अपेक्षाएँ ही पूरी न होने पर मनुष्य की सोच को नकारात्मक बना देती हैं और पवित्र- सोच का हरण हो जाता है।

इसी प्रकार क्रोध एक विकार है, जो प्रत्येक सम्बन्ध को हानि पहुँचाता है। परन्तु मनुष्य यह कहकर कि अमुक-अमुक परिस्थिति में क्रोध का आना तो स्वाभाविक और सहज है– इस क्रोध रूप विकार को उचित ठहरा देता है।

झूठ और बेईमानी विकार हैं, जो मनुष्य की सोच को निरन्तर दूषित करते हैं। परन्तु मनुष्य यह सोचकर और समझकर कि इनके बिना आज के समय में काम नहीं चलता, पहले इन विकारों को मान्य कर लेता है और फिर यही मान्यता उसकी पवित्र-सोच को हर लेती है।

प्रतिक्रिया नामक विकार अभिमान से उत्पन्न हुआ एक प्रथम विकार है और मनुष्य की निर्बलता को दर्शाता है। परन्तु मनुष्य इस प्रतिक्रिया रूप विकार को भी जब सहज और स्वाभाविक मानकर उचित ठहरा देता है, तब पवित्र-सोच का निश्चित रूप से हरण हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि देहाभिमान से उत्पन्न हुए किसी भी विकार को सही मानना अथवा सही ठहराना उसके ऊपर सही होने का एक छलपूर्ण आवरण ड़ालना है और इसी छलपूर्ण आवरण के कारण जीवन-व्यवहार से पवित्र-सोच का हरण हो जाता है। यह छलपूर्ण आवरण ठीक वैसा ही होता है जैसे कोई मनुष्य वास्तव में संन्यासी न होते हुए भी संन्यासी के वस्त्र ग्रहण कर ले।

विकार को विकार मानकर एक दिन मनुष्य उस विकार से मुक्त हो ही जाता है। परन्तु विकार को सही के रूप में स्थापित कर लेने पर अथवा विकार को न्यायसंगत ठहराने पर मनुष्य कभी भी उस विकार से मुक्त नहीं हो सकता। स्वयं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के प्रति किया गया यही छलपूर्ण आचरण मनुष्य की पवित्र-सोच को हर लेता है, जिसे कथा में संन्यासी वेश-धारी रावण द्वारा सीता-हरण के रूप में व्यक्त किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Deprivation of Pure-Thinking by Ego is depicted as the kidnapping of Sītā by Rāvaṇa

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇya kāṇḍa, chapters 46 to 49), there is a story named Sītā-haraṇa by Rāvaṇa. It is said that Rāvaṇa approached Sītā in the deceitful costume of a saint when she was alone in her hermitage in Pañcavaṭī. Sītā innocently and respectfully offered hospitality to him and asked him to wait for Rāma and Lakṣmaṇa's arrival.

Rāvaṇa asked Sītā to introduce herself. Sītā described the whole story of their coming to the forest. Then Sītā also asked Rāvaṇa to give his introduction. He introduced himself as a Demon and solicited her to become his wife. Sītā thereupon got furious and admonished him. But Rāvaṇa was so determined to kidnap her that he left his deceitful costume, assumed his original costume, kidnapped her and proceeded to Laṅkāpurī.

The story is symbolic and related to the Deprivation of Purity by Ego symbolized as the kidnapping of Sītā by Rāvaṇa.

This story points to this important aspect that the Purity of Thoughts is never Deprived directly by Ego. Ego Deprives Purity in a Deceitful Way.

Firstly, Ego deceives Purity through Delusion which is described through the story of Mārīca attracting Sītā in the garb of a Golden Deer (see previous article).

Secondly, Ego deceives Purity through this Mistaken Thinking that Vices are Necessary in life. They are Natural and Normal. For example –

1. Desires and Expectations are such vices which harm a person affecting his relations. But due to ego, a person becomes so possessive in his roles that he starts expecting more from relations assuming it justifiable and then creates a lot of negative thoughts when his expectations are not fulfilled.

2. Similarly, Anger is such a vice which depletes one's energy. But a person habitually living in anger assumes it to be

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

natural and normal and adopts it in his relations. He creates a lot of negative thoughts through which his purity disappears.

3. Dishonesty is always harmful but an egoistic person uses it in life , thinking that it is a weapon to get work done and to succeed in life.

4. Reaction is always a vice which originates from low self-esteem. But considering it natural and normal and justifiable, a person never wants and tries to get rid of it. Now wicked thoughts develop and purity disappears.

In short, it can be said that every vice is a vice. Considering them justifiable is merely Self Deception and a Deceitful Act. This act deprives one from Attaining Purity. This is symbolized as the kidnapping of Sītā by Rāvaṇa in the costume of a saint.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२२. जटायु एवं सम्पाति कथा

(उच्च मन में रहने वाले दो विशिष्ट गुणों का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जटायु एवं सम्पाति नामक पात्रों के माध्यम से उच्च मन में रहने वाले दो विशिष्ट गुणों का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ४९ से ५१ तक) में जटायु से सम्बन्धित तथा किष्किन्धा काण्ड (सर्ग ५६ से ६३ तक) में सम्पाति से सम्बन्धित जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

जटायु एवं सम्पाति रामकथा के दो विशेष पात्र हैं। दोनों को गृध्रराज कहा गया है। दोनों भाई-भाई हैं परन्तु रामकथा में दोनों का प्रवेश अलग-अलग समय पर दर्शाया गया है।

जटायु का प्रवेश रामकथा में उस समय होता है, जब राम और लक्ष्मण के दूर चले जाने से बलशाली रावण सीता का हरण करता है और अपहृत सीता रावण की कैद से छूटने के लिए सहायतार्थ पुकारती हुई करुण विलाप करती है। वृक्ष के ऊपर सोए हुए गृध्रराज जटायु सीता की रक्षा हेतु तुरन्त तत्पर होकर पहले तो रावण को सीता की मुक्ति हेतु अनेक प्रकार से समझाते हैं परन्तु बाद में रावण के न मानने पर उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं। दोनों का परस्पर युद्ध होता है परन्तु प्राणपण से लड़ते हुए जटायु का प्रबल रावण वध कर देता है।

सम्पाति का प्रवेश रामकथा में उस समय होता है जब रावण द्वारा अपहृत हुई सीता लंकापुरी में कैद हो जाती है और सीता की खोज हेतु सुग्रीव द्वारा भेजे गए गज, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, अंगद, हनुमान, जाम्बवान तथा तार प्रभृति सभी वानर सीता को खोजते-खोजते थक जाते हैं और सीता के न मिलने से निराश होकर अन्त में मृत्यु को ही एकमात्र उपाय मानकर मरणान्त उपवास के लिए बैठ जाते हैं। सीता-हरण से सम्बन्धित समस्त प्रसंगों पर जब वे वानर परस्पर बातचीत करते हैं, तब वहीं विन्ध्य पर्वत पर बैठे हुए गृध्रराज सम्पाति अपने छोटे भाई जटायु के वध का समाचार सुनकर अत्यन्त व्यथित हो जाते हैं और जटायु के विषय में जानने के लिये उत्सुक होकर वानरों के साथ तत्सम्बन्धित वार्तालाप आरम्भ करते हैं। वानरों से सीता-हरण के समस्त वृत्तान्त को सुनकर और सीता की प्राप्ति हेतु उनकी अत्यन्त व्यग्रता एवं उत्साह को देखकर सम्पाति उन्हें 'यथोचित दिशा-निर्देश देते

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हुए कहते हैं कि सीता रावण के अन्त:पुर में कैद हैं और राक्षसियों से घिरी हैं। इस सौ योजन विस्तृत समुद्र को लांघकर और लंकापुरी में पहुँचकर तुम सीता का दर्शन अवश्य कर सकोगे। इतना कहते ही सम्पाति के पंख, जो पूर्व में जल चुके थे, पुनः उग आते हैं और सम्पाति आकाश में उड़ जाते हैं।

कथा की प्रतीकात्मकता एवं तात्पर्य

जटायु और सम्पाति मनुष्य के उच्च मन में रहने वाले उन विशिष्ट गुणों के प्रतीक हैं, जो पवित्रता (सीता) की रक्षा के अभिलाषी हैं, आकांक्षी हैं। अभिलाषी अथवा आकांक्षी होने के कारण ही इन्हें गृध्र कहा गया है क्योंकि संस्कृत में गृध् धातु का अर्थ ही है– अभिलाषी होना, आकांक्षी होना (उणादि कोश २-२४ के अनुसार– गृध्यति अभिकांक्षति इति गृध्र:)। चूँकि पवित्रता की रक्षा की अभिलाषा-आकांक्षा सभी अभिलाषाओं में श्रेष्ठतम होती है, इसलिए कथा में जटायु और सम्पाति को केवल गृध्र न कहकर गृध्रराज कहा गया है।

१. जटायु–

उच्च मन में रहने वाले जटायु नामक पहले गुण का प्राकट्य उस समय होता है, जब आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) के अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान अर्थात् रावण (स्वयं को शरीर समझ कर शरीर से सम्बन्ध रखने वाला प्रत्येक प्रकार का अभिमान) अपनी ही पवित्रता (सीता) को हर रहा होता है अर्थात् देहाभिमान रूप संस्कार के वशीभूत हुआ आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य जब झूठ बोल रहा होता है, चोरी कर रहा होता है अथवा किसी भी प्रकार का भ्रष्ट आचरण कर रहा होता है, तब उच्च मन में रहने वाला जटायु नामक गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा का अभिलाषी गुण तुरन्त प्रकट होकर पवित्रता की रक्षा का यथासम्भव प्रयास करता है। उदाहरण के लिए– जैसे ही देहाभिमान रूप संस्कार के प्रस्फुटन से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य झूठ बोल रहा होता है, अथवा रिश्वत ले रहा होता है, वैसे ही उसी के उच्च मन में विद्यमान यह जटायु नामक गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा का अभिलाषी गुण तत्काल प्रकट होकर मनुष्य के उस अभिमान (रावण) को सचेत करता है, समझाता है और सत्य बोलने अथवा रिश्वत न लेने के लिए प्रेरित भी करता है। न मानने की स्थिति में यह जटायु गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा का अभिलाषी गुण उस मनुष्य के अभिमान (रावण) के साथ युद्ध भी करता है, जिसे मन के भीतर चलने वाले अन्तर्द्वन्द्व (करूँ या ना करूँ) के रूप में देखा जा सकता है। यह जटायु नामक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गुण यद्यपि पवित्रता (सीता) की रक्षा का यथासम्भव प्रयास करता है परन्तु देहाभिमान (रावण) के प्रबल होने की स्थिति में अन्ततः अपने प्राणों का भी परित्याग कर देता है।

चूँकि मनुष्य के उच्च मन में सदा से विद्यमान, पवित्रता की रक्षा को चाहने वाला और रक्षा के लिये प्रवृत्त होने वाला यह गुण बहुत पुराना है, इसलिए इसे जटायु नाम देना सार्थक ही है। जटायु शब्द जटा (जरा) और आयु नामक दो शब्दों के मेल से बना है। जटा शब्द यहाँ जरा शब्द का ही प्रच्छन्न (छिपा हुआ) स्वरूप है, जिसका अर्थ है– पुराना। अतः जटायु नामक गुण का अर्थ हुआ– पुरानी आयु वाला अर्थात् बहुत पुराना।

कथा में जटायु को अरुण का पुत्र कहा गया है। अरुण शब्द उषाकाल का वाचक होने के कारण आध्यात्मिक स्तर पर ज्ञान के उदय की अवस्था को इंगित करता है। अतः जटायु को अरुण का पुत्र कहकर यह संकेत किया गया है कि किञ्चित ज्ञान का उदय हो जाने पर ही मन के भीतर यह जटायु गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा का अभिलाषी गुण उत्पन्न हो जाता है। अज्ञानी मन के भीतर यह जटायु गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा का अभिलाषी गुण विद्यमान नहीं रहता क्योंकि अज्ञान में रहते हुए मनुष्य के भीतर पवित्र रहने और पवित्रता को बचाने का कोई विचार या भाव ही पैदा नहीं होता।

२. सम्पाति–

उच्च मन में रहने वाला सम्पाति नामक दूसरा गुण उस समय प्रकट होता है, जब मनुष्य (राम) संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान के कारण अपनी ही पवित्रता को खो चुका होता है। उदाहरण के लिए– अभिमान के वशीभूत हुआ मनुष्य या तो झूठ बोल चुका होता है अथवा रिश्वत ले चुका होता है अथवा अन्य किसी भी प्रकार का भ्रष्ट आचरण कर चुका होता है। अतः अब मनुष्य की अपनी ही पवित्रता (सीता) जीवन-व्यवहार से खो चुकी होती है या दूर जा चुकी होती है। चूँकि यह स्थिति आत्म-विस्मृति के फलस्वरूप ही उत्पन्न होती है, इसलिए इसे कथा में (मारीच प्रसंग के अन्तर्गत) राम-लक्ष्मण के दूर चले जाने पर सीता हरण के रूप में प्रदर्शित किया गया है। कथा में यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि आत्म-विस्मृति के कारण प्रकट हुए देहाभिमान के कारण यद्यपि मनुष्य (राम) की पवित्रता का हरण हो चुका होता है, परन्तु आत्म-स्मृति के लौटने पर अब मनुष्य अपनी ही पवित्रता को न पाकर बहुत दुःखी भी होता है। कथा में पुनः

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संकेत किया गया है कि अब अपनी विभिन्न ज्ञान-शक्तियों का आश्रय लेकर तदनुसार कर्म करने पर भी जब मनुष्य को अपनी पवित्रता नहीं मिल पाती अर्थात् जीवन-व्यवहार में पवित्रता का अवतरण नहीं हो पाता तब मनुष्य की वे समस्त ज्ञान-शक्तियाँ भी निराश होकर पवित्रता की खोज से निवृत्त सी होने लगती हैं। उस प्रबल निराशा की स्थिति में ही मनुष्य का साक्षात्कार एक ऐसे अन्तर्निहित गुण से होता है, जो न केवल निराश मन को आश्वस्त करता है, अपितु पवित्रता की प्राप्ति हेतु आवश्यक दिशा-निर्देश भी देता है। निराश मन को आश्वस्त करके पवित्रता की प्राप्ति हेतु आवश्यक दिशा-निर्देश देने वाले उच्च मन के इस गुण को ही रामकथा में सम्पाति नामक पात्र के रूप में चित्रित किया गया है।

यही गुण अर्थात् सम्पाति बतलाता है कि जीवन-व्यवहार से पवित्रता (सीता) को चुराने वाला मनुष्य का अपना ही, संस्कार रूप में परिवर्तित हो चुका प्रबल देहाभिमान होता है। पवित्रता कहीं बाहर नहीं गई है। वह अपने ही व्यक्तित्व (लंकापुरी) के भीतर अपने ही विषाक्त एवं नकारात्मक विचारों (राक्षसियों) के बीच कैद हो गई है। अत: अपने ही मन रूपी महासागर का लंघन करके उस पवित्रता (सीता) का दर्शन निश्चित रूप से किया जा सकता है।

इस प्रकार यह सम्पाति गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा का अभिलाषी गुण पवित्रता (सीता) के दर्शन एवं प्राप्ति हेतु उपर्युक्त वर्णित अनिवार्य दिशा-निर्देश देकर न केवल उन ज्ञान-शक्तियों (वानरों) की रक्षा करता है, जो पवित्रता (सीता) के अन्वेषण से थककर मरने के लिए उत्सुक थी, अपितु अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान के कारण जीवन-व्यवहार से (जनस्थान अथवा पंचवटी से) हरण हो चुकी पवित्रता को भी वापस लाने में अत्यन्त सहायक हो जाता है। इस रक्षा-कार्य के कारण ही इस विशिष्ट गुण को सम्पाति नाम देना उचित ही है क्योंकि सम्पाति (सम्- पाति) शब्द का अर्थ ही है– सम्यक् रूप से रक्षा करने वाला।

कथा में सम्पाति को गरुड़ का पुत्र कहा गया है। गरुड़ शब्द पौराणिक साहित्य में उच्च विचार या चिन्तन को इंगित करता है। उच्च विचार या चिन्तन में रहने पर ही इस सम्पाति गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा के अभिलाषी गुण की उत्पत्ति होती है, जो अपने ही देहाभिमान के कारण खोई हुई अपनी ही पवित्रता को पुनः प्राप्त कराने में मनुष्य का सहयोग करता है।

कथा में सम्पाति विषयक जिन विभिन्न वृत्तान्तों का समावेश किया गया है– उनमें कहा गया है कि एक बार सम्पाति ने स्वर्गलोक में जाकर इन्द्र को जीता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अपने पराक्रम को परखने के लिए वे सूर्य के पास गए, उनका दर्शन किया परन्तु गर्व से मोहित हो जाने के कारण पंख जल गए और वे विन्ध्य पर्वत पर गिर गए। विन्ध्य पर्वत पर रहते हुए पंखों के भी न होने से जब सम्पाति सामर्थ्य-विहीन हो गए, तब निशाकर मुनि ने आश्वासन दिया कि जिस समय राम के दूत वानर सीता की खोज करते हुए यहाँ आएँगे, उस समय वे (सम्पाति) सीता की खोज में सहायक होने के कारण पंखों के पुन: उग आने से पूर्ववत् उड़ने में समर्थ हो जाएँगे।

प्रस्तुत वृत्तान्तों का समावेश करके यह संकेत किया गया है कि प्रत्येक मनुष्य के उच्च मन में अद्भुत सामर्थ्य से युक्त यह सम्पाति गुण अर्थात् पवित्रता की रक्षा का अभिलाषी गुण विद्यमान होता है। देहाभिमान (अज्ञान) में रहने पर यद्यपि यह गुण अपनी सामर्थ्य खो देता है, परन्तु आत्म-ज्ञान में लौटने पर यह गुण पुनः सामर्थ्य से युक्त होकर निराशा से बचाता है और खोई हुई पवित्रता को प्राप्त कराने में मनुष्य का सहायक हो जाता है। सामर्थ्य के खो जाने को ही कथा में सम्पाति के पंखों का जल जाना तथा सामर्थ्य के पुन: प्राप्त होने को ही पंखों का पुन: उग आना कहा गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Two Qualities of Higher Mind as described through Jaṭāyu and Sampāti

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇyakāṇḍa, chapters 49 to 51) and (Kiṣkindhākāṇḍa, chapters 56 to 63), there are two characters named Jaṭāyu and Sampāti.

Jaṭāyu enters in the story when Rāvaṇa, in absence of Rāma and Lakṣmaṇa captures Sītā, carries her away and Sītā cries for help. Jaṭāyu – a Vulture, sleeping on a tree, immediately wakes up and requests Rāvaṇa to leave Sītā. But when Rāvaṇa does not leave her, Jaṭāyu fights bravely, tries his best to liberate her and dies in protecting her.

Sampāti enters in the story when Rāvaṇa takes away Sītā in Laṅkāpurī. Different Vānars sent by Sugrīva in search of Sītā, try their best to search her but fail and become extremely disappointed. They talk about all those events which were related to the capturing of Sītā. Sampāti – a Vulture, sitting on a nearby mountain slowly approaches to them as he hears about death of his brother Jaṭāyu. Hearing the whole story of Sītā's search from Vānars, Sampāti tells them that Sītā was captured by Rāvaṇa and he has kept her in Laṅkāpurī in the prison of demons. She can be seen now by crossing over the ocean. Sampāti had no wings, but as soon as he helps them, he gets wings and flies away.

The story is symbolic and describes two qualities of Higher Mind symbolized as Jaṭāyu and Sampāti. Both these qualities are desirous to protect Purity symbolized as Sītā, therefore both qualities are called here as Gṛddharāja. Gṛddharāja means– the qualities of Higher Mind which are desirous to protect Purity.

Describing the first quality of Higher Mind symbolized as Jaṭāyu, the story indicates that whenever a person's Purity is captured by his own Ego, this quality of his higher mind symbolized as Jaṭāyu– a desire to protect purity immediately wakes up, decends on conscious level and tries its best to protect that purity either by making that person understand or by

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

fighting with his ego. For example, when a person tells a lie, this quality-desirous to protect purity immediately descends and tries to empower that person to tell the truth but fights either when that person does not agree. This quality does not care even for its life and dies fighting in protecting the truth.

Describing the second quality symbolized as Sampāti, the story describes that if a person has lost his purity being unaware and living in some illusion but he eagerly wishes to attain it again, tries his best to search it by implying knowledge in his behaviour but even gets failure and feels much disappointed, then this quality of higher mind-desirous to protect purity and symbolized as Sampāti approaches him, consoles him and guides him by advising that a person's own Ego captures his own purity. Purity never dies. Purity hiddens only in between impurities. A person's own mind is the ocean of impurities, therefore crossing that ocean of impurities, a person can see and attain his own purity again.

The story also tells that this quality-desirous to protect purity symbolized as Sampāti lies in dormant state but becomes active when a person is in need and really wishes to attain his purity.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२३. अयोमुखी राक्षसी कथा

(आत्म-ज्ञान द्वारा भोग-वृत्ति के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
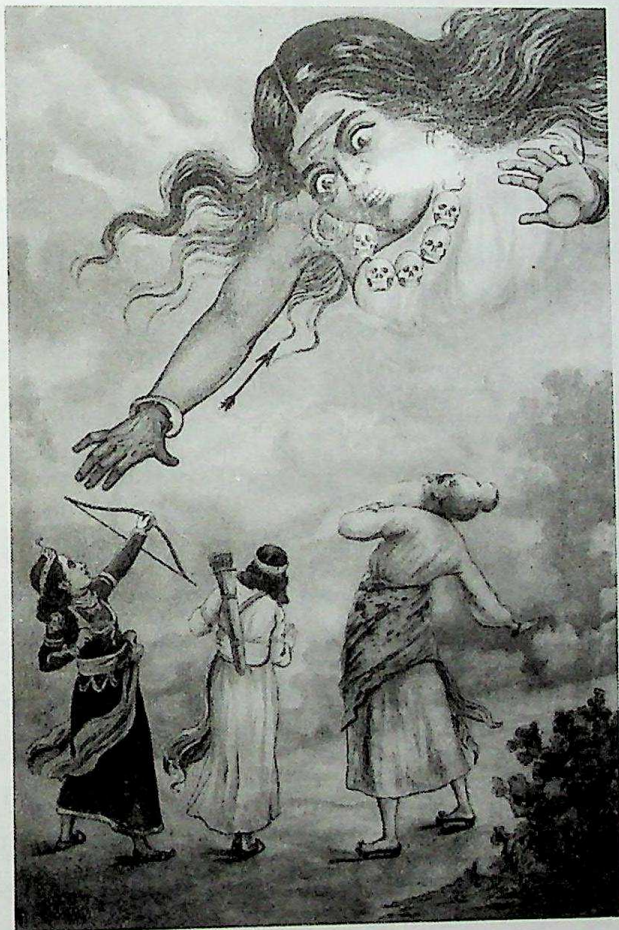
अयोमुखी राक्षसी की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा भोग-वृत्ति के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ६९) में अयोमुखी नामक राक्षसी की जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

राम और लक्ष्मण दण्डकारण्य में जब सीता की खोज कर रहे थे, तब पाताल के समान गहरी और अन्धकार से आवृत गुफा के समीप पहुँचकर उन्होंने अयोमुखी नामक एक विशालकाय एवं विकराल राक्षसी को देखा। राक्षसी ने लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया और उनके साथ रमण करने के लिये उन्हें अपनी भुजाओं में भी कस लिया। परन्तु लक्ष्मण ने तलवार से तुरन्त उस राक्षसी के नाक, कान और स्तन काट ड़ाले, जिससे वह राक्षसी चिल्लाती हुई वहाँ से भाग गई।

कथा की प्रतीकात्मकता

१. अयोमुखी–

अयोमुखी शब्द अयो और मुखी नामक दो शब्दों से मिलकर बना है। अयो का अर्थ है– अयस् अर्थात् लोहा। अध्यात्म के क्षेत्र में मनुष्य के स्थूल शरीर को अयस् का पुर कहा जाता है। मुखी का अर्थ है– मुख वाली। अतः अयोमुखी का अर्थ हुआ– स्थूल शरीर की ओर मुख वाली। राक्षसी शब्द विषाक्त वृत्ति का वाचक है। इस आधार पर अयोमुखी राक्षसी का अर्थ हुआ– वह विषाक्त वृत्ति, जो मात्र स्थूल शरीर के सुख-भोग पर ही केन्द्रित रहती है। अतः अयोमुखी राक्षसी को सरल रूप में और एक शब्द में भोग-वृत्ति नाम दिया जा सकता है।

२. अयोमुखी राक्षसी का पाताल के समान गहरी तथा अंधकारपूर्ण गुफा के समीप निवास–

पाताल के समान गहरी गुफा मनुष्य के मन की गहराई अर्थात् अवचेतन मन (चित्त) को इंगित करती है। स्थूल शरीर के सुख-भोग पर केन्द्रित हुई विषाक्त वृत्ति अर्थात् भोग-वृत्ति संस्कार (बीज) बनकर इसी अवचेतन मन (चित्त) में पड़ी रहती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. अयोमुखी राक्षसी द्वारा लक्ष्मण को पकड़ना और अपनी भुजाओं में कसना–

यहाँ यह संकेत किया गया है कि संस्कार रूप में अवचेतन मन (चित्त) में पड़ी हुई स्थूल शरीर के भोगों पर केन्द्रित यह विषाक्त वृत्ति अर्थात् भोग-वृत्ति (अयोमुखी) यथासमय अवचेतन मन (चित्त) से बाहर निकलती है और आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य की विचार-शक्ति (लक्ष्मण) को भी अपने आधीन करने का यथासम्भव व्यर्थ प्रयास करती है।

४. लक्ष्मण द्वारा तलवार से राक्षसी के नाक, कान, स्तन काटना–

प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता होता है (जिसे कथा में लक्ष्मण के रूप में प्रस्तुत किया गया है)। अत: वह अवचेतन मन (चित्त) से निकले हुए इस संस्कार रूप विकार अर्थात् भोग-वृत्ति के आधीन कभी नहीं होता। वह अपनी ज्ञान रूपी तलवार से उस भोग-वृत्ति को ही अपने आधीन करके उसे अशक्त, असमर्थ और व्यर्थ बना देता है, जिसे कथा में लक्ष्मण द्वारा अयोमुखी के नाक, कान, स्तन काटने के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा का तात्पर्य

देह को ही अपना वास्तविक स्वरूप मानने के कारण अर्थात् मैं देह हूँ– ऐसा मानने के कारण जब मनुष्य का मन स्थूल शरीर के भोगों में ही रमण करने लगता है, तब सबसे पहले उसके भीतर अनेक प्रकार के विकार युक्त विचारों का निर्माण होता है, जो धीरे धीरे भोग-वृत्ति का निर्माण करते हैं। भोग-वृत्ति भी फिर शनै: शनै: आदत या संस्कार बनकर अवचेतन मन (चित्त) में चली जाती है और यथासमय अवचेतन मन (चित्त) से बाहर निकलकर मनुष्य के चेतन मन को प्रभावित करती है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि सामान्य अर्थात् देहाभिमानी मनुष्य जहाँ उस भोग-वृत्ति के आधीन हो जाता है, वहीं आत्म-ज्ञानी अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेने वाला और अपने एक एक विचार का निर्माता और नियन्ता बन जाने वाला मनुष्य (राम) उस यथासमय प्रकट हुई भोग-वृत्ति के आधीन नहीं होता अपितु ज्ञान का सहारा लेकर उस भोग-वृत्ति को अपने आधीन करके उसे व्यर्थ और असमर्थ बना देता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Attitude to Enjoy Bodily Pleasure is described through Demoness Ayomukhī

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇyakāṇḍa, chapter 69), there is a story of demoness Ayomukhī. It is said that Rāma and Lakṣmaṇa confronted Ayomukhī, when they reached near a deep cave wandering in Daṇḍakāraṇya in search of Sītā. Ayomukhī was very furious and she hold Lakṣmaṇa's hand. She wanted to enjoy with Lakṣmaṇa but Lakṣmaṇa getting angry cut her nose, ears and breast. Accordingly, she cried and ran to her place.

This story points out a special state of Mind i.e. Attitude of Enjoying Pleasure symbolized as Demoness Ayomukhī. When a person lives in Body-Consciousness, this Attitude of Enjoying Bodily Pleasure is being created and becomes a habit. This habit slowly converts into Saṁskāra and Saṁskāra lies in dormant state in sub-conscious mind.

The story describes that this Saṁskāra attacks and tries to possess a person who is Soul-Conscious and Creator and Controller of his own Thoughts symbolized as Lakṣmaṇa but never succeeds because a Soul-Conscious Person, Controller of his own Thoughts immediately disempowers it by using his Weapon of Knowledge symbolized as a sword by which Lakṣmaṇa cuts nose, ears and breast of demoness Ayomukhī.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२४. कबन्ध राक्षस कथा

(आत्म-ज्ञान द्वारा अवचेतन मन में विद्यमान
नकारात्मक शक्ति के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
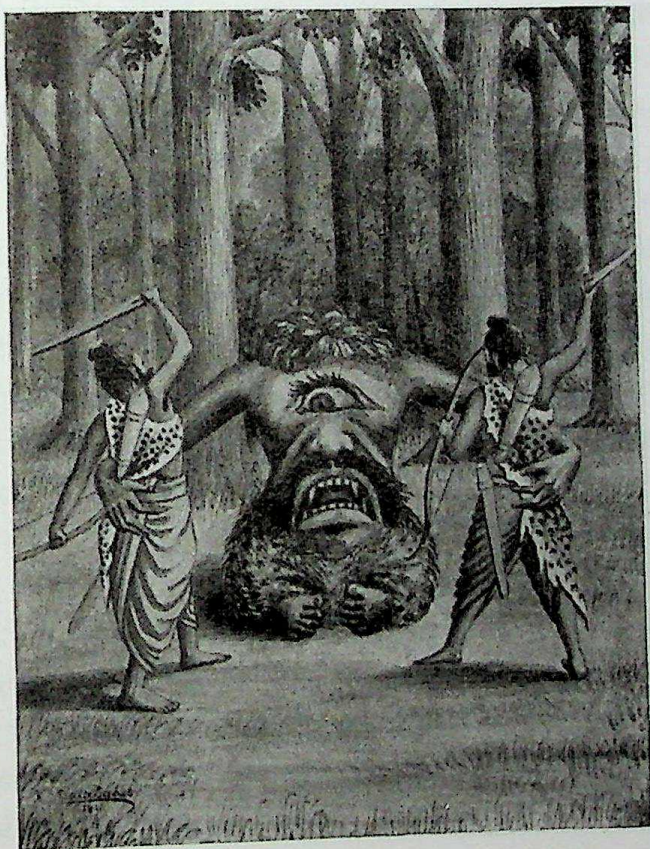
कबन्ध राक्षस के विनाश के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा मन में विद्यमान नकारात्मक शक्ति के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ६९ से ७३ तक) में कबन्ध नामक राक्षस की जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

राम और लक्ष्मण दण्डकारण्य में जब सीता की खोज कर रहे थे, तब अकस्मात् उनकी दृष्टि एक विशालकाय राक्षस पर पड़ी। उस राक्षस का न तो मस्तक था, न ग्रीवा। वह कबन्ध (धड़) मात्र ही था, इसलिये कबन्ध कहलाता था। वह अपनी एक-एक योजन लम्बी भुजाओं को फैलाकर हिंसक पशुओं और पक्षियों को पकड़कर खा लेता और जो अभीष्ट न होता, उन्हें पीछे धकेल देता। कबन्ध ने अपनी भुजाओं से राम और लक्ष्मण को भी पकड़ लिया, जिससे वे दोनों भाई यद्यपि अत्यन्त विषाद में पड़ गए परन्तु शीघ्र ही उन्होंने अपनी तलवार से उसकी दोनों भुजाओं को काट दिया। भुजाओं के कट जाने पर जब कबन्ध ने दीन होकर उनसे उनका परिचय पूछा, तब लक्ष्मण ने राम के वन में आगमन और सीता-हरण के समस्त वृत्तान्त को बताकर कबन्ध से भी उसका परिचय पूछा। कबन्ध ने कहा कि पहले उसका स्वरूप अत्यन्त सुन्दर तथा तीनों लोकों में विख्यात था परन्तु राक्षस रूप को धारण करके वह ऋषियों को डरा दिया करता था। एक दिन उसने नाना प्रकार के वन्य फल-मूल का संचय करने वाले स्थूलशिरा नामक महर्षि को जब कुपित कर दिया था, तब उन्होंने शाप दिया था कि आज से तेरा यही निन्दित रूप रह जाए। शाप के अन्त हेतु प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा था कि जब राम और लक्ष्मण भुजाएँ काटकर तुम्हें जला देंगे, तब तुम अपने पूर्व सुन्दर स्वरूप को प्राप्त करोगे।

कबन्ध ने पुनः कहा कि ब्रह्मा जी से दीर्घजीवी होने का वरदान पाकर अहंकार के वशीभूत हुए मैंने देवराज इन्द्र पर भी आक्रमण किया था, जिससे कुपित होकर देवराज ने मेरे ऊपर वज्र का प्रहार किया था। उस प्रहार से मेरी जांघे और मस्तक टूट गए थे परन्तु इन्द्र ने मेरी भुजाएँ एक एक योजन लम्बी कर दी थी और पेट में ही एक आँख तथा एक मुख बना दिया था, जिससे मैं आहार ग्रहण करके दीर्घजीवी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रह सकूँ। इन्द्र ने भी कहा था कि लक्ष्मण सहित राम जब तुम्हारी दोनों भुजाएँ काट देंगे, तब तुम स्वर्ग में जाओगे। अंत: अब आप मेरे शरीर को जला दीजिये, तभी मैं आपकी सीता-प्राप्ति हेतु कुछ सहायता करूँगा। राक्षस शरीर में रहते हुए मुझे दिव्य ज्ञान नहीं है, परन्तु पूर्व स्वरूप को प्राप्त होकर मैं एक ऐसे व्यक्ति का पता बता सकूँगा, जो आपकी सहायता करेंगे।

राम और लक्ष्मण ने तदनुसार कबन्ध के शरीर को एक गढ्ढे में डालकर जला दिया। अब कबन्ध निर्मल वस्त्र और दिव्य पुष्प धारण कर, हंस से जुते हुए एक सुन्दर विमान पर आरूढ़ होकर राम से बोला कि आप सीता-प्राप्ति हेतु ऋष्यमूक पर्वत पर रहने वाले सुग्रीव से मैत्री कीजिये। वे सुग्रीव निश्चित रूप से राक्षसों का वध करके सीता को आपके पास ला देंगे। यह सब कहकर दिव्य रूप से सम्पन्न हुआ दनु का वह पुत्र दानव कबन्ध परम धाम को चला गया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है। अत: कथा को समझने के लिये प्रतीकों को समझना आवश्यक है–

१. कबन्ध शब्द का तात्पर्य–

कबन्ध शब्द क और बन्ध नामक दो शब्दों के मेल से बना है। क के अनेक अर्थ होते हैं परन्तु प्रस्तुत कथा के सन्दर्भ में क का अर्थ है– मन और बन्ध का अर्थ है– बांधना अथवा बन्धन में डालना। अत: जो तत्व मन को बांधता है अथवा बन्धन में डालता है– वही कबन्ध है। मन को बांधने वाला एक प्रबल तत्व है– उसी का (मन का) अपना नकारात्मक स्वरूप, जो नकारात्मक विचार, भाव तथा दृष्टिकोण आदि के रूप में प्रकट होकर मन के सकारात्मक स्वरूप को बांध देता है। अत: अत्यन्त सरल शब्दों में सकारात्मक मन को बांधने वाले नकारात्मक मन को ही कबन्ध कहा जा सकता है।

२. कबन्ध को कथा में दनु का पुत्र दानव भी कहा गया है–

दनु (दानु) एक पौराणिक शब्द है और इसका अर्थ है– दान अर्थात् व्यक्तित्व में विद्यमान चेतना-शक्ति का व्यर्थ दान। पौराणिक साहित्य में कश्यप नामक ऋषि की जिन १३ पत्नियों का वर्णन किया गया है, उनमें से एक है– दनु। कश्यप ऋषि की ये १३ पत्नियां वास्तव में मनश्चेतना (मन) की १३ स्थितियों को इंगित करती हैं। उदाहरण के लिये– जैसे अदिति नामक पत्नी मनश्चेतना (मन) की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अखण्डित स्थिति (अर्थात् स्वामी-स्वरूप आत्मा और उपकरण-स्वरूप शरीर के योग में स्थित होना) को तथा दिति नामक पत्नी मनश्चेतना (मन) की खण्डित स्थिति (अर्थात् शरीर को ही सब कुछ मानना) को संकेतित करती है, उसी प्रकार दनु नामक पत्नी मनश्चेतना (मन) की व्यर्थ दान (अर्थात् चेतना-शक्ति का अपव्यय) की स्थिति की वाचक है।

मनश्चेतना की इस व्यर्थ दान (wasting of energy) की स्थिति (दनु) से ही नकारात्मकता जन्म लेती है, इसलिये कथा में कबन्ध को दनु का पुत्र दानव भी कहा गया है। नकारात्मक मन विचार, भाव तथा दृष्टिकोण आदि के रूप में मन:शक्ति का सतत रूप से अपव्यय करता है और मनुष्य की उन्नति में बाधक-स्वरूप बना रहता है।

३. वन्य को इकठ्ठा करने वाले स्थूलशिरा महर्षि के शाप से कबन्ध को दीर्घजीविता की प्राप्ति–

वन्य को इकठ्ठा करने वाले स्थूलशिरा महर्षि का अर्थ है– अपने विचारों का निर्माता न होने के कारण अपने आप उगने वाले (उत्पन्न होने वाले) अनियन्त्रित विचारों को अपने मन के भीतर इकठ्ठा करने वाला एक सामान्य सोच वाला (स्थूलशिरा) मनुष्य। शाप शब्द पौराणिक साहित्य में अवश्य घटित होने को संकेतित करता है। अत: स्थूलशिरा महर्षि के शाप से कबन्ध को दीर्घजीवन प्राप्त होने का अर्थ है– एक सामान्य सोच वाले मनुष्य के भीतर जो नकारात्मकता विद्यमान होती है, उस नकारात्मकता का उसके मन के भीतर बहुत समय तक विद्यमान रहना क्योंकि उसमें उस नकारात्मकता को विनष्ट करने की कोई सामर्थ्य नहीं होती।

४. इन्द्र के वज्र से कबन्ध को विकृत स्वरूप की प्राप्ति–

इन्द्र शब्द यहाँ शुद्ध मन को तथा वज्र नामक शस्त्र इस शुद्ध मन की सुदृढ संकल्प-शक्ति को इंगित करता है। कथा में कहा गया है कि इन्द्र ने अपने वज्र से कबन्ध का मस्तक, ग्रीवा तथा जांघें तोड़ दी और पेट में ही मुख तथा एक आंख बनाकर भुजाओं को एक-एक योजन लम्बा कर दिया।

कबन्ध का यह विकृत स्वरूप इस बात का संकेत है कि नकारात्मक मन कभी भी ज्ञानात्मक तथा रचनात्मक नहीं होता (मस्तक, ग्रीवा तथा जांघ से रहित होना), उसकी दृष्टि बहुत संकीर्ण होती है (पेट में ही एक आंख का होना) तथा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

परिस्थिति विशेष के उपस्थित होते ही वह 'मैं कर नहीं सकता तथा मुझसे हो नहीं सकता' के रूप में नकारात्मक विचारों की दो लम्बी भुजाओं को निर्मित कर लेता है।

प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि शुद्ध मन में यद्यपि यह सामर्थ्य तो नहीं होती कि वह नकारात्मकता अर्थात् नकारात्मक विचारों, भावों तथा दृष्टिकोण आदि को पूर्णत: विनष्ट कर सके। परन्तु शुद्ध मन अपनी सुदृढ़ संकल्प-शक्ति के सहारे नकारात्मकता को इतना पंगु अवश्य बना देता है कि वही नकारात्मकता उस शुद्ध मन के ऊपर अपना आधिपत्य नहीं जमा पाती। अब वह नकारात्मकता केवल इस रूप में विद्यमान रहती है कि विषम परिस्थिति आते ही मनुष्य 'मैं कर नहीं सकता तथा मुझसे हो नहीं सकता' इस प्रकार के नकारात्मक विचारों को त्वरित रूप से निर्मित करके नकारात्मकता को पुष्ट अवश्य करता है।

५. राम-लक्ष्मण द्वारा तलवार से कबन्ध की भुजाओं का छेदन और शरीर का दहन—

प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता हो जाने के कारण न तो नकारात्मक विचारों का निर्माण ही करता है और न अवचेतन मन के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए तथा वहाँ से निकलकर चेतन मन के स्तर पर प्रकट हुए नकारात्मक विचारों के आधीन ही होता है। वह अपनी ज्ञान रूपी तलवार से सभी प्रकार की नकारात्मकता को पूर्णत: विनष्ट कर देता है।

६. दिव्य स्वरूप धारण करके कबन्ध द्वारा सुग्रीव से मैत्री का परामर्श—

मन की नकारात्मकता मनुष्य के सकारात्मक मन के ऊपर पड़ा हुआ एक ऐसा आवरण होता है, जो उसकी ज्ञान-स्वरूपता को आच्छादित किये रहता है। अत: जैसे ही यह नकारात्मक आवरण हटता है, वैसे ही सकारात्मक मन प्रकट हो जाता है और आवृत ज्ञान भी अनावृत हो जाता है। वैदिक साहित्य में इस नकारात्मकता रूपी आवरण को (कबन्ध राक्षस को) उस काले मेघ के समान कहा गया है, जो ज्ञान रूपी वृष्टि को मन-बुद्धि रूपी पृथ्वी पर आने से रोकता है।

कथा का तात्पर्य

एक शरीर को छोड़ने तथा दूसरे शरीर को धारण करने की लम्बी यात्रा के कारण मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) में अच्छे (दैवी) और बुरे (आसुरी) सभी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रकार के संस्कार विद्यमान हैं। ये संस्कार अवचेतन मन (चित्त) से निकलकर चेतन मन पर आते हैं और मनुष्य की सोच को निरन्तर प्रभावित करते हैं। अपने आपको शरीर मानकर जीवन जीने वाला एक सामान्य मनुष्य अपने ही अवचेतन मन से निकलकर चेतन मन पर प्रकट हुए इन विकारों को कभी देख नहीं पाता, अत: उसका जीवन स्वचलित रूप (automated mode) में चलता रहता है। इसके विपरीत जो मनुष्य शरीर भाव से ऊपर उठकर अपनी वास्तविक पहचान (आत्म-स्वरूपता या आत्म-ज्ञान) में स्थित हो जाता है और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता एवं नियन्ता बन जाता है, वह अपने अवचेतन मन में विद्यमान अपने ही संस्कारों को ध्यानपूर्वक देखने और वहाँ से निकलकर चेतन मन पर प्रकट हुए सभी विकारों को विनष्ट करने में समर्थ हो जाता है। दण्डकारण्य में राम और लक्ष्मण के आगमन तथा वहाँ विद्यमान राक्षसों के विनाश के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

कबन्ध नामक राक्षस की कथा के रूप में भी मन में विद्यमान हुई उस नकारात्मक शक्ति की ओर इंगित किया गया है, जो मनुष्य की उन्नति के मार्ग में बाधा ड़ालती है और जिसका सम्पूर्ण रूप में विनाश ही मनुष्य को ज्ञान की ओर उन्मुख करता है।

कथा संकेत करती है कि मन में विद्यमान हुई नकारात्मक शक्ति बहुत प्रबल होती है। अत: एक सामान्य सोच वाले मनुष्य के ऊपर यह नकारात्मक शक्ति अपना पूर्ण प्रभुत्व रखकर दीर्घजीवी बनी रहती है। स्थूलशिरा महर्षि के शाप से कबन्ध की दीर्घजीविता के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

कथा पुन: संकेत करती है कि जो मनुष्य शुद्ध मन से युक्त है और संकल्पवान् भी हो गया है, वह अपने श्रेष्ठ संकल्पों के सहारे अपने ही मन में विद्यमान हुई अपनी ही नकारात्मकता को यद्यपि हावी तो नहीं होने देता और उसे (नकारात्मकता को) पंगु (निष्क्रिय) भी बना देता है परन्तु वही मनुष्य जब-तब उपस्थित होने वाली विषम परिस्थितियों में 'मैं कुछ नहीं कर सकता तथा मुझसे कुछ नहीं हो सकता' इस प्रकार के नकारात्मक विचारों का निर्माण करके अन्य नकारात्मक विचारों के आकर्षण द्वारा अपनी नकारात्मकता को पुष्ट भी करता रहता है।

अत: कथा संकेत करती है कि अपने ही मन में विद्यमान हुए अपने ही नकारात्मक विचारों को पूर्ण रूप से केवल तभी विनष्ट किया जा सकता है, जब

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानकर अपने एक-एक विचार का निर्माता और नियन्ता बन जाता है। यद्यपि विषम परिस्थितियों में अकस्मात् प्रकट हुए ये नकारात्मक विचार कि 'मैं कर नहीं सकता अथवा मुझसे हो नहीं सकता' आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) को भी वशीभूत करने का यथासम्भव प्रयत्न करते हैं, परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपनी विचार-शक्ति (लक्ष्मण) की सहायता से ज्ञान का सहारा लेकर न केवल उपर्युक्त वर्णित नकारात्मक विचारों को विनष्ट करता है, अपितु समग्र नकारात्मकता को ही विनष्ट कर देता है।

यह नकारात्मकता शक्तिशाली मन के ऊपर पड़े हुए एक सघन आवरण की भाँति है। इस सघन आवरण के हटते ही शक्तिशाली मन अपने शुद्ध, वास्तविक, सकारात्मक स्वरूप में प्रकट होकर मनुष्य का सहायक हो जाता है और यथोचित दिशा-निर्देश के रूप में उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर देता है। इसे ही कथा में राक्षस कबन्ध के विनाश तथा दिव्य रूप-धारी कबन्ध के द्वारा राम को दिये गए सुग्रीव से मैत्री के परामर्श के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Self-Knowledge destroys Negativity as depicted through the Destruction of Demon Kabandha by Rāma

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇyakāṇḍa, chapters 69-73), there is a story of demon Kabandha. It is said that Rāma and Lakṣmaṇa, when wandering in Daṇḍakāraṇya in search of Sītā, suddenly came across a horrible demon Kabandha. The demon had two long arms and a belly, but no head and legs. He caught up Rāma and Lakṣmaṇa by his long arms but they immediately detached his arms from the body by their sword. As soon as his arms were cut, he remembered his curse and immediately recognized Rāma and Lakṣmaṇa. He now told that he will help them in their misson after they destroy his body by burning. Accordingly, Rāma and Lakṣmaṇa burnt his body and as soon as his body was burnt, he transformed himself in his original divine form and advised Rāma to make friendship with Sugrīva who shall help him in search of Sītā.

The story is symbolic and describes that although a person has a pure, powerful mind originally but in the long journey of births and deaths he gradually develops Negativity. This Negativity, while becoming stronger and stronger begins to overpower Positivity and ultimately becomes a Saṁskāra. This Saṁskāra of Negativity lies in sub-conscious mind and eventually emerges on conscious mind symbolized as demon Kabandha living in Daṇḍakāraṇya.

The story points out that this Negativity strongly overpowers an Ignorant Person and remains Alive for a long time because an Ignorant Person does not have capacity to destroy it. This is symbolized as an attack by demon Kabandha on Sthūlaśirā Maharṣi and attaining longevity (of negativity) by his curse.

The story further points out that a Person, having Strong Will Power although makes this Negativity quite Inactive but it again becomes alive when he comes in contact of unfavourable or critical situations. Now that Person starts generating such

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Negative Thoughts eg 'He is incapable to Do this or He can not Do this'. These Two Negative Thoughts attract other negative thoughts and thus this Negativity remains active. This is symbolized as two long arms of demon Kanbandha when he was cursed by Indra Deva.

The story again shows that This Strong Negativity is destroyed only when a Person remains in Self- Knowledge and becomes the creator and controller of his Own Thoughts. Now, he never creates Negative Thoughts and his Strong Positivity overpowers those Negative Thoughts which come up from his sub-conscious level to conscious level. Such a Person Establishes a Strong Relation with his own Inner Knowledge symbolized as making of friendship by Rāma with Sugrīva.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२५. शबरी कथा

(मुमुक्षा वृत्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
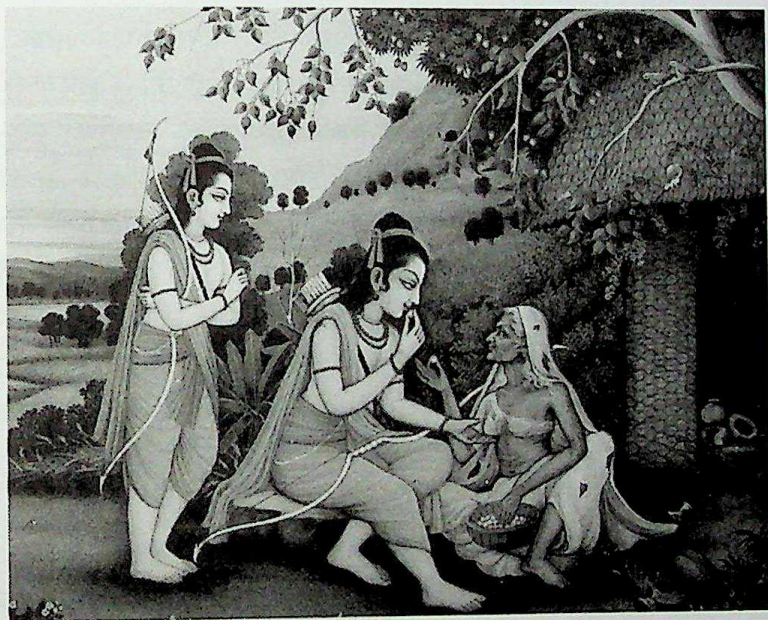
शबरी के उद्धार के माध्यम से आत्म-ज्ञान होने पर मुमुक्षा-वृत्ति के उद्धार का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत अरण्यकाण्ड (सर्ग ७३-७४) में शबरी से सम्बन्धित जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

कथा में कहा गया है कि दिव्य रूप-धारी कबन्ध के कथनानुसार राम और लक्ष्मण जब सुग्रीव से मित्रता हेतु ऋष्यमूक पर्वत की ओर जा रहे थे, तब मार्ग में उन्होंने शबरी का एक रमणीय आश्रम देखा। शबरी सिद्ध तपस्विनी थी और मत्तंग मुनि की शिष्या थी। मत्तंग मुनि के दिव्य लोक को चले जाने पर भी वह वन्य फल-मूलों का संचय करती हुई राम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। मत्तंग मुनि ने शबरी को आश्वासन दिया था कि एक न एक दिन राम अवश्य आएँगे और उनका दर्शन करके वह अक्षय लोक को प्राप्त करेगी। अतः तपस्विनी शबरी ने आश्रम पर आए हुए राम और लक्ष्मण का फल-मूल द्वारा सत्कार किया और राम से आज्ञा लेकर वह स्वर्गलोक को चली गई।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है। अतः कथा को समझने के लिए सभी प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी है।

१. मत्तंग मुनि–

मत्तंग (मत्तं गच्छति इति) शब्द का अर्थ है– प्रसन्न या हृष्ट और मुनि का अर्थ है– मन। अतः मत्तंग मुनि का अर्थ है– प्रसन्न मन। सत् के संग (सत्पुरुषों के संग अथवा सत्शास्त्रों के श्रवण-पठन के संग) से मनुष्य का मन जिस प्रसन्नता का अनुभव करता है, उस प्रसन्नता को प्राप्त हुए मन को ही यहाँ मत्तंग मुनि के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

२. शबरी–

सत् के संग (सत्पुरुषों के संग अथवा सत्शास्त्रों के श्रवण-पठन के संग) से प्रसन्न हुए मन के भीतर विद्यमान रहने वाली (मत्तंग मुनि के आश्रम में रहने

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वाली) एक विशिष्ट मनोवृत्ति ही जब आत्म-दर्शन अथवा आत्म-ज्ञान की अभिलाषा से युक्त होती है, तब मुमुक्षा कही जाती है। यह मुमुक्षा-वृत्ति न तो पूर्ण रूप से ज्ञान में विद्यमान होती है और न अज्ञान में। इसलिए ज्ञान और अज्ञान- दोनों का ही सम्मिलित स्वरूप होने के कारण इसे शबली (शबरी) कहा जा सकता है क्योंकि शबली शब्द का अर्थ ही है– चितकबरी। प्रस्तुत कथा में वर्णित शबरी शब्द वास्तव में इस शबली शब्द का ही प्रच्छन्न (छिपा हुआ) स्वरूप है। अतः शबरी नामक पात्र के माध्यम से इस शबली अर्थात् ज्ञान और अज्ञान की मिश्रित अवस्था से युक्त मुमुक्षा-वृत्ति को ही संकेतित किया गया प्रतीत होता है। चूँकि यह मुमुक्षा-वृत्ति सत् के संग से प्रसन्न हुए मन के फलस्वरूप ही अस्तित्व में आती है, इसलिए कथा में इसे मत्तंग मुनि की शिष्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

३. शबरी द्वारा वन्य फल-मूल का संचय–

फल (effect) शब्द के द्वारा यहाँ कार्य रूप शरीर तथा जगत् की ओर तथा मूल (cause) शब्द के द्वारा कारण रूप आत्मा तथा परमात्मा की ओर संकेत किया गया है। चूँकि मन में विद्यमान मुमुक्षा-वृत्ति (शबरी) सदा आत्म-दर्शन अथवा आत्म-ज्ञान (राम) की अभिलाषा से युक्त होती है, इसलिए उस आत्म-दर्शन अथवा आत्म-ज्ञान (राम) हेतु ही वह जहाँ-तहाँ से प्राप्त हुए (वन्य) अध्यात्म ज्ञान (कार्य रूप शरीर तथा जगत् से सम्बन्धित ज्ञान अर्थात् फल एवं कारण रूप आत्मा तथा परमात्मा से सम्बन्धित ज्ञान अर्थात् मूल) का संचय सतत रूप से करती है।

४. राम का दर्शन करके शबरी का स्वर्गलोक गमन–

प्रस्तुत कथन के द्वारा इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि मुमुक्षा-वृत्ति (शबरी) का लक्ष्य है– मोक्ष अर्थात् आत्म-दर्शन या आत्म-ज्ञान। अतः मुमुक्षा-वृत्ति मन के भीतर (आश्रम के भीतर) तभी तक विद्यमान रहती है, जब तक वह इस मोक्ष अर्थात् आत्म-दर्शन या आत्म-ज्ञान रूप लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेती। लक्ष्य को प्राप्त कर लेने पर इस मुमुक्षा-वृत्ति का मानो उद्धार हो जाता है, जिसे कथा में राम का दर्शन करके शबरी के स्वर्गलोक-गमन के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

कथा का तात्पर्य

प्रस्तुत कथा के द्वारा इस महत्त्वपूर्ण तथ्य का चित्रण किया गया है कि मनुष्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के मन में एक ऐसी मुमुक्षा-वृत्ति विद्यमान होती है, जो उसे सत्संग अर्थात् सत्पुरुष के संग अथवा सत्शास्त्रों के संग (शास्त्रों के श्रवण-पठन) की ओर प्रेरित करती है। इस मुमुक्षा-वृत्ति का निर्माण भी उस प्रसन्न मन के फलस्वरूप ही होता है, जब मन किसी सत्संग (सत्पुरुष के संग अथवा शास्त्रों के संग) में बहुत प्रसन्नता का अनुभव करता है और आश्वस्त हो जाता है कि एक न एक दिन इसी सत्संग के फलस्वरूप उसे आत्म-दर्शन अथवा आत्म-ज्ञान (मोक्ष) भी अवश्य प्राप्त होगा।

प्रसन्न मन के फलस्वरूप निर्मित हुई यही मुमुक्षा-वृत्ति धीरे-धीरे एक संस्कार (आदत) बन जाती है और जीवन में प्राप्त हुए सत्संगों (सत्पुरुष के संग अथवा सत्शास्त्र का संग) में प्रवृत्त होकर अपने भीतर ज्ञान-सम्बन्धी अनेकानेक बातों को संचित करने लगती है। शबरी द्वारा वन्य फल-मूलों के संचय द्वारा इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

कथा संकेत करती है कि मनुष्य के मन के भीतर विद्यमान यह मुमुक्षा-वृत्ति वहाँ केवल तब तक विद्यमान रहती है, जब तक वह आत्म-दर्शन नहीं कर लेती। आत्म-दर्शन अथवा आत्म- ज्ञान में अवस्थित हो जाने पर इस वृत्ति का उद्धार स्वयमेव हो जाता है, जिसे कथा में राम का दर्शन करके शबरी का स्वर्गलोक में चले जाना कहा गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Different aspects of Mumukṣā as described through the story of Śabarī

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Araṇyakāṇḍa, chapters 73-74), there is a story of Śabarī. It is said that Śabarī, an ascetic was a disciple of Mataṅga Muni and lived in his āśrama even after his leaving the āśrama. Mataṅga Muni had advised her to continue to live there and assured her about coming of 'Rāma' definitely. Following his advice Śabarī lived in āśrama for a long time awaiting for Rāma to come. She collected lots of fruits and roots to offer him. Ultimately, one day Rāma came to the āśrama. She welcomed and offered him fruits and roots and departed for heaven after getting his blessings and seeking his permission.

The story is symbolic and describes a special state of mind named 'Mumukṣā' – a desire for liberation or a desire for Self-Realization. This 'Mumukṣā' is symbolized here as 'Śabarī' – a distorted form of word 'Śabalī'. In Sanskrit Śabalī means a mixture of Knowledge and Ignorance both, as a long association with the good or wise attracts the mind towards knowledge but due to deeply rooted body-consciousness ignorance still prevails.

The story depicts that a happy mind is always the abode of this 'Mumukṣā' (Śabari) and Mumukṣā continues to be there till the goal of liberation or Self-Realization is achieved. This is symbolized as persistently living of Śabarī in Mataṅga Muni's āśrama till Rāma came to āśrama.

The story tells that this Mumukṣā symbolized as Śabarī continuously collects Spiritual Knowledge from here and there which is symbolized as collecting of fruits and roots by Śabarī. As a result, one day or the other, Self-Realization is achieved symbolized as the coming of Rāma in Śabarī's āśrama.

The story also tells that as soon as the goal of Self-Realization is achieved, Mumukṣā disappears representing her departure to heaven with Rāma's blessings and permission.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

किष्किन्धा काण्ड

२६. सुग्रीव-बालि कथा

(आत्म-ज्ञान द्वारा प्रसुप्त ज्ञान के जागरण एवं अज्ञान के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
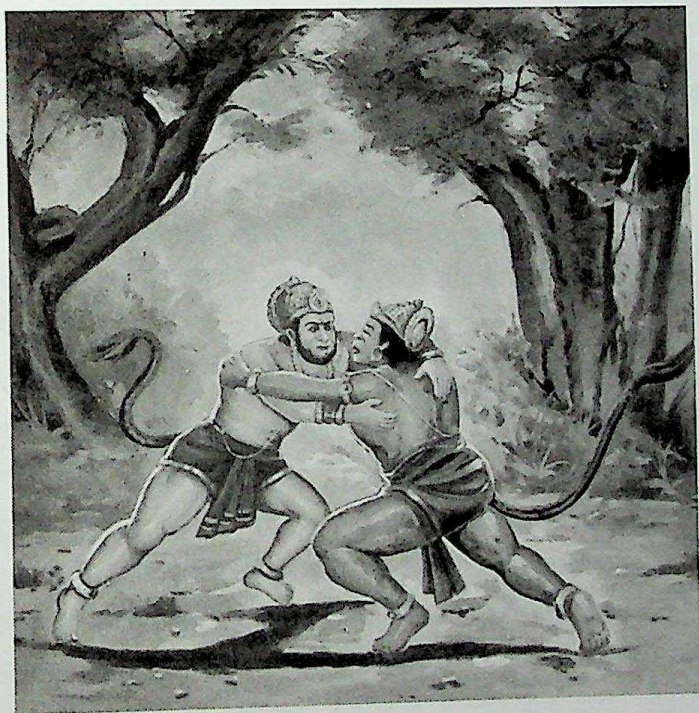
किष्किन्धाकाण्ड

सुग्रीव एवं बालि की कथा के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा प्रसुप्त ज्ञान के जागरण एवं अज्ञान के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत किष्किन्धा काण्ड में (सर्ग १ से २२ तक) सुग्रीव एवं बालि की कथा अत्यन्त विस्तार से वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सीता की खोज करते हुए राम और लक्ष्मण को जब दिव्य रूप-धारी कबन्ध ने सुग्रीव से मैत्री का परामर्श दिया, तब पम्पा के मार्ग को पार करके दोनों भाई राम और लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत पर विराजमान सुग्रीव के निकट पहुँचे और विचारों का आदान-प्रदान करते हुए परस्पर मैत्री को स्थापित किया। राम ने सूर्य-पुत्र सुग्रीव के समक्ष इन्द्र-पुत्र बालि के वध की प्रतिज्ञा की और सुग्रीव ने भी राम को सीता की प्राप्ति कराने का वचन दिया।

बालि के साथ वैर होने का कारण पूछने पर सुग्रीव ने बताया कि ऋक्षराज के क्षेत्रज पुत्र हम दोनों भाई जब किष्किन्धा पुरी में रह रहे थे, तब एक दिन रात के समय मय दानव का मायावी नामक पुत्र किष्किन्धा पुरी में आया और बालि को युद्ध के लिए ललकारने लगा। मेरे रोकने पर भी जब बालि नहीं रुका और मायावी से युद्ध करने के लिए बाहर निकल गया, तब मैं भी उसके पीछे-पीछे चला गया। मुझे देखकर मायावी भागा और भागते-भागते एक गुफा में घुस गया। बालि ने मुझे गुफा के द्वार पर ही खड़े रहने का आदेश दिया और स्वयं मायावी के पीछे-पीछे उस गुफा में घुस गया। एक वर्ष तक मैं गुफा के द्वार पर खड़ा हुआ बालि के आने की प्रतीक्षा करता रहा परन्तु बालि नहीं आया। उसी समय गुफा के भीतर से फेन सहित खून की धारा बाहर निकली, अतः मैं यह सोचकर कि मेरा भाई बालि उस मायावी द्वारा मार डाला गया, गुफा के द्वार पर एक बड़ी शिला रखकर वापस किष्किन्धापुरी में लौट आया। मेरे मना करने पर भी सिंहासन के खाली रहने से मन्त्रियों ने मुझे राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। परन्तु कुछ ही समय बाद बालि

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

वापस आ गया और क्रोधपूर्वक डाँटते हुए उसने मुझे किष्किन्धा से बाहर निकाल दिया। मैं शरण के लिए इधर-उधर भागता रहा और अन्त में बालि से पूर्णत: सुरक्षित, मत्तंग वन में स्थित इस ऋष्यमूक पर्वत पर आकर रहने लगा। मेरी पत्नी रुमा को भी बालि ने मुझसे छीन लिया।

बालि के पराक्रम का वर्णन करते हुए सुग्रीव ने पुन: कहा कि मय का पुत्र दुन्दुभि नाम का दानव युद्ध का बड़ा प्रेमी था। उसने पहले समुद्र को तथा फिर हिमालय पर्वत को युद्ध के लिए ललकारा परन्तु जब दोनों ही युद्ध के लिए तैयार नहीं हुए, तब उसने बालि को भी युद्ध के लिए ललकारा। बालि ने द्वन्द्व युद्ध करते हुए उस पर्वताकार दुन्दुभि को धरती पर पटककर दे मारा और उसकी लाश को एक योजन दूर फेंक दिया। लाश को फेंकने से उससे निकले खून के छींटे मत्तंग मुनि के आश्रम में गिरे जिससे मत्तंग मुनि क्रोधित हो गए। उन्होंने बालि तथा उसके सचिवों को भी मत्तंग वन में कभी भी प्रविष्ट न होने का शाप दे दिया। उसी शाप के कारण बालि इस मत्तंग वन में कभी नहीं आता और इसीलिए मैं यहाँ सुखपूर्वक विचरण करता हूँ।

सुग्रीव ने राम को सात साल वृक्षों को दिखाते हुए पुन: कहा कि बालि में इन सात साल के वृक्षों को एक-एक करके बींधने की सामर्थ्य है। अत: जो इन साल के वृक्षों को बींध देगा, वही बालि का वध करने में समर्थ हो सकेगा।

बालि के बल-पराक्रम से भयभीत हुए सुग्रीव को सान्त्वना देते हुए राम ने अपने बल का विश्वास दिलाने के लिए पहले तो पास में ही पड़े हुए दुन्दुभि दानव के शरीर की अस्थियों के ढेर को पैर के अंगूठे से दस योजन दूर फेंक दिया और फिर अपने एक ही बाण से साल के सातों वृक्षों को एक साथ ही बींध दिया।

बालि का वध करने के लिए राम ने सुग्रीव को ही बालि से युद्ध करने के लिए भेजा और स्वयं वृक्ष की आड़ में खड़े हो गए। सुग्रीव और बालि का परस्पर युद्ध शुरु हुआ परन्तु दोनों भाईयों के रूप की समानता देखकर राम बालि के ऊपर बाण नहीं चला सके। अत: बालि के बाणों से घायल होकर सुग्रीव जब वापस लौट आए, तब बाण न चला पाने के कारण को अभिव्यक्त करते हुए राम ने सुग्रीव के गले में पहचान के लिए गजपुष्पी लता के फूलों की माला डाल दी और सुग्रीव को पुन: बालि से युद्ध के लिए भेजा। सुग्रीव की पुन: ललकार को बालि सहन न कर सका और पत्नी तारा के समझाने तथा सुग्रीव से मैत्री के परामर्श को न मानकर वह युद्ध में सुग्रीव से जूझने लगा। बालि और सुग्रीव के परस्पर युद्ध में बालि के वध की इच्छा से ही राम ने अपना तेजस्वी बाण चलाकर बालि को धराशायी कर दिया।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्राण-त्याग से पूर्व बालि ने राम के ऊपर अधर्माचरण का आरोप लगाया परन्तु राम ने बालि को सुग्रीव-पत्नी रुमा से समागम रूप अपराध का दोषी बताकर तथा राजर्षि द्वारा की गई मृगया को उचित एवं आवश्यक बताकर बालि को दण्ड का औचित्य समझाया। बालि ने अपने अपराध के लिए क्षमा माँगते हुए प्राणों का परित्याग कर दिया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक हैं। अतः एक-एक प्रतीक को समझकर ही कथा को समझना सरल होगा।

१. सुग्रीव–

सुग्रीव शब्द सु उपसर्ग के साथ ज्ञान अर्थ वाली गृ धातु के योग से बना है। सु का अर्थ है– श्रेष्ठ अथवा सद्। अतः सुग्रीव का अर्थ हुआ– श्रेष्ठ ज्ञान अथवा सद् ज्ञान।

२. बालि–

बालि शब्द बाल से बना प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है– बाल अवस्था, अबोध अवस्था, बिखरी हुई ऊर्जा अथवा अज्ञान।

३. सुग्रीव को सूर्य का औरस पुत्र कहा गया है–

पौराणिक साहित्य में सूर्य शब्द आत्मा का और पुत्र शब्द गुण का प्रतीक है। अतः सुग्रीव को सूर्य का औरस पुत्र कहकर यह संकेत किया गया है कि श्रेष्ठ ज्ञान आत्मा का ही एक गुण है।

४. बालि को इन्द्र का औरस पुत्र कहा गया है–

बालि का अर्थ है– अज्ञानता अथवा अबोधता और इन्द्र का अर्थ है– इन्द्रियों का स्वामी मन। अतः बालि को इन्द्र का औरस पुत्र कहकर यह संकेत किया गया है कि अज्ञानता अथवा अबोधता इन्द्रियों के स्वामी मन का ही एक गुण है।

५. सुग्रीव और बालि दोनों को ऋक्षराज का क्षेत्रज पुत्र भी कहा गया है–

ऋक्ष का अर्थ है– नक्षत्र और नक्षत्रों का राजा है– चन्द्रमा। चन्द्रमा सर्वत्र मन का प्रतीक है। अतः सुग्रीव और बालि को ऋक्षराज का क्षेत्रज पुत्र कहकर यह इंगित किया गया है कि ज्ञान (सुग्रीव) और अज्ञान (बालि) दोनों ही मन के क्षेत्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

में उत्पन्न होते हैं।

६. सुग्रीव और बालि को भाई-भाई कहा गया है–

चूँकि ज्ञान और अज्ञान (सुग्रीव और बालि) दोनों ही मन के क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं, इसीलिए कथा में इन दोनों को भाई-भाई कहा गया है।

७. मय और मायावी दानव–

मय नामक दानव अहंकार (मैं मैं) का प्रतीक है। अत: मय दानव से उत्पन्न हुआ मायावी नामक दानव अहंकार से उत्पन्न हुए विचारों के मायाजाल अथवा भ्रमपूर्ण विचारों को इंगित करता है। विचारों का यह मायाजाल अथवा भ्रमपूर्ण विचार (illusory thoughts) अनेक प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए– मनुष्य क्रोध करता जाता है क्योंकि वह सोचता है कि क्रोध करना कोई असामान्य बात नहीं है और क्रोध से ही काम होता है। वह दूसरों का दमन करता है क्योंकि सोचता है कि छूट देने से लोग सिर पर चढेंगे। वह दूसरों से स्पर्धा रखता है और प्रतियोगिता में भी स्वयं को झोंकता है क्योंकि वह इस मान्यता में स्थित होता है कि सफलता के लिए ये आवश्यक हैं। चिन्ता करने को वह दूसरों का ध्यान रखना अथवा देखभाल करना समझ लेता है और बदले की भावना को बहादुरी। अपनों के प्रति अधिकार भाव को वह अपनी जिम्मेदारी समझता है और आसक्ति को प्रेम। तनाव और दबाव को जीवन में आवश्यक समझकर वह उसे एक गुण मान लेता है और क्षमा करने को कमजोरी।

८. गुफा–

गुफा शब्द चित्त या अवचेतन मन को इंगित करता है।

९. एक वर्ष तक गुफा के भीतर बालि और मायावी का युद्ध–

प्रस्तुत कथन यह संकेतित करता है कि मन का अज्ञान अर्थात् अज्ञानी मन (बालि) बहुत लम्बे समय तक विचारों के मायाजाल में उलझा रहता है, उससे निवृत्त नहीं हो पाता।

१०. गुफा के भीतर से रक्त की धारा का बाहर निकलना–

प्रस्तुत कथन इस बात का संकेत है कि बहुत समय तक चित्त या अवचेतन मन में पड़े रहने वाले भ्रमात्मक विचार अब रक्त में अर्थात् व्यक्तित्व में आत्मसात् होकर जीवन के बाह्य धरातल पर भी प्रकट होने लगे हैं।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

११. सुग्रीव का गुफा के द्वार पर एक बड़ी शिला रखकर किष्किन्धा में लौट आना–

यह कथन इस बात का प्रतीक है कि ज्ञान (सुग्रीव) भी जड़ता को अपनाकर अर्थात् जड़ रूप होकर अब समस्याओं का समाधान नहीं करता।

१२. ऋष्यमूक (ऋषि मूक) पर्वत–

ऋष्यमूक पर्वत ऋषियों अर्थात् श्रेष्ठ विचारों के मूक अर्थात् निष्क्रिय होकर स्थित हो जाने को इंगित करता है।

१३. सुग्रीव का ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करना–

प्रस्तुत कथन यह संकेतित करता है कि अज्ञान (बालि) के प्रबल हो जाने और श्रेष्ठ विचारों के निष्क्रिय हो जाने से ज्ञान (सुग्रीव) भी शान्त अथवा निष्क्रिय हो जाता है।

१४. बालि और सुग्रीव दोनों को ही वानर कहा गया है–

वानर शब्द वा अव्यय के साथ नर शब्द के योग से निर्मित हुआ है। वा एक विकल्प बोधक अव्यय है और नर शब्द विज्ञानमय तथा उच्च मनोमय कोश की चेतना अर्थात् सात्विक मनश्चेतना का वाचक है। शास्त्रों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के आनन्दमय तथा हिरण्मय कोशों में जो चेतना काम कर रही है– वह 'नार' कहलाती है, जिससे नारायण शब्द निर्मित हुआ है। वही नार चेतना जब विज्ञानमय तथा उच्च मनोमय कोशों में अवतरित होती है– तब 'नर' कही जाती है। नर चेतना यद्यपि श्रेष्ठ सात्त्विक चेतना है, परन्तु इस नर चेतना में यह सामर्थ्य भी होती है कि यह अपने से निम्नतर कोशों– निम्न मनोमय कोश तथा अन्नमय कोश से भी जुड़ सकती है और अपने से उच्चतर कोशों- हिरण्मयादि कोशों से भी जुड़ सकती है। 'वानर' अर्थात् नर शब्द में वा अव्यय को जोड़कर नर चेतना की इसी सामर्थ्य को इंगित किया गया है। निम्नतर कोशों- निम्न मनोमय कोश तथा अन्नमय कोश से जुड़ने पर अज्ञान की ओर उन्मुख होने के कारण बालि को भी वानर कहा गया है तथा उच्चतर कोशों– हिरण्मयादि कोशों से जुड़ने पर ज्ञान की ओर उन्मुख रहने के कारण सुग्रीव को भी वानर कहा गया है।

१५. दुन्दुभि दानव–

दुन्दुभि शब्द ध्वनि करने वाले एक विशेष वाद्य का वाचक है। अज्ञानी मनुष्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

का यह स्वभाव बन जाता है कि व्यवहार क्षेत्र में रहते हुए वह पुरानी बात को अथवा किसी की कही हुई किसी भी बात को अपने चित्त या मन पर रख लेता है, उन्हें जाने नहीं देता। वे सब बातें दुन्दुभि वाद्य की तरह हर समय उसके मन के भीतर बजती रहती हैं और मन को शान्त एवं स्थिर नहीं रहने देती। मन के भीतर दुन्दुभि वाद्य की तरह बजने के कारण उन बातों के बजने को ही दुन्दुभि दानव कहा गया है। यह दुन्दुभि दानव मय दानव का पुत्र है अर्थात् अहंकार की स्थिति में ही मनुष्य के भीतर उपर्युक्त वर्णित दुन्दुभि स्थिति का जन्म होता है।

१६. मत्तंग वन–

मत्तंग (मत्तं गच्छति इति) वन प्रसन्न मन के क्षेत्र को इंगित करता है।

१७. बालि द्वारा दुन्दुभि की लाश को मत्तंग वन में फेंकने का अर्थ है–

अज्ञानी द्वारा बहुत पुरानी बातों को भी लाश की भाँति ढोना और अपने ही मन की प्रसन्नता को कम करना अर्थात् जो बातें बहुत पुरानी हो चुकी हैं, यहाँ तक कि उन बातों को कहने वाले लोग भी अब जीवित नहीं हैं– उन बातों को चित्त या मन पर रखने का अब कोई लाभ भी नहीं है, परन्तु अज्ञानी मनुष्य उन सब पुरानी बातों को लाश की भाँति ढोता रहता है और अपने ही मन की प्रसन्नता को गँवाता है।

१८. राम के द्वारा पैर के अंगूठे से दुन्दुभि की अस्थियों को दस योजन दूर फेंक देना–

प्रस्तुत कथन का अर्थ है– अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित हुए अर्थात् आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) द्वारा अहंकार के कारण उपजी हुई किसी भी बात को अत्यन्त सहज रूप से दूर फेंक देना। अस्थि शब्द अस्ति अर्थात् अस्तित्व को इंगित करता है। अतः यहाँ यह संकेत किया गया है कि आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अहंकार से उत्पन्न हुई किसी भी बात के अस्तित्व तक को अपने चित्त या मन पर नहीं रखता, दूर फेंक देता है।

१९. राम द्वारा साल के सात वृक्षों को एक ही बाण से बींध देना–

साल के सात वृक्ष मनुष्य की पाँच ज्ञानेन्द्रियों- आँख, नाक, कान, मुख, त्वचा तथा मन-बुद्धि को संकेतित करते हैं। साल शब्द का अर्थ है– भित्ति या दीवार। आत्म-स्वरूप को पहचानने में बाहर की ओर उन्मुख हुई पांचों ज्ञानेन्द्रियाँ तथा मन-बुद्धि ही दीवार की भाँति बाधक बन जाते हैं। अज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्थात् बालि इन सातों बाधक तत्त्वों में से एक बार में केवल एक बाधा को हटाने में ही समर्थ हो पाता है परन्तु आत्म-स्वरूप में अवस्थित मनुष्य (राम) शरीर के उपकरण-स्वरूप हो जाने से इन सभी सातों बाधक तत्त्वों को एक ही संकल्प रूपी बाण से बींधता अर्थात् रूपान्तरित कर लेता है। तब ये सातों बाधक तत्व बाधक न रहकर साधक बन जाते हैं।

२०. तारा–

तारा शब्द तार शब्द में टाप् प्रत्यय के योग से बना है, जिसका अर्थ है– ऊँचा स्वर। तारा को बालि की पत्नी कहा गया है। पौराणिक साहित्य में पत्नी सदैव शक्ति को इंगित करती है। अत: बालि की पत्नी तारा के माध्यम से यह संकेत किया गया है कि अज्ञान की शक्ति है– उसका ऊँचा स्वर अर्थात् जीव-जगत के सम्बन्ध में प्रश्न रखना, समस्या रखना ताकि उन प्रश्नों, समस्याओं का समाधान प्राप्त करके एक न एक दिन अज्ञान से बाहर निकला जा सके।

२१. रुमा–

रुमा शब्द रु के साथ मा के योग से बना है। रु का अर्थ है– शब्द या ध्वनि (बोलचाल की भाषा में रुक्का) और मा का अर्थ है– नहीं। अत: रुमा शब्द नि:शब्दता को इंगित करता है। रुमा को सुग्रीव की पत्नी कहा गया है। अत: सुग्रीव की पत्नी रुमा के माध्यम से यह संकेत किया गया है कि ज्ञान की शक्ति है– नि:शब्द होना क्योंकि ज्ञान की स्थिति में मन के भीतर कोई प्रश्न नहीं रहता। सभी प्रश्न अज्ञान की स्थिति में ही उत्पन्न होते हैं।

२२. किष्किन्धा–

किष्किन्धा शब्द किं किं के साथ धा (दधाति) धातु के योग से बना है, जिसका अर्थ है– बहुत कुछ धारण करने वाला अर्थात् मन। चूँकि यह मन अपने भीतर ज्ञान तथा अज्ञान (सुग्रीव तथा बालि) रूप दोनों स्थितियों को धारण करता है, अत: किष्किन्धा कहलाता है।

२३. राम के द्वारा बालि का विनाश–

राम के द्वारा बालि का विनाश इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को संकेतित करता है कि ज्ञान (सुग्रीव) और अज्ञान (बालि) दोनों ही मन के तल पर विद्यमान होते हैं। अत: मन के तल पर विद्यमान हुए प्रबल अज्ञान को उसी तल पर विद्यमान हुए ज्ञान से विनष्ट नहीं किया जा सकता। मन से ऊपर उठकर अर्थात् आत्मस्थ होकर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(राम होकर) अथवा कहें मन का स्वामी बनकर ही प्रबल अज्ञान का विनाश किया जा सकता है।

२४. कथा में कहा गया है कि बालि और सुग्रीव जब द्वन्द्व युद्ध कर रहे थे, तब दोनों के रूप-रंग की समानता के कारण राम सुग्रीव को पहचान नहीं सके, अतः बालि पर बाण नहीं चला सके। परन्तु बाद में पास ही उगी हुई गजपुष्पी लता को सुग्रीव के गले में पहनाकर जब उसे बालि के साथ युद्ध हेतु भेजा गया, तब राम ने सुग्रीव को पहचानकर एक ही बाण से बालि का वध कर दिया–

'गज' शब्द पौराणिक साहित्य में सूक्ष्म अथवा विवेकी बुद्धि को संकेतित करता है। पुष्पी का अर्थ है– पुष्पित अर्थात् फैली हुई। अतः आचरण में फैली हुई (पुष्पित) विवेकी बुद्धि को ही गजपुष्पी लता कहा जा सकता है। इस आधार पर उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यही है कि आचरण में लाए बिना ज्ञान और अज्ञान को पृथक्-पृथक् करके पहचानना कठिन है। ज्ञान को उसके विवेक युक्त आचरण से ही पहचाना जाता है अर्थात् ज्ञानी की पहचान यही है कि वह उचित समय पर उचित कार्य को उचित रीति से सम्पन्न करता है। आत्मस्थ मनुष्य अर्थात् राम इसी आधार का आश्रय लेकर एक ही बाण रूप संकल्प से अर्थात् सहज रूप से ही अज्ञान को पहचानकर अज्ञान का विनाश कर देता है।

२५. कथा में सुग्रीव-पत्नी रुमा के साथ बालि के समागम को बालि-वध का कारण निरूपित किया गया है–

जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है– ज्ञान (सुग्रीव) की शक्ति (पत्नी) है– निःशब्दता (रुमा) और अज्ञान (बालि) की शक्ति (पत्नी) है– ऊँचा स्वर (तारा)। यहाँ यह संकेतित किया गया है कि चूँकि ज्ञान स्वयं में पूर्ण होता है, इसलिए उसका निःशब्दता के साथ रहना ही श्रेष्ठ स्थिति है परन्तु अज्ञान यदि निःशब्द (चुप) रह जाए, अर्थात् अज्ञान में स्थित मनुष्य न कोई प्रश्न उठाए, न किसी समस्या को प्रस्तुत करे, न उसका समाधान चाहे– तब यह निःशब्दता की स्थिति जिसे कथा में बालि का रुमा के साथ समागम कहकर इंगित किया गया है– श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती क्योंकि निःशब्द होकर अज्ञान कभी भी अज्ञान की स्थिति से बाहर नहीं हो सकता। कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित होने पर मनुष्य इस निःशब्दता (रुमा) के साथ रहने वाले अज्ञान (बालि) का वध

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कर देता है। तभी वह हर प्रकार की समस्या को देखने, समझने और उसका समाधान प्राप्त करने की दिशा में प्रवृत्त हो पाता है। यह आश्चर्य का ही विषय है कि मनुष्य अज्ञान में विद्यमान होता है परन्तु फिर भी उसके पास, न स्वयं के विषय में, न जगत के विषय में ही कोई प्रश्न होता है क्योंकि उसका वह अज्ञान (बालि) नि:शब्दता (रुमा) के साथ समागम कर लेता है।

२६. राम ने बालि को कहा कि मृगया करना राजर्षियों का स्वभाव है। अत: तुझ वानर को मारने में मुझे कोई दोष नहीं प्राप्त होगा–

पौराणिक कथाओं में आया हुआ मृगया शब्द वास्तव में शिकार का वाचक न होकर अन्वेषण को इंगित करता है। यह (मृगया) शब्द अन्वेषण अर्थ वाली मृग् धातु से बना है। राजर्षि (राज-ऋषि) शब्द आत्मस्थ अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानने वाले मनुष्य को इंगित करता है। आत्मस्थ मनुष्य ही अपने मन-बुद्धि-इन्द्रियादि का राजा होता है और ऋषि अर्थात् श्रेष्ठ विचारों से युक्त भी। आत्मस्थ मनुष्य का यह स्वभाव ही होता है कि वह अन्वेषण-प्रिय होने के कारण अपने ही भीतर विद्यमान अपने ही अज्ञान (अथवा तत्सम्बन्धित विकारों) को विनष्ट करके स्वचेतना (आत्म-चेतना) को सुदृढ़ता प्रदान करता है।

कथा का तात्पर्य

मानव-मन (किष्किन्धापुरी) में ज्ञान भी विद्यमान है और अज्ञान भी। ज्ञान को कथा में सुग्रीव कहा गया है तथा अज्ञान को बालि। ज्ञान आत्मा से जुड़ा रहता है, इसलिए सुग्रीव को सूर्य के औरस पुत्र के रूप में इंगित किया गया है। अज्ञान शरीर से जुड़ा रहता है, इसलिए बालि को इन्द्रियों के अधिपति मन अर्थात् इन्द्र के औरस पुत्र के रूप में इंगित किया गया है।

मन रूपी किष्किन्धापुरी के सिंहासन पर विराजमान होकर ये ज्ञान (सुग्रीव) तथा अज्ञान (बालि) रूप दोनों ही प्रकार अपने-अपने कार्य को यथाविधि सम्पन्न करते रहते हैं, इसलिए कथा में दोनों को भाई-भाई कहकर संकेतित किया गया है। इन ज्ञान तथा अज्ञान रूप दोनों प्रकारों में से जब ज्ञान क्रियाशील होता है, तब अज्ञान उसमें कोई व्यवधान उपस्थित नहीं करता और जब अज्ञान क्रियाशील रहता है, तब ज्ञान भी कोई बाधा नहीं लाता। तात्पर्य यह है कि मानव-मन २४ घंटे के भीतर कभी ज्ञान में रहता है तो कभी अज्ञान में।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

समस्या तब उपस्थित होती है, जब मन के सिंहासन पर विराजित हुआ अज्ञान (ब्रालि) अत्यन्त भ्रमपूर्ण विचारों (illusory thoughts) में उलझ जाता है और तब तक उलझा रहता है जब तक वे भ्रमपूर्ण विचार रक्त में अर्थात् व्यक्तित्व में आत्मसात् नहीं हो जाते। इसी तथ्य को व्यक्त करने के लिए कथा में मायावी दानव के प्रसंग का समावेश किया गया है। (दृष्टव्य-कथा का प्रतीकात्मक स्वरूप, नं-७)

व्यक्तित्व में आत्मसात् हो चुके उन भ्रमपूर्ण विचारों के कारण मन के सिंहासन पर विराजमान अज्ञान (बालि) प्रबल हो जाता है। अतः ज्ञान (सुग्रीव) भी अब उपस्थित विषयों को सुलझा नहीं पाता। यहाँ तक कि उस प्रबल अज्ञान (बालि) से प्रताड़ित हुआ ज्ञान (सुग्रीव) मन रूपी किष्किन्धापुरी से पलायन करके निष्क्रिय अथवा सुषुप्त स्थिति में विद्यमान हो जाता है, जिसे कथा में सुग्रीव का ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करना कहकर संकेतित किया गया है। सुषुप्त स्थिति में विद्यमान यह ज्ञान (सुग्रीव) अब केवल तभी सक्रिय हो पाता है, जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानकर उसमें अवस्थित हो जाता है। राम की सुग्रीव से मैत्री के रूप में इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

आत्म-स्वरूप अथवा आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने प्रसुप्त ज्ञान (सुग्रीव) को जाग्रत करके अज्ञान (बालि) का विनाश करता है और फिर यही जाग्रत ज्ञान (सुग्रीव) सहस्रों ज्ञान-शक्तियों (वानरों) के रूप में फैलकर अवचेतन मन में संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान रूपी रावण के विनाश तथा उसकी कैद में पड़ी हुई पवित्र-सोच (सीता) को वापस लाने में आत्मस्थ मनुष्य (राम) का नितान्त सहायक हो जाता है।

प्रस्तुत कथा के माध्यम से इस विशेष तथ्य को संकेतित किया गया है कि प्रबल अज्ञान (बालि) का विनाश न तो केवल ज्ञान (सुग्रीव) से और न केवल आत्मस्थ होकर अर्थात् राम द्वारा किया जा सकता है। प्रबल अज्ञान का विनाश इन दोनों के समन्वय अर्थात् आत्मस्थ होकर ज्ञान के सहयोग से ही सम्भव हो पाता है। उदाहरण के लिए– देह-भाव में रहने के कारण जब मनुष्य किसी से घृणा करता है, तब मात्र ज्ञान से घृणा को समाप्त नहीं किया जा सकता। घृणा को समाप्त करने के लिए प्रेम की स्थापना आवश्यक है। प्रेम की स्थापना के लिए आत्मस्थ (अपने आपको आत्म-स्वरूप समझकर दूसरों को भी आत्म-स्वरूप ही समझना) होना आवश्यक है और आत्मस्थ होकर भी इस ज्ञान में निरन्तर स्थित रहना है कि मुझ आत्मा का स्वभाव ही सबके प्रति प्रेमपूर्ण होना है। फिर इसी

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ज्ञानपूर्ण संकल्प में निरन्तर स्थित रहते हुए घृणा को समाप्त किया जा सकता है।

दुन्दुभि दानव की कथा का समावेश करके यह स्पष्ट किया गया है कि अज्ञान की स्थिति में मनुष्य अहंकार से उत्पन्न हुई छोटी-छोटी बातों को भी अपने चित्त या मन के ऊपर रख लेता है– उन्हें छोड़ता नहीं। जिसका परिणाम यह होता है कि वे सब बातें हर समय दुन्दुभि वाद्य की भाँति उसके मन में बजती रहती हैं और मन को कभी भी स्थिर तथा शान्त नहीं रहने देती।

सुग्रीव और बालि के माध्यम से ज्ञान और अज्ञान का वर्णन करते हुए दो अन्य संकेत भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

पहला संकेत है– सुग्रीव के गले में गजपुष्पी लता को पहनाकर यह इंगित करना कि बाह्य रूप से देखने में तो ज्ञानी और अज्ञानी दोनों बिल्कुल समान ही दीखते हैं, परन्तु ज्ञानी मनुष्य का विवेक युक्त आचरण उसे अज्ञानी से सर्वथा पृथक् कर देता है।

दूसरा संकेत है– रुमा (नि:शब्दता) के साथ बालि (अज्ञान) के समागम को बालि का अपराध बताते हुए बालि (अज्ञान) के विनाश को आवश्यक बताना। वह अज्ञान सर्वथा विनाश के योग्य है जिसमें स्थित हुआ मनुष्य नि:शब्द (शब्द रहित) होता है अर्थात् अज्ञान में स्थित होने के कारण मनुष्य कभी यह प्रश्न ही नहीं उठाता है कि मैं कौन हूँ अथवा यह जीव और जगत क्या है। नि:शब्दता (रुमा) वास्तव में ज्ञानी (सुग्रीव) को ही सुशोभित होती है, अज्ञानी (बालि) को कभी नहीं। अत: नि:शब्दता अज्ञानी की एक अत्यन्त जड़ स्थिति है और इस जड़ता (अज्ञानता) को विनष्ट करना आवश्यक है। अज्ञान शब्द यद्यपि अपने भीतर ज्ञान-रहितता के अत्यन्त विस्तार को समेटे हुए है, परन्तु अज्ञान के साथ नि:शब्दता का समागम (बालि का रुमा के साथ समागम) कहकर यहाँ अज्ञान (बालि) को बहुत स्पष्ट कर दिया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Knowledge emerges and Ignorance is destroyed by Self-Knowledge as depicted through the story of Sugrīva and Bāli

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Kiṣkindhā Kāṇḍa, chapters 1 to 22), *there is a story of Sugrīva and Bāli. When Rāma and Lakṣmaṇa were wandering in Daṇḍakāraṇya in search of Sītā, they confronted demon Kabandha. Kabandha, transformed to a divine form advised them to makę friendship with Sugrīva for help. Then Rāma and Lakṣmaṇa approached Sugrīva and established a mutual friendship. Sugrīva was very much afraid of his brother Bāli and he told Rāma the whole story which had happened with him (Bāli).*

Sugrīva told Rāma that he was living in Kiṣkindhāpurī with Bāli. But once upon a time, Bāli fought bravely with demons Māyāvī and Dundubhi. Then he (Bāli) became very powerful and expelled him (Sugrīva) from Kiṣkindhāpurī. He (Bāli) also kept his wife – Rumā in his possession.

Describing the powers of Bāli, Sugrīva also told Rāma that Bāli threw horrible demon Dundubhi far away in Mataṅga forest and pierced Śāla tree with one arrow. Hearing this Rāma promised Sugrīva to kill Bāli and in turn he (Rāma) also received an assurance from him (Sugrīva) to help him in bringing back Sītā.

As Sugrīva was very much afraid by the Power of Bāli, and was doubtful about the Power of Rāma, Rāma convinced Sugrīva by throwing the bones of demon Dundubhi with his toe miles away and piercing seven Śāla trees by one arrow all at one time.

Now having been convinced about the Power of Rāma, Sugrīva followed all his advice and instructions. Hence Sugrīva fought a battle with Bāli in which Bāli was killed by an arrow of hidden Rāma. Bāli complainted Rāma that his killing was illegal and immoral but as soon as Rāma told him his fault of mating with Rumā (Sugrīva's wife), he (Bāli) realised his own fault and apologized to Rāma to forgive him.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The story is symbolic and depicts Knowledge and Ignorance both symbolized as Sugrīva and Bāli. It says that Knowledge (Sugrīva) and Ignorance (Bāli) are two aspects of human mind and the mind continuously oscillates between the two. There is no conflict between them. But the problem arises when one i. e. Ignorance (Bāli) becomes much more powerful and overpowers the other i.e. Knowledge (Sugrīva). Now Knowledge becoming weak slowly lies dormant.

The story describes three main reasons which make Ignorance powerful.

1. An Ignorant person always lives with illusory thoughts which are created by Ego eg., he thinks and believes that Anger is natural and normal. He controls others thinking that controlling is a power. He lives in vices such as comparison and competition thinking them as virtue. He worries thinking it as care and concern. He becomes possessive thinking it his responsibility. He assumes attachment as love and revenge and hatred as natural. He believes that forgiveness is weakness. Thus an ignorant person is entangled in illusory thoughts which help in making his ignorance powerful. This is symbolized as living of Bāli with demon Māyāvī in a cave for a long time.

2. An Ignorant person always creates waste and negative thoughts. He easily gets hurt and churns the past too much. This makes his mind turbulent and steals his happiness. This is symbolized as fighting of Bāli with demon Dundubhi and throwing his body in Mataṅga forest.

3. An Ignorant person never contemplates over Self and Supreme. No question arises in his mind related to knowledge. This is a big fault of an ignorant mind because craving for Knowledge only can lead him ahead. This is symbolized as living of Bāli with Rumā – wife of Sugrīva.

The story also points out that it is not possible to differentiate between Knowledge and Ignorance externally. They look like same externally but are totally different internally. Knowledge and Ignorance are recognized only by a person's behaviour. This

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

is symbolized as putting a garland (Gajapuṣpī latā) around the neck of Sugrīva to differentiate him from Bāli.

At last the story tells that when a person Knows his own Real Self, his own Dormant Knowledge emerges and Ignorance vanishes. This emerged Knowledge i.e. Sugrīva helps in bringing back Purity (Sītā) again which was stolen by Ego.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२७. स्वयंप्रभा कथा

(ज्ञान-शक्तियों की स्वयंप्रकाशता का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्वयंप्रभा कथा के माध्यम से ज्ञान-शक्तियों की स्वयंप्रकाशता का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत किष्किन्धाकाण्ड (सर्ग ५० से ५२ तक) में वर्णित स्वयंप्रभा नामक तापसी की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सुग्रीव द्वारा सीता के अन्वेषण हेतु दक्षिण दिशा में भेजे गए वानर (गज, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान, जाम्बवान्, अंगद, तार आदि) जब बहुत प्रयत्न करने पर भी कहीं सीता को न पा सके, तब भूख-प्यास से व्याकुल होकर समीप में विद्यमान उस गुफा के भीतर प्रविष्ट हो गए, जिसके भीतर से जल से भीगे हुए बहुत से पक्षी बाहर निकल रहे थे। गुफा के भीतर प्रविष्ट होना यद्यपि कष्टसाध्य ही था, तथापि प्रयत्नपूर्वक प्रवेश करके वानरों ने वहाँ दिव्य वृक्ष, सरोवर तथा भवन के साथ-साथ एक वृद्धा तापसी को भी देखा। परस्पर परिचय का आदान-प्रदान करते हुए तापसी ने कहा कि वह मेरुसावर्णि की कन्या तथा हेमा की सखी स्वयंप्रभा है और हेमा के इस भवन की सदा रक्षा करती है। भूख-प्यास से व्याकुल हुए वानरों ने स्वयंप्रभा की अनुमति से वहाँ दिव्य जल एवं फल ग्रहण करके तृप्ति प्राप्त की और फिर स्वयंप्रभा की सहायता से ही वे गुफा से बाहर निकल गए।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है। अतः एक-एक प्रतीक को समझना उपयोगी है।

१. सीता–

मन-बुद्धि की पवित्रता अथवा पवित्र-सोच को ही रामकथा में सीता नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

२. सुग्रीव–

सुग्रीव शब्द सु उपसर्ग के साथ ज्ञान अर्थ वाली गृ धातु के योग से निष्पन्न हुआ है। अतः यह श्रेष्ठ ज्ञान को इंगित करता है। संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान (रावण) जब अपनी ही पवित्रता (सीता) को चुरा लेता है

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अर्थात् अपने ही जीवन-व्यवहार में जब पवित्रता विद्यमान नहीं रहती, तब इस पवित्रता की पुनः प्राप्ति हेतु अपने ही ज्ञान को जगाना और उसे आचरण में उतारना अनिवार्य हो जाता है, जिसे कथा में सीता की प्राप्ति हेतु सुग्रीव तथा वानरों के सहायक होने के रूप में चित्रित किया गया है।

३. वानर–

ज्ञान को क्रियान्वित करने वाली अथवा आचरण में उतारने वाली विभिन्न ज्ञान-शक्तियों को ही रामकथा में वानरों के रूप में चित्रित किया गया है। चूँकि ये ज्ञान-शक्तियाँ अनेक प्रकार की होती हैं, अतः ज्ञान की भिन्नता के आधार पर ही इन्हें तत्तद् नामों से सम्बोधित किया गया है। उदाहरण के लिए– यम-नियम-संयम रूप ज्ञान-शक्ति को जाम्बवान् तथा विवेक या प्रज्ञा रूप ज्ञान-शक्ति को हनुमान नाम दिया गया है।

४. स्वयंप्रभा–

स्वयंप्रभा शब्द का अर्थ ही है– स्वयं की प्रभा अर्थात् स्वयं का प्रकाश। स्वयंप्रभा के माध्यम से इस सत्य का उद्घाटन किया गया है कि ज्ञान-शक्तियाँ अपने भीतर एक विशिष्ट ज्ञान-प्रकाश को धारण करती हैं, जो उनका स्वयं का प्रकाश होता है। यह स्वयं का प्रकाश ही ज्ञान-शक्तियों को उस विपरीत परिस्थिति में भी जीवित रखता है, जब उनका कोई उपयोग नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए– जब मनुष्य देह-चेतना में विद्यमान होता है, तब वह अपने जीवन-व्यवहार में जो जैसा है– उसको उसी रूप में स्वीकार करना, सबके साथ सहयोग करना, अवांछित को भी शान्तिपूर्वक सहन करना, बीती हुई बातों को तूल न देकर उन्हें छोड़ देना अथवा वर्तमान में ही रहना आदि विभिन्न प्रकार की ज्ञान-शक्तियों का उपयोग नहीं कर पाता। अतः वे ज्ञान-शक्तियाँ निष्प्रयोजन होकर निरर्थक हो जाती हैं। परन्तु निष्प्रयोजन अथवा निरर्थक हो जाने का भी यह अभिप्राय नहीं है कि ज्ञान-शक्तियाँ विनष्ट हो जाती हैं। कथा संकेत करती है कि निष्प्रयोजन अवस्था में भी ज्ञान-शक्तियाँ कभी अपना अस्तित्व नहीं खोती, वे अपने ही अन्तर्प्रकाश से जीवित रहती तथा हृष्ट-पुष्ट बनी रहती हैं। भूख-प्यास से व्याकुल हुए वानरों को स्वयंप्रभा की सहायता से प्राप्त हुई तृप्ति के रूप में इसी तथ्य को व्यक्त किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

५. गुफा में विद्यमान दिव्य जल एवं फल–

दिव्य जल एवं फल वास्तव में ज्ञान-शक्तियों के भीतर विद्यमान उनकी आन्तरिक दिव्यता को ही इंगित करते हैं। ज्ञान-शक्तियाँ अपनी आन्तरिक दिव्यता से अनुप्राणित होती हैं, जिसे कथा में दिव्य जल एवं फल से वानरों का तृप्त होना कहकर इंगित किया गया है।

६. वानरों द्वारा गुफा में वृद्धा तापसी स्वयंप्रभा का दर्शन–

प्रस्तुत कथन का अर्थ है– ज्ञान-शक्तियों द्वारा अपनी ही प्रकाशरूपता का साक्षात्कार करना। चूँकि ज्ञान-शक्तियों के भीतर यह प्रकाशरूपता चिरकाल से विद्यमान है, इसीलिए स्वयंप्रभा को वृद्धा तापसी के रूप में चित्रित किया गया है।

७. स्वयंप्रभा को मेरुसावर्णि की कन्या कहा गया है–

मेरुसावर्णि शब्द मेरु और सावर्णि नामक दो शब्दों के योग से बना है। मेरु शब्द ज्ञान का वाचक है और सावर्णि का अर्थ है– समान वर्ण का। अतः मेरुसावर्णि शब्द ज्ञान के समान वर्ण वाली ज्ञान-शक्ति को ही इंगित करता प्रतीत होता है। कन्या शब्द पौराणिक साहित्य में विशेषता या गुण को संकेतित करता है, अतः स्वयंप्रभा को मेरुसावर्णि की कन्या कहकर यह संकेतित किया गया है कि स्वयंप्रकाशता प्रत्येक ज्ञान-शक्ति की अपनी विशेषता है। प्रत्येक ज्ञान-शक्ति स्वयं के प्रकाश से सदा संयुक्त रहती है।

८. स्वयंप्रभा को हेमा की सखी कहा गया है–

हेमा शब्द स्वयंप्रकाश आत्मा को अथवा आत्मा की स्वयंप्रकाशता को संकेतित करता प्रतीत होता है। अतः स्वयंप्रभा को हेमा की सखी कहकर यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि ज्ञान-शक्तियों की प्रकाशरूपता आत्मा की प्रकाशरूपता के सदृश ही है।

कथा का तात्पर्य

प्रस्तुत कथा के माध्यम से ज्ञान-शक्तियों के भीतर विद्यमान उस स्वयंप्रकाशता और दिव्यता की ओर संकेत किया गया है, जो उनकी अपनी विशेषता है और जो उन्हें विपरीत परिस्थितियों में भी जीवित रखती है, मरने नहीं देती। उदाहरण के लिए– संस्कार रूप धारण कर चुके अपने ही देहाभिमान के कारण जब अपने ही जीवन-व्यवहार से अपनी ही पवित्रता (सीता) लुप्त हो जाती

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

है, तब सच्चाई, ईमानदारी, सहयोग, सेवा, समर्पण, क्षमा, दया, करुणा, कृतज्ञता, दृढ़ता, विश्वास तथा सरलता आदि जितनी भी अभ्युदय-कारक ज्ञान-शक्तियाँ हैं, उनकी उपयोगिता खो जाती है परन्तु वे कभी मरती नहीं हैं। कथा संकेत करती है कि ज्ञान-शक्तियों के भीतर विद्यमान उनकी अपनी प्रकाशरूपता ही उस विपरीत समय में उनकी रक्षा करती है, जिसे कथा में स्वयंप्रभा द्वारा भूख-प्यास से व्याकुल हुए वानरों की सहायता करने के रूप में संकेतित किया गया है।

चूँकि यह प्रकाशरूपता ज्ञान-शक्तियों की अपनी विशेषता है, इसलिए इस तथ्य को प्रतीक रूप में यह कहकर प्रस्तुत किया गया है कि स्वयंप्रभा मेरुसावर्णि की कन्या है। स्वयंप्रभा का अर्थ है– प्रकाशरूपता, मेरुसावर्णि का अर्थ है– ज्ञान-शक्ति और कन्या का अर्थ है– विशेषता।

ज्ञान-शक्तियों की यह प्रकाशरूपता ठीक वैसी ही होती है, जैसी आत्मा की स्वयंप्रकाशता। अतः इस तथ्य को भी प्रतीक रूप में यह कहकर प्रस्तुत किया गया है कि स्वयंप्रभा हेमा की एक सखी है। हेमा शब्द स्वयंप्रकाश आत्मा अथवा आत्मा की स्वयंप्रकाशता को ही संकेतित करता प्रतीत होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Powers of Knowledge have their Own Light as described in the story of Svayamprabhā

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Kiṣkindhākāṇḍa, chapters 50-52), there is a story of Svayamprabhā. It is said that Sugrīva sent some Vānaras in south direction in search of Sītā but inspite of their hard and sincere efforts they could not trace her. During this mission when they became hungry and tired, they entered a cave situated nearby. There they saw divine water and fruits looked-after by an ascetic woman named Svayamprabhā. Svayamprabhā told them that she is the daughter of Merusāvarṇi and friend of Hemā. Hemā had appointed her to take care of this place. As Vānaras were very hungry and tired, they satisfied their thirst and hunger by drinking divine water and fruits with her permission. At last they came out of the cave by her guidance and help.

The story is symbolic and reveals the truth that the Powers of Knowledge always have their 'Inner Light' symbolized as Svayamprabhā. This Inner Light helps in keeping those Powers alive when they are dormant and seemingly dead. For example– Living in body-consciousness, different Powers of Knowledge such as– honesty, truth, cooperation, service, submission, sympathy, ampathy, confidence, gratitude, forgiveness and simplicity etc. are not visible in life at all. They become dormant (inactive) and loose their utility.

The story tells that in such dormant condition they do exist and do not get extinct. Now a simple question arises in mind that what is the secret of their existence. Enlightning the secret, the story clarifies that the Powers of Knowledge continue to exist only by the help of their Inner Light. This Inner Light is their intrinsic nature and this Light is same as the Light of soul. This is symbolized as saying that Svayamprabhā is a daughter of Merusāvarṇi and a friend of Hemā.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

In this story, the Powers of Knowledge are symbolized as Vānaras and Inner Light of these powers is symbolized as Svayamprabhā.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२८. हनुमान की उत्पत्ति-कथा

(प्रज्ञा की उत्पत्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
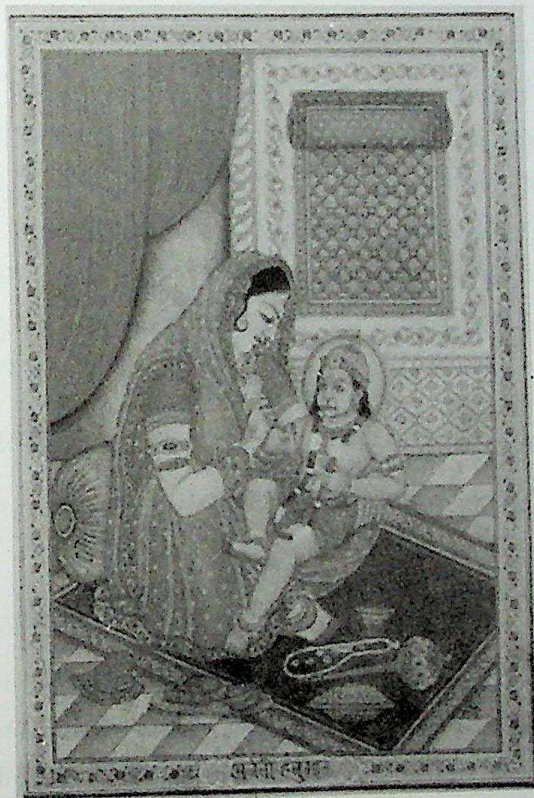
हनुमान की उत्पत्ति-कथा के माध्यम से प्रज्ञा की उत्पत्ति का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत किष्किन्धा काण्ड (सर्ग ६६) में हनुमान की उत्पत्ति से सम्बन्ध रखने वाली एक छोटी सी कथा वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

पुञ्जिकस्थला नाम की एक अप्सरा थी, जो अप्सराओं में अग्रगण्य थी। वह शापवश जब कपि योनि में अवतीर्ण हुई, तब अञ्जना कहलाई। अञ्जना वानरराज कुञ्जर की पुत्री और वानरराज केसरी की पत्नी थी। वह रूप और यौवन से भी सुशोभित थी। एक दिन जब वह पर्वत के शिखर पर विचरण कर रही थी, तब वस्त्रों के हट जाने से उसके सुन्दर अंगों का अवलोकन करके वायुदेव उस पर मोहित हो गए और उन्होंने उसके साथ मानसिक समागम किया। फलस्वरूप अञ्जना ने एक गुफा के भीतर उन वायुदेव के पुत्र महाबली एवं महातेजस्वी हनुमान को जन्म दिया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है। अतः कथा के एक-एक प्रतीक को समझ लेना आवश्यक है।

१. पुञ्जिकस्थला अप्सरा–

पुञ्जिकस्थला शब्द पुंजिक और स्थला नामक दो शब्दों के योग से बना है। पुंजिक (पुंजित) का अर्थ है– समूह अथवा एकत्रित और स्थला का अर्थ है– स्थान। अतः पुञ्जिकस्थला का अर्थ हुआ– एक स्थान पर एकत्रित (ज्ञान)।

अप्सरा शब्द अप् उपसर्ग के साथ सृ धातु के योग से निष्पन्न हुआ है। अप् का अर्थ है– नीचे की ओर और सृ धातु का अर्थ है– सरण करना या बहना। अतः जो शक्ति ऊपर से नीचे की ओर सरण करती है अर्थात् बहती है– वह अप्सरा कहलाती है। अप्सरा को पुंजिकस्थला नाम देकर यह संकेतित किया गया है कि जो शक्ति एक स्थान पर एकत्रित हुए ज्ञान को अर्थात् ज्ञान के पुञ्ज को हिरण्यमय कोष से नीचे के कोष में अर्थात् मनोमय कोष में (मन-बुद्धि के स्तर पर) उतारती है– वह पुञ्जिकस्थला अप्सरा है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

२. अञ्जना–

हिरण्यमय कोष से मनोमय कोष में अवतरित हुए ज्ञान-पुंज को ही यहाँ अञ्जना के रूप में सम्बोधित किया गया है। संस्कृत शब्द-कोश के आधार पर अञ्जन का अर्थ होता है– सुरमा, जिसे नेत्रों में लगाकर नेत्र-ज्योति को पुष्ट किया जाता है। पौराणिक साहित्य में इस अञ्जन शब्द का प्रयोग ज्ञान के प्रतीक रूप में भी किया गया है क्योंकि ज्ञान रूपी अञ्जन से भी मनुष्य की दृष्टि (दूसरों के प्रति निर्मित हुई भाव रूप दृष्टि) स्वच्छ, पुष्ट और विकसित होती है। अत: अञ्जना यहाँ ज्ञान को ही इंगित करती प्रतीत होती है।

३. कपि-योनि–

कपि शब्द कम्पन अर्थ वाली कम्प् धातु से बना है तथा योनि शब्द स्थान का वाचक है। चूँकि मनुष्य का मन कम्पन धर्म से युक्त है, इसलिए कपि-योनि कहकर मनुष्य के मनोमय कोष अर्थात् मन को ही इंगित किया गया है।

४. कथा में अञ्जना को वानरराज कुञ्जर की पुत्री कहा गया है–

कुञ्जर शब्द कु और जर नामक दो शब्दों के योग से बना है। कु का अर्थ है– विकृति या विकार और जर का अर्थ है– जीर्ण अथवा क्षीण। अत: वानरराज कुञ्जर का अर्थ हुआ– ऐसा शुद्ध और परिष्कृत मन जिसके विकार क्षीण हो गए हों। पुत्र अथवा पुत्री शब्द पौराणिक साहित्य में सर्वत्र गुण अथवा विशेषता का वाचक है। अत: अञ्जना को कुञ्जर की पुत्री कहकर यह संकेत किया गया है कि ज्ञान रूपी गुण अर्थात् अञ्जना की उत्पत्ति में शुद्ध, परिष्कृत मन (वानरराज कुञ्जर) ही समर्थ है।

५. कथा में अञ्जना को वानरराज केसरी की पत्नी कहा गया है–

वानरराज केसरी का अर्थ है– श्रेष्ठ मन। पत्नी शब्द पौराणिक साहित्य में सर्वत्र शक्ति का वाचक है। अत: अञ्जना को वानरराज केसरी की पत्नी कहकर यह संकेत किया गया है कि ज्ञान रूपी अञ्जना केवल श्रेष्ठ मन (वानरराज केसरी) की शक्ति है। कमजोर मन ज्ञान रूप शक्ति को धारण करने में समर्थ नहीं है।

६. शाप–

शाप शब्द पौराणिक साहित्य में सर्वत्र अवश्य भवितव्यता अर्थात् अवश्य घटित होने को इंगित करता है। हिरण्मय कोष में विद्यमान ज्ञान एक न एक दिन

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मनोमय कोष में अर्थात् मन के स्तर पर अवश्य प्रकट होता है– इसी अवश्यम्भाविता को व्यक्त करने के लिए यहाँ शाप शब्द का प्रयोग किया गया है।

७. अञ्जना का पर्वत के शिखर पर विचरण करना–

प्रस्तुत कथन ज्ञान के ही मनन-चिन्तन को इंगित करता है।

८. वायुदेव–

वायुदेव मनुष्य के स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर में क्रियाशील प्राणशक्ति/चेतनाशक्ति को इंगित करते हैं। अञ्जना के साथ वायुदेव का आलिंगन अथवा मानसिक समागम वास्तव में ज्ञानशक्ति (अञ्जना) के साथ प्राणशक्ति (वायुदेव) के विनियोग को इंगित करता है। अञ्जना के साथ वायुदेव के समागम से पुत्र हनुमान की उत्पत्ति कहकर यह संकेत किया गया है कि ज्ञानशक्ति के साथ प्राणशक्ति का विनियोग होने पर ही हनुमान रूपी प्रज्ञा उत्पन्न होती है। ज्ञानशक्ति अपने आप में बहुत सुन्दर है, परन्तु आचरण में उतरे बिना इसकी सार्थकता नहीं है और ज्ञान की शक्ति आचरण में तभी उतरती है, जब मनुष्य अपनी सम्पूर्ण प्राणशक्ति को उस कार्य में लगाता है। उदाहरण के लिए– सत्य बोलो अथवा ईमानदार रहो- एक श्रेष्ठ सुन्दर ज्ञान है, परन्तु सत्य बोलने के लिए अथवा ईमानदार होने के लिए मनुष्य को अपनी सम्पूर्ण प्राणशक्ति का विनियोग उस कार्य में करना पड़ता है, तभी वह सुन्दर ज्ञान सार्थक हो पाता है।

९. हनुमान–

उपर्युक्त वर्णित ज्ञानशक्ति (अञ्जना) और प्राणशक्ति/चेतनाशक्ति (वायुदेव) के परस्पर सम्मिलन से जो तीसरा तत्त्व मनुष्य के भीतर उत्पन्न होता है, उसे प्रज्ञा कहा जाता है। हनुमान इसी प्रज्ञा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

कथा का तात्पर्य

प्रस्तुत कथा प्रज्ञा (हनुमान) की उत्पत्ति को बहुत ही अद्भुत ढंग से निरूपित करती है। कथा संकेत करती है कि प्रत्येक मनुष्यात्मा ज्ञानस्वरूप है परन्तु वह ज्ञान अव्यक्त अवस्था में विद्यमान रहता है और उपयुक्त समय आने पर ही अर्थात् आत्म-स्वरूप का जागरण होने पर ही वह ज्ञान मन के स्तर पर प्रकट होता है। जो शक्ति उस ज्ञान को मन के स्तर पर उतारती है, उसे कथा में अप्सराओं में अग्रगण्य पुंजिकस्थला अप्सरा कहा गया है। मन के स्तर पर अवतरित हुआ वही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ज्ञान अब अव्यक्त से व्यक्त होकर अञ्जना कहलाता है। कथा में अञ्जना को वानरराज कुञ्जर की पुत्री और केसरि की पत्नी कहकर यह संकेतित किया गया है कि ज्ञान के अवतरण के लिए मन का शुद्ध और श्रेष्ठ होना अनिवार्य है। अशुद्ध, विकारी मन ज्ञान को धारण करने में कभी समर्थ नहीं होता।

पर्वत के शिखर पर अञ्जना का विचरण करना ज्ञान-विषयक मनन-चिन्तन को इंगित करता है। कथा संकेत करती है कि यद्यपि ज्ञान अपने आप में बहुत सुन्दर होता है, परन्तु मनन-चिन्तन करने पर जब उसी ज्ञान की एक-एक पर्त्त खुलती है, तब मनुष्य की प्राणशक्ति/चेतनाशक्ति उस सुन्दरता की ओर आकर्षित होकर उस पर अत्यन्त मुग्ध हो जाती है, जिसे कथा में अञ्जना के अंगों का अवलोकन करके वायुदेव का काम से मोहित हो जाना कहा गया है।

ज्ञान के अंग-प्रत्यंग पर मुग्ध हो जाना ही वह स्थिति होती है, जब मनुष्य अपनी सम्पूर्ण प्राणशक्ति/चेतनाशक्ति को उस ज्ञान के भीतर नियोजित कर देता है। इसे ही कथा में अञ्जना के साथ वायुदेव का मानसिक समागम कहकर इंगित किया गया है।

ज्ञान के भीतर प्राणशक्ति/चेतनाशक्ति के नियोजन अथवा विनियोग से जो तीसरा तत्व उत्पन्न होता है– उसे प्रज्ञा कहा गया है। प्रज्ञा का अर्थ है– ऐसी बुद्धिशक्ति जो ज्ञान और आचरण के अद्भुत समन्वय से युक्त है अर्थात् मनुष्य अब पूर्ण पुरुषार्थ और उत्साहपूर्वक प्रत्येक ज्ञान को जीवन-व्यवहार में उतारने लगा है अथवा ज्ञान के अनुसार जीने लगा है।

सत्यता यही है कि जब तक ज्ञान जीवन-व्यवहार में नहीं उतरता, तब तक केवल मानसिक अथवा बौद्धिक रहकर मनुष्य का हित-सम्पादन नहीं कर सकता। आचरण में, व्यवहार में उतरा हुआ ज्ञान ही अनुभूत ज्ञान बनकर मनुष्य का कल्याण करने में समर्थ होता है। ज्ञान और आचरण की समन्वय स्वरूप इस प्रज्ञा को ही रामकथा में हनुमान नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Manifestation of Wisdom as described through the Origin of Hanumāna

There is a story in Vālmīki Rāmāyaṇa (Kiṣkindhākāṇḍa, chapter 66), related with the origin of Hanumāna. It is said that a damsel (Apsarā) named Puñjikasthalā being cursed descended in Kapi yoni as Añjanā. Añjanā was very beautiful. One day, when she was standing on the top of a mountain, Vāyudeva came, got attracted towards her and mentally mated with her. As a result, Añjanā gave birth to a son in a cave. That son became famous as Hanumāna.

The story describes the origin of Wisdom (Hanumāna). It says that although every person is possessed with Knowledge but this Knowledge lies dormant and manifests only when a person awakens and knows his own Real Self. This Manifested Knowledge is symbolized here as Añjanā.

The story indicates that this Knowledge manifests only in a pure and higher mind symbolized as saying that Añjanā is a daughter of Vānara Rāja Kuñjara and wife of Vānara Rāja Kesarī. The word Vānara Rāja symbolizes Mind and the words Kuñjara and Kesarī symbolize for Purity and heights of mind respectively.

The story again depicts that although this Knowledge symbolized as Añjanā is very beautiful, but contemplating unfolds it's beauty more and more. Now this Knowledge highly attracts a person's Power of Action (mental and physical), symbolized as the attraction of Vāyudeva towards Añjanā.

This attraction tends towards intimacy between the two symbolized as the mating of Vāyudeva with Añjanā. This intimacy originates Wisdom which is symbolized as Hanumāna. In other words, it can be said that Wisdom requires both – Knowledge and Power of Action. Knowledge, combined with Power of Action, develops Wisdom. Wisdom means– a person is not restricted to Knowledge only. He implies it in his daily life, in all his behaviour.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुन्दर काण्ड

२९. हनुमान द्वारा समुद्र-लंघन कथा

(प्रज्ञा द्वारा मन रूपी समुद्र के लंघन का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सुन्दरकाण्ड

हनुमान द्वारा समुद्र-लंघन के माध्यम से प्रज्ञा द्वारा मन रूपी समुद्र के लंघन का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत सुन्दरकाण्ड में (सर्ग १) वर्णित हनुमान द्वारा समुद्र-लंघन की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सीता के अन्वेषण हेतु लंकापुरी में जाना जब अनिवार्य हो गया, तब वानर-वीर हनुमान सौ योजन विस्तृत समुद्र को लांघने के लिए शीघ्र ही महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गए और वेगपूर्वक आकाश की ओर जाने लगे। वेगपूर्वक जाते हुए हनुमान को समुद्र ने देखा और उनका सम्मान करने के लिए अपने ही जल में छिपे हुए मैनाक पर्वत को ऊपर उठने की आज्ञा दी। मैनाक पर्वत जल से ऊपर उठ गया और हनुमान से विश्राम का अनुरोध करने लगा। परन्तु हनुमान ने कार्य को शीघ्र पूर्ण करने के लिए मैनाक का सत्कार करते हुए उसका स्पर्श मात्र किया और आगे बढ़ गए। ये वही मैनाक थे जिन्हें इन्द्र ने आज्ञा दी थी कि वे पातालवासी असुरों के बाहर निकलने के मार्ग को रोककर वहीं पाताललोक के द्वार पर खड़े रहें।

हनुमान के बल-पराक्रम की परीक्षा लेने के लिए देवताओं ने नाग-माता सुरसा देवी से हनुमान के मार्ग में दो घड़ी के लिए विघ्न डालने की प्रार्थना की। तदनुसार देवी सुरसा राक्षसी का रूप धारण करके हनुमान को खा जाने के लिए मुँह फैलाकर खड़ी हो गई। जैसे-जैसे सुरसा अपने मुख का विस्तार करती, वैसे-वैसे हनुमान भी अपने शरीर को बड़ा बना लेते। अन्त में हनुमान अपने शरीर को अत्यन्त संकुचित करके सुरसा के विशाल मुख में प्रवेश करके तुरन्त बाहर निकल आए और सुरसा ने भी राक्षसी स्वरूप का परित्याग करके हनुमान को राम के कार्य की सिद्धि हेतु सुखपूर्वक जाने की आज्ञा दी।

आकाश का आश्रय लेकर आगे बढ़ते हुए हनुमान को कामरूपिणी सिंहिका राक्षसी ने भी देखा। सिंहिका राक्षसी छाया देखकर उड़ते हुए जीवों को पकड़ लेती थी, अतः उसने हनुमान की छाया को पकड़कर उन्हें भी खा लेना चाहा परन्तु

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हनुमान सुग्रीव के वचन का स्मरण करके अत्यन्त संकुचित होकर उसके विशाल मुख में प्रविष्ट हो गए और उसके मर्मस्थलों को विदीर्ण करके वेगपूर्वक बाहर निकल आए। सिंहिका राक्षसी प्राणशून्य होकर समुद्र के ज़ल में गिर पड़ी।

अन्त में सौ योजन विस्तार वाले समुद्र को पार करके हनुमान ने समुद्र के तट पर पहुँच कर पर्वत-शिखर पर बसी हुई लंकापुरी को देखा।

कथा की प्रतीकात्मकता

अब हम कथा के एक-एक प्रतीक को समझने का प्रयास करें-

१. सौ योजन विस्तृत समुद्र–

कथा में समुद्र को सौ योजन विस्तार वाला कहा गया है। वास्तव में मनुष्य का मन ही समुद्र है और इस मन रूपी समुद्र के सौ योजन विस्तार के पीछे वह शास्त्रीय मान्यता काम कर रही है, जिसमें कहा गया है कि मनुष्य के मन की एक सौ एक वृत्तियाँ हैं। इनमें से सौ वृत्तियाँ मनुष्य को शरीर अथवा जगत की ओर ले जाती हैं, केवल एक वृत्ति मनुष्य को आत्मा-परमात्मा से जोड़ती है। शरीर अथवा जगत की ओर ले जाने वाली मन की सौ वृत्तियों को जो सहज रूप से पार कर ले, उनके आकर्षण अथवा बन्धन से बाहर निकल जाए- वही प्रज्ञा है जिसके प्रतीक हनुमान हैं। अतः हनुमान द्वारा सौ योजन विस्तृत समुद्र को लांघने का अर्थ है– प्रज्ञा द्वारा सौ वृत्तियों वाले मन रूपी समुद्र का अतिक्रमण कर देना, वृत्तियों के बन्धन से मुक्त हो जाना।

२. महेन्द्र पर्वत–

कथा में कहा गया है कि हनुमान जी समुद्र को लांघने के लिए सहज रूप से उछलकर महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गए और वेगपूर्वक आकाश की ओर जाने लगे।

चूँकि पर्वत उच्चता एवं स्थिरता का द्योतक है, अतः किसी श्रेष्ठ विचार अथवा गुण को इंगित करने के लिए पुराणों में पर्वत का भी प्रतीक रूप में प्रयोग किया गया है। यहाँ महेन्द्र पर्वत निष्कामता (उच्चता) और निष्कम्पता (स्थिरता) जैसे श्रेष्ठ गुणों को इंगित करता प्रतीत होता है, अतः आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की यह प्रज्ञा (हनुमान) निष्कामता और निष्कम्पता जैसे श्रेष्ठ गुणों पर आरूढ़ होकर मन रूपी समुद्र से निकलने वाली अनेक बाधाओं को पार करती हुई लक्ष्य तक पहुँच जाती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. मैनाक पर्वत–

मैनाक पर्वत को समझने के लिए सबसे पहले मैनाक से सम्बन्ध रखने वाले पौराणिक कथनों और उन कथनों के प्रतीकों को समझ लेना आवश्यक होगा।

पुराणों में कहा गया है कि पितरों की एक कन्या थी– मेना, जिसका विवाह हिमालय पर्वत से हुआ। हिमालय और मेना से एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो मैनाक पर्वत कहलाया। पौराणिक साहित्य में पितर शब्द संस्कार या छाप का, कन्या शब्द विशेषता या गुण का, मेना (जहाँ मैं-मैं नहीं है) शब्द निरहंकारिता (अहंकार के अभाव) का, हिमालय पर्वत शुद्ध, स्थिर मन का तथा पत्नी शब्द शक्ति का प्रतीक है। अत: समस्त प्रतीकों पर विचार करते हुए यहाँ यह संकेत किया गया है कि अनेकानेक जन्मों की लम्बी यात्रा में मनुष्य अपने अवचेतन मन (चित्त) में जिन श्रेष्ठ संस्कारों (पितरों) को इकट्ठा कर लेता है, वही श्रेष्ठ संस्कार मनुष्य के मन में निरहंकारिता (अहंकार के अभाव) को उत्पन्न करते हैं। श्रेष्ठ संस्कारों से उत्पन्न इस निरहंकारिता को ही पौराणिक कथाओं में पितरों की कन्या मेना कहकर संकेतित किया गया है। यह निरहंकारिता रूप विशेषता शुद्ध, स्थिर मन (हिमालय) से संयुक्त होकर और उस शुद्ध, स्थिर मन की शक्ति बनकर पुण्य की राशि का सृजन करती है, जिसे पौराणिक कथाओं में मेना एवं हिमालय से मैनाक पर्वत का उत्पन्न होना कहा गया है।

कथा संकेत करती है कि मन रूपी समुद्र के भीतर विद्यमान यही पुण्यराशि ऊपर उठकर जैसे-जैसे जीवन में सुखों का विस्तार करती है, वैसे-वैसे मनुष्य का स्पृहा-युक्त मन उन सुखों में अटक जाता है। सुखों में अटका हुआ मन देहाभिमानी व्यक्तित्व को देख नहीं पाता, अत: उसका परिमार्जन अथवा परिष्कार भी नहीं हो पाता। चूँकि आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) सुखों के प्रति भी स्पृहा-युक्त नहीं होती, अत: यही नि:स्पृहता उसे सुखों में न उलझाकर लक्ष्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर कर देती है, जिसे कथा में हनुमान का मैनाक पर्वत पर विश्राम न करके आगे बढ़ जाना कहा गया है।

चूँकि मनुष्य की अपनी ही पुण्य-राशि अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए आसुरी संस्कारों को दबाकर रखती है, इसलिए कथा में कहा गया है कि मैनाक पर्वत पाताल लोक के द्वार पर स्थित रहता है, जिससे असुर बाहर न निकल सकें।

४. सुरसा–

सुरसा नामक पात्र के रूप में मन रूपी समुद्र में रहने वाले किसी ऐसे तत्त्व की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ओर इंगित किया गया है, जिसका मूल स्वरूप तो दैवीय है, परन्तु राक्षसी स्वरूप धारण करने में भी वह तत्त्व समर्थ है। यही नहीं, वह तत्त्व चित्त में रहने वाली नाना वृत्तियों का भी मूल है, इसीलिए कथा में उसे नाग-माता कहा गया है। अपने राक्षसी-स्वरूप में वह तत्त्व प्रज्ञा (हनुमान) जैसे दैवीय तत्त्व को भी खा जाने की इच्छा रखता है, परन्तु दैवीय-स्वरूप में वह तत्त्व आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) के कार्य की सिद्धि चाहता है।

उपर्युक्त वर्णित सभी बिन्दुओं पर विचार करते हुए सुरसा नामक पात्र आसक्ति-अनासक्ति नामक महत्त्वपूर्ण तत्त्व की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन में नाना प्रकार की भूमिकाओं को धारण करता हुआ नाना प्रकार के सम्बन्धों का निर्वाह करता है। सम्बन्धों में निर्वाह करने के दो ही प्रकार हैं। एक है– दैवी प्रकार, जिसे शास्त्रों में अनासक्ति कहा गया है तथा दूसरा है– आसुरी प्रकार, जिसे शास्त्रों में आसक्ति कहा गया है। जब मनुष्य आत्म-ज्ञान (मैं आत्मा हूँ) में स्थित रहकर दूसरों को भी आत्म-दृष्टि से देखता है, तब सभी सम्बन्धों का भली प्रकार निर्वाह करते हुए भी वह उन सम्बन्धों से चिपकता नहीं, अर्थात् सभी सम्बन्धों में प्रेमपूर्वक रहते हुए भी वह उनमें अनासक्त बना रहता है।

इसके विपरीत, जब मनुष्य स्वयं को शरीर मानकर दूसरों को भी शरीर-दृष्टि से देखता है, तब अपने-पराए का विचार उदित हो जाने से वह अपनों के साथ ऐसा चिपक जाता है कि उसके समस्त सुख-दुःख अपनों अर्थात् सम्बन्धों पर ही निर्भर हो जाते हैं। यही आसक्ति है, जिसे कथा में राक्षसी सुरसा के रूप में चित्रित किया गया है। मन रूपी समुद्र में रहने वाली यह आसक्ति रूपी राक्षसी इतनी प्रबल होती है कि सामान्य मनुष्य को सहज रूप से अपने चंगुल में फँसा लेना चाहती है, जिसे कथा में सुरसा द्वारा मुख को फैलाने के रूप में चित्रित किया गया है। परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य की प्रज्ञा (हनुमान) अनासक्त होने के कारण सम्बन्धों में कहीं चिपकती नहीं, इसलिए वह आवश्यकता के अनुसार सभी सम्बन्धों का सम्यक् निर्वाह करती हुई कभी उन सम्बन्धों के विस्तार में चली जाती है, तो कभी सहज रूप से स्वयं को उन सम्बन्धों से समेट भी लेती है। इसे ही कथा में हनुमान का सुरसा के मुख में प्रवेश करना और फिर सूक्ष्म स्वरूप धारण करके सुरसा के मुख से निकलना कहकर संकेतित किया गया है।

देह-भाव में रहते हुए आसक्ति का रस तथा आत्म-भाव में रहते हुए

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अनासक्ति का रस सभी प्रकार के रसों में श्रेष्ठ है, इसीलिए आसक्ति और अनासक्ति को यहाँ सुरसा (सु- रसा) नाम देना युक्तिसंगत ही है। अनासक्ति तथा आसक्ति दोनों ही स्थितियों में मन के भीतर सकारात्मक- नकारात्मक नाना प्रकार की वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, इसीलिए कथा में सुरसा को नाग-माता कहकर संकेतित किया गया है। नाग शब्द वृत्ति (मन के व्यापार) को इंगित करता है और माता का अर्थ है– उत्पन्न करने वाली।

५. सिंहिका राक्षसी–

सिंहिका को समझने के लिए भी उस पौराणिक कथन को समझना आवश्यक है, जिसमें उसे राहु की माता कहा गया है। राहु उस तत्त्व का प्रतीक है, जो सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसता है। आध्यात्मिक स्तर पर सूर्य आत्म-तत्त्व का तथा चन्द्रमा शुद्ध, श्रेष्ठ मन का प्रतीक है। अत: दोनों को ही ग्रस लेने वाले कलुष विचार को राहु कहा जा सकता है। जो इस कलुष विचार को उत्पन्न करती है– उसे पुराणों में सिंहिका राक्षसी कहा है।

इस आधार पर मन रूपी समुद्र में रहने वाली सिंहिका नामक राक्षसी मनुष्य की विकृत मानसिकता को इंगित करती है। विकृत मानसिकता का अर्थ है– ज्ञान के लुप्त हो जाने से मनुष्य की सोच का ही विकार-युक्त हो जाना। उदाहरण के लिए– छोटे से छोटे अथवा बड़े से बड़े पर्व (त्यौहार) को भारतीय जीवन में इसलिए पिरोया गया था कि मनुष्य का स्वयं का जीवन सदैव उन विशेषताओं से भरपूर रहे, जो न केवल उसके स्वयं के जीवन को निरन्तर विकास की ओर बढ़ाएँ अपितु सामाजिक, वैश्विक समरसता को भी बनाए रखें। परन्तु ज्ञान के विलुप्त हो जाने और परिणामस्वरूप सोच के विकृत हो जाने से मनुष्य के हाथ में आया हुआ प्रत्येक पर्व आज विकृत होकर स्वयं मनुष्य को ही हानि पहुँचाने लगा है। इस तथ्य का संकेत कथा में यह कहकर किया गया है कि सिंहिका राक्षसी को देखकर हनुमान को सिंहिका विषयक सुग्रीव के वचनों का स्मरण हो आया।

सिंहिका नामक यह राक्षसी अर्थात् विकृत मानसिकता उस विकृत दर्पण की भाँति है, जिसमें बनने वाला प्रत्येक प्रतिबिम्ब विकृत ही बनता है अर्थात् बिम्ब कितना भी अच्छा हो, प्रतिबिम्ब कभी अच्छा नहीं बनता क्योंकि प्रतिबिम्ब का आधार दर्पण ही विकृत है। इसी तथ्य को कथा में यह कहकर संकेतित किया गया है कि सिंहिका राक्षसी आकाश में उड़ते हुए प्राणी की परछाई को पकड़ लेती और उसे खा जाती। कथा संकेत करती है कि मन रूपी समुद्र में विराजमान इस

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विकृत मानसिकता को विनष्ट करने में प्रज्ञा ही समर्थ है, जिसे हनुमान कहा गया है।

कथा का तात्पर्य

प्रस्तुत कथा के माध्यम से यह संकेत किया गया है कि अपने ही देहाभिमानी व्यक्तित्व (लंकापुरी) में रहने वाला अपना ही देहाभिमान (रावण) जब अपनी ही पवित्रता (सीता) का हरण कर लेता है, तब निश्चित रूप से अपने ही देहाभिमानी व्यक्तित्व (लंकापुरी) को टटोलना अर्थात् उसके भीतर झांकना अनिवार्य हो जाता है।

परन्तु देहाभिमानी व्यक्तित्व को टटोलने के लिए उस देहाभिमानी व्यक्तित्व (लंकापुरी) के निकट पहुँचना कठिन होता है क्योंकि अपना ही मन रूपी समुद्र बाधा बनकर खड़ा हो जाता है। कथा संकेत करती है कि मनुष्य का अपना ही मन एक ऐसे समुद्र की तरह है जिसमें अपने ही संस्कारों के कारण अच्छा और बुरा-बहुत कुछ भरा हुआ है। वहाँ श्रेष्ठ संस्कारों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई श्रेष्ठ सोच भी विद्यमान हैं और निकृष्ट संस्कारों के फलस्वरूप उत्पन्न हुई निकृष्ट सोच भी। वहाँ कामनाओं, इच्छाओं के ऊँचे-ऊँचे पर्वत भी हैं और ममता, मोह के झरने भी। कभी मनुष्य अपने ही पुण्यों के फलस्वरूप प्रकट हुए सुखों के विस्तार में अटक जाता है तो कभी आसक्ति के रस उसे खींच लेते हैं।

कथा संकेत करती है कि अपने ही देहाभिमानी व्यक्तित्व (लंकापुरी) तक पहुँचने और उसे देखने में आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की अपनी ही प्रज्ञा (हनुमान) समर्थ है क्योंकि यही प्रज्ञा (हनुमान) निष्कम्प और निष्काम होने के कारण कामनाओं के भीतर नहीं उलझती और सहज रूप से लक्ष्य की ओर गतिमान रहती है। निःस्पृह होने के कारण जीवन में आए हुए अनेक प्रकार के सुखों में वह लिप्त नहीं होती और अनासक्त होने के कारण सम्बन्धों के विस्तार में रहते हुए भी उनसे नहीं बंधती। वह श्रेष्ठ सोच की धनी होती है, अतः मनःसमुद्र में विद्यमान निकृष्ट सोच को भी सहज रूप से जीर्ण-शीर्ण कर देती है। इसी तथ्य को कथा में हनुमान द्वारा समुद्र के लंघन के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Wisdom overpowers an Ignorant Mind as depicted through the story of Samudra-Laṅghana by Hanumāna

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Sundarakāṇḍa, chapter 1), it is said that when Vānaras came to know from Sampāti (brother of Jaṭāyu) that Sītā is living in Laṅkāpurī imprisoned by Rāvaṇa and it is evidently neccessary to cross the Ocean to meet Sītā, then they accessed their strength one by one to cross the Ocean and ultimately found that only Hanumāna was capable to cross the Ocean.

Accordingly, Hanumāna got ready, climbed over mountain Mahendra, jumped and flew in the sky. Ocean saw him flying and wished to pay his regards to him. He (the Ocean) requested mountain Maināka to rise above water. Accordingly Maināka rose above and requested Hanumāna to rest a while on him. But Hanumāna, paying due respect to Maināka, did not like to rest, just touched him and flew ahead on his mission.

On his way, Hanumāna was confronted first by Demoness Surasā. Surasā opened her mouth wider and wider to swallow Hanumāna, but Hanumāna became larger and larger. At last he became very small in size and bristly entered her wide open mouth and came out immediately. Now being blessed by Surasā, Hanumana flew ahead and was confronted by a demoness Siṁhikā. Siṁhikā used to eat up creatures flying over the Ocean by catching hold of their shadows. Hanumāna was also attracted but he killed Siṁhikā by entering in her mouth and enlarging his size. At last, he reached the other shore of the Ocean and saw Laṅkāpurī – the abode of Rāvaṇa.

This story pointedly denotes the Power of Wisdom symbolized as Hanumāna. It first reveals the truth that a person's own ego symbolized as Rāvaṇa steals his Own Purity (Sītā), hense it becomes essentially important to analyze one's own personality which is full of ego to bring back that Purity.

The story again indicates that a person may have many more positive powers but inspite of these powers, he never

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

concentrates on his own Egoistic Personality. Unending Desires, Expectations, Comforts and Attachments hinder and obstruct his way and he never thinks in this direction. Only a Person of Wisdom is capable of trying concentratedly in this direction. He is free from Desires, he never Entangles in Comforts, he remains Detached and his Thoughts are Elevated, therefore, he easily crosses the vast Ocean of his own impure Mind and reaches his destination, i.e., the Egoistic personality (Laṅkāpurī – the abode of Rāvaṇa).

In short, the story describes Wisdom as under–

Wisdom is the Power which is capable of crossing an Impure Mind easily symbolized as crossing the Ocean by Hanumāna.

Wisdom is always stable symbolized as climbing of Hanumāna on mountain Mahendra.

Wisdom never Entangles in Comforts and remains goal-oriented symbolized as passing the Ocean by Hanumāna without resting on mountain Maināka.

Wisdom Cares and Concerns but Attaches nowhere symbolized as entering and coming out of Hanumāna from the mouth of Demoness Surasā.

Wisdom weakens Polluted Thinking symbolized as weakening of Demoness Siṁhikā by Hanumāna.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३०. लंका राक्षसी कथा

(प्रज्ञा द्वारा दोषारोपण-वृत्ति को परास्त करने का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लंका नामक राक्षसी की कथा के माध्यम से प्रज्ञा द्वारा दोषारोपण-वृत्ति को परास्त करने का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत सुन्दरकाण्ड (सर्ग ३) में लंका नामक राक्षसी की जो कथा वर्णित है– उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सौ योजन विस्तार वाले समुद्र को लाँघकर हनुमान जी जब लंकापुरी में प्रवेश करने लगे, तब लंकापुरी की अधिष्ठात्री देवी लंका नामक राक्षसी ने उन्हें रोका और उनके द्वारा लंकापुरी में प्रवेश का आग्रह करने पर उन्हें थप्पड़ भी मारा। परन्तु हनुमान जी ने सिंहनाद करते हुए एक मुक्का मारकर उस लंका नामक राक्षसी को अत्यन्त व्याकुल कर दिया। व्याकुल हुई राक्षसी हनुमान जी से बोली कि <आप लंकापुरी में प्रवेश कीजिए। अब समस्त राक्षसों के विनाश का समय आ गया है क्योंकि ब्रह्मा जी ने मुझे वरदान दिया था कि जब कोई वानर अपने पराक्रम से तुझे वश में कर ले, तब तुझे समझना चाहिए कि राक्षसों के ऊपर महान् भय आ पहुँचा है।>

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा के तात्पर्य को समझने के लिये एक-एक प्रतीक को समझना उपयोगी होगा।

१. हनुमान–

हनुमान नामक पात्र मनुष्य की प्रज्ञा-शक्ति के प्रतीक हैं।

२. लंका नामक राक्षसी–

यह राक्षसी अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान उस मान्यता को इंगित करती है, जिसके आधीन होकर मनुष्य सदा स्वयं को सही ठहराता है और अपने दुःख के लिए किसी परिस्थिति अथवा व्यक्ति को ही उत्तरदायी मानता है। सरल रूप में इस मान्यता को दोषारोपण की वृत्ति (blaming attitude) कहा जा सकता है। चूँकि देहाभिमान में स्थित हुआ प्रत्येक मनुष्य इस प्रबल एवं दूषित वृत्ति से ग्रस्त रहता है, इसलिए इसे देहाभिमानी व्यक्तित्व अर्थात् लंकापुरी के द्वार पर स्थित

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रहने वाली राक्षसी के रूप में चित्रित किया गया है।

३. लंका नामक राक्षसी का हनुमान को थप्पड़ मारना–

प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि दोषारोपण की वृत्ति न केवल सामान्य मनुष्य की बुद्धि को अपने आधीन करती है, अपितु यह आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) को भी अपने आधीन करके उसे प्रताड़ित करने का यथासम्भव प्रयास करती है। इसे ही कथा में लंका नामक राक्षसी का हनुमान को थप्पड़ मारना कहकर चित्रित किया गया है।

४. हनुमान का लंका राक्षसी को मुक्का मारना–

यहाँ यह संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) दोषारोपण-वृत्ति (लंका राक्षसी) के आधीन कभी नहीं होती। वह इस ज्ञान में दृढ़तापूर्वक स्थित होती है कि कोई भी परिस्थिति अथवा व्यक्ति दुःख के लिये उत्प्रेरक तो अवश्य हो सकता है, परन्तु वह किसी को दुःख नहीं दे सकता। दुःख का निर्माता मनुष्य स्वयं है क्योंकि वही अपने एक-एक विचार का निर्माण करता है। अतः आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की यह प्रज्ञा (हनुमान) दोषारोपण-वृत्ति से प्रभावित न होकर उस वृत्ति को ही प्रताड़ित करती है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा लंका नामक राक्षसी को मुक्का मारकर व्याकुल बना देने के रूप में चित्रित किया गया है।

५. ब्रह्मा जी का वरदान–

वरदान शब्द सदैव अवश्य भवितव्यता अर्थात् अवश्य घटित होने को संकेतित करता है।

६. राक्षसों को प्राप्त हुआ भय–

एक सामान्य बुद्धि मनुष्य जब अपने दुःख के लिए स्वयं को सही मानकर दूसरे को ही जिम्मेदार ठहराता है, तब वह दूसरे के प्रति नाना प्रकार के व्यर्थ एवं नकारात्मक विचारों का निर्माण भी करता ही है। इसके विपरीत प्रज्ञावान् मनुष्य जब अपने दुःख की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर किसी को भी दोषी नहीं ठहराता, तब दूसरों के प्रति भ्रमवश निर्मित किये जाने वाले व्यर्थ एवं नकारात्मक विचारों का निर्माण भी स्वतः बन्द हो जाता है, जिससे उन व्यर्थ एवं नकारात्मक विचारों का अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है। इसी तथ्य को कथा में वानर द्वारा लंका नामक राक्षसी को वशीभूत कर लेने पर राक्षसों को प्राप्त होने वाले भय के रूप में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चित्रित किया गया है।

कथा का तात्पर्य

मनुष्यात्मा एक शरीर को छोड़ता है तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करता है। इस छोड़ने और ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में वह अनेकानेक मान्यताओं का निर्माण कर लेता है जो धीरे-धीरे संस्कार बनकर अवचेतन मन (चित्त) में संग्रहीत हो जाती हैं और मनुष्य के चेतन मन को सतत रूप से प्रभावित करती हैं। इन मान्यताओं में कुछ मान्यताएँ ज्ञानपरक अर्थात् श्रेष्ठ तथा कुछ अज्ञानपरक अर्थात् निम्न कोटि की होती हैं, इसलिए प्रत्येक मान्यता को ध्यानपूर्वक देखते रहना जीवन की उन्नति के लिए अनिवार्य हो जाता है।

मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे पहली और प्रमुख मान्यता तो यही है कि वह स्वयं को देह मान लेता है और फिर इसी मान्यता के साथ-साथ दूसरी बहुत सी मान्यताओं का भी वह निर्माण कर लेता है। उदाहरण के लिये- स्वयं को देह मानने के कारण मनुष्य के भीतर यह मान्यता अत्यन्त प्रबल रूप में विद्यमान हो जाती है कि उसके दुःख का कारण दूसरे हैं- या तो कोई परिस्थिति अथवा कोई व्यक्ति। अतः अपने आपको सही मानकर जब मनुष्य दूसरे को ही दुःख के लिये जिम्मेदार ठहरा देता है, तब यह निश्चित हो जाता है कि उसके दुःख का विनाश तभी होगा, जब परिस्थिति अथवा व्यक्ति ठीक होंगे अर्थात् बदलेंगे। परिस्थिति अथवा व्यक्ति कभी बदलते नहीं, अतः अब मनुष्य दुःख के साथ ही जीने के लिए विवश हो जाता है। यही नहीं, स्वयं को सही मानकर वह जिसको भी अपने दुःख के लिए जिम्मेदार ठहराता है, उसके प्रति अनेक प्रकार के व्यर्थ, नकारात्मक विचारों का निर्माण भी कर लेता है, जो अन्ततः स्वयं उसे ही हानि पहुँचाते हैं।

प्रस्तुत कथा के माध्यम से यह संकेत किया गया है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (ego) के कारण मन के भीतर निर्मित हुई यही दोषारोपण-वृत्ति प्रज्ञावान् को भी अपने आधीन करने का यथासम्भव प्रयास करती है परन्तु प्रज्ञावान् मनुष्य इस वृत्ति के आधीन कभी नहीं होता। वह इस ज्ञान में नित्य स्थित होता है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान अपनी ही पवित्रता (मानसिक, वाचिक तथा कायिक) का हरण करता है। अतः उस पवित्रता (सीता) की पुनः प्राप्ति के लिये अपने ही देहाभिमानी व्यक्तित्व को टटोलना आवश्यक है और देहाभिमानी व्यक्तित्व को टटोलना अथवा उसके भीतर झांकना केवल तभी सम्भव होता है, जब मनुष्य दोषारोपण-वृत्ति से पूर्णतः मुक्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हो। चूँकि प्रज्ञावान् में ही यह अद्भुत सामर्थ्य विद्यमान होती है, अतः वही इस दूषित वृत्ति को धक्का देकर आगे बढ़ जाता है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा लंका नामक राक्षसी को मुक्का मारकर लंका में प्रवेश करने के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Blaming Attitude is overpowered by Wisdom as described through the story of Demoness Laṅkā

In Vālmīki Rāmāyaṇa, (Sundarakāṇḍa, chapter 3), it is said that after crossing the Ocean, Hanumāna reached Laṅkāpurī and saw a demoness Laṅkā protecting that town as a guard. Hanumāna asked for her permission to enter the town but demoness refused and slapped him instead. Hanumāna roared and punched her with his wrist. She was hurt and became uncomfortable but ultimately permitted him to enter Laṅkāpurī. She also told Hanumāna about the boon, she had been blessed by Brahmā. Brahmā had told her that when a monkey/vānara would come and overpower her, that will be an indication of end of all the demons of Laṅkāpurī.

The story deals with Wisdom symbolized as Hanumāna and a Perverted Wrong Negative Belief or Blaming Attitude symbolized as Demoness Laṅkā. The story says that living in body-consciousness, every person is overpowered by this belief that he himself is perfect but the other person or situation is responsible for his miseries. He lives his whole life with this wrong belief and continuously plays a Blame Game. Hence he also creates a lot of negative thoughts in his own mind whom he thinks responsible for his miseries.

The story indicates that this is a great illusion. A wise person is never overpowered by this Belief or Attitude. He always understands and knows that any situation or any person is never responsible for his miseries. Any other person or any situation may become a stimulous but a person himself is responsible for his own misery because he himself is the only creator of his own thoughts. A person creating positive or higher elevated thoughts never feels misery even in a difficult and tough situation while another person, creating low, toxic, negative thoughts never feels joy or happiness in a very comfortable situation even. Therefore someone can cheat a person but can't create pain or misery in his mind. Misery totally depends on the person's own reactive

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

thinking. This Knowledge or Self Responsibility helps a Wise person to overpower wrong, toxic belief or Blaming Attitude symbolized as overpowering demoness Laṅkā by Hanumāna. Now, all kinds of negative thoughts symbolized as demons meet their end.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३१. हनुमान द्वारा अशोकवाटिका का विध्वंस, राक्षसों का विनाश तथा लंकापुरी की दहन कथा

(प्रज्ञा के महत्त्व का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हनुमान द्वारा अशोकवाटिका के विध्वंस, राक्षसों के विनाश तथा लंकापुरी के दहन के माध्यम से प्रज्ञा के महत्त्व का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत सुन्दरकाण्ड में (सर्ग ४ से ५४ तक) अशोकवाटिका के विध्वंस, राक्षसों के विनाश तथा लंका के दहन की कथा विस्तार से वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

हनुमान ने सबसे पहले सौ योजन विस्तार वाले समुद्र को लांघा और लंकापुरी के द्वार पर स्थित लंका नामक राक्षसी को परास्त किया। तत्पश्चात् वे महाबली हनुमान लंकापुरी में प्रविष्ट होकर घर-घर में घूमकर सीता की खोज करने लगे। बहुत खोजने पर भी जब उनको सीता का पता न लगा, तब वे दुःखी हुए और नाना प्रकार से तर्क-वितर्क करते हुए अन्त में अशोकवाटिका की चहारदीवारी पर चढ़ गए। अशोकवृक्ष पर बैठकर जब हनुमान वहाँ की अद्भुत शोभा को देख रहे थे, तभी उन्हें राक्षसियों से घिरी हुई एक स्त्री दिखाई दी। यह निश्चय करके कि ये ही सीता हैं– हनुमान प्रसन्न हुए और राम का स्मरण करते हुए वहीं बैठे रहे। प्रातःकाल होने पर एक सौ सुन्दरियों से घिरा हुआ रावण जब सीता के समीप आया और सीता को अनेक प्रकार से प्रलोभित करने लगा, तब केवल राम में अनुरक्त रहने वाली सीता ने भी रावण को समझाने का प्रयत्न किया परन्तु रावण नहीं माना। अन्त में रावण सीता को फटकारता हुआ अपने महल में लौट गया।

अब हनुमान ने राक्षसियों के द्वारा डरायी, धमकायी जाती हुई और करुण विलाप करती हुई सीता से वार्तालाप करने का निश्चय किया। उन्होंने पहले रामकथा का वर्णन करके सीता के विश्वास को प्राप्त किया, स्वयं को राम का दूत बतलाया और फिर पहचान के रूप में सीता को रामनाम से अंकित मुद्रिका प्रदान की। हनुमान ने सीता को रावण से शीघ्र मुक्ति का आश्वासन भी दिया। पहचान के रूप में सीता ने भी हनुमान को चूड़ामणि प्रदान की और अन्ततः हनुमान सीता का संदेश लेकर वहाँ से चले गए।

सीता से विदा लेकर हनुमान ने शेष बचे हुए कार्य पर विचार किया और युद्ध की इच्छा से उस वाटिका को उजाड़ दिया। उन्होंने वृक्षों को उखाड़ दिया,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

जलाशयों को मथ दिया, पर्वत-शिखरों को चूर-चूर कर दिया और चित्र-शालाओं को भी तोड़ दिया। अब सोकर उठी हुई राक्षसियों ने वाटिका के इस विध्वंस का सारा समाचार जब रावण से निवेदित किया, तब रावण ने अस्सी हजार किंकर नामक राक्षसों को युद्ध के लिए भेजा परन्तु हनुमान ने एक ही परिघ से उन सबका संहार कर दिया और सौ खम्बों वाले चैत्य प्रासाद को भी तोड़फोड़ डाला।

क्रुद्ध हुए रावण ने अब प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली को युद्ध के लिए भेजा परन्तु हनुमान ने जम्बुमाली को भी सेना सहित काल के गाल में डाल दिया। पुनः रावण ने मन्त्री के पुत्रों को भेजा, पाँच शूरवीर सेनापतियों को भेजा परन्तु उनके भी सेना सहित मारे जाने पर पुत्र अक्षकुमार को युद्ध के लिए भेजा। अक्षकुमार युद्ध की कला में प्रवीण था परन्तु हनुमान ने आकाश में उड़ते हुए उसके दोनों पैर पकड़ लिए और पृथ्वी पर पटककर मार दिया।

अक्षकुमार के वध से रावण अत्यन्त कुपित हुआ और उसने दूसरे पुत्र महाबलशाली इन्द्रजित् को युद्ध हेतु भेजा। इन्द्रजित् ने वानर का सामना करना असम्भव समझ कर हनुमान को ब्रह्मास्त्र से बांध दिया तथा दूसरे राक्षस भी हनुमान को रस्सियों से बांधकर रावण के समीप ले गए। रावण ने हनुमान से जब लंकापुरी में आगमन का कारण पूछा, तब हनुमान ने सीता के दर्शन को ही आगमन का कारण बताते हुए अपने स्वामी सुग्रीव का संदेश भी रावण को सुनाया। हनुमान ने रावण से आग्रह किया कि वह सीता को राम को सौंप दे परन्तु क्रुद्ध हुए रावण ने सैनिकों को दूत के रूप में आए हुए हनुमान के वध की आज्ञा दे दी। तब वहीं विद्यमान विभीषण ने दूत के वध की निन्दा करते हुए जब अंग-भंग करने का परामर्श दिया, तब हनुमान की पूँछ में कपड़ा लपेट कर आग लगा दी गई। पूँछ में आग लगाकर हनुमान को जब लंकापुरी में घुमाया जा रहा था, तभी हनुमान ने विशाल स्वरूप को संकुचित करके स्वयं को बन्धन से छुड़ा लिया और लंकापुरी के महलों पर चढ़कर अपनी पूँछ की आग से समस्त लंकापुरी को जला दिया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा के एक-एक प्रतीक को समझना उपयोगी होगा।

१. लंकापुरी–

लंका शब्द अधम अर्थ वाले रंक शब्द में र अक्षर को ल करने से बना प्रतीत होता है (उणादि कोष, पाद ३, सूत्र ४०)। पुरी शब्द व्यक्तित्व का वाचक है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अत: लंकापुरी मनुष्य के अधम व्यक्तित्व अर्थात् देहाभिमानी व्यक्तित्व को इंगित करती है। इसी देहाभिमानी व्यक्तित्व में देहाभिमान (अपने वास्तविक स्वरूप–आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण देह तथा देह से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं, पदों, छवियों तथा सम्पत्ति आदि को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर उसमें आसक्त हो जाना) अर्थात् रावण अपने काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार रूप कुटुम्ब के साथ निवास करता है।

२. अशोकवाटिका–

अशोकवाटिका (अ-शोक-वाटिका) का अर्थ है– ऐसी वाटिका अथवा क्षेत्र जहाँ शोक न हो। अत: सुख के, आराम के क्षेत्र (comfort zone) को ही अशोकवाटिका कहा गया है। कथा में इसे रावण का अन्त:पुर कहा गया है। चूँकि रावण संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान का प्रतीक है, अत: रावण का अन्त:पुर कहकर यह संकेतित किया गया है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुआ मनुष्य का देहाभिमान अपने ही भीतर एक ऐसे पुर (क्षेत्र) का निर्माण कर लेता है, जहाँ कोई शोक या दु:ख नहीं होता। तात्पर्य यह है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान के कारण मनुष्य अशुद्ध एवं मलिन सोचता है, असत्य बोलता है, बेईमानी करता है परन्तु मलिन सोचकर, असत्य बोलकर अथवा बेईमानी करके भी उसके भीतर किसी बेचैनी अथवा व्याकुलता का अनुभव नहीं होता क्योंकि तर्कों के सहारे वह अपने मानसिक, वाचिक अथवा कायिक प्रत्येक अनुचित आचरण को उचित एवं सही ठहराकर सुखी बना रहता है। उदाहरण के लिए– संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान के कारण मनुष्य बेईमानी करता जाता है परन्तु स्वयं को यह तर्क देकर कि आजकल ईमानदारी से काम ही कहाँ चलता है– स्वयं को आरामदायक स्थिति में रखता जाता है। यही आरामदायक स्थिति अशोकवाटिका है, जिसका विनाश आवश्यक है।

अशोकवाटिका को कथा में प्रमदावन भी कहा गया है। चूँकि यह सुख का क्षेत्र संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) को विशेष प्रकार का मद प्रदान करता है, इसलिए इसको प्रमदावन कहना सार्थक ही है।

३. सीता का अशोकवाटिका में निवास और हनुमान द्वारा उनका दर्शन–

मन-बुद्धि की पवित्रता अर्थात् पवित्र-सोच को ही रामकथा में सीता के रूप में चित्रित किया गया है। संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) के कारण जब मनुष्य अपनी अपवित्र एवं मलिन सोच को ही सही एवं

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

उचित ठहराता हुआ सुख से, आराम से बिना किसी अपराध बोध के रहने लगता है, तब पवित्र-सोच (सीता) का जीवन-व्यवहार (जनस्थान) से लुप्त होकर कैदी की भाँति विद्यमान हो जाना स्वाभाविक, सहज है। इसी तथ्य को कथा में अशोकवाटिका में विद्यमान हुई दीन-हीन सीता के रूप में इंगित किया गया है।

कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) ही एकमात्र वह शक्ति है, जो सूक्ष्म होकर एक न एक दिन संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही अभिमानी मन के सुख-क्षेत्र (अशोकवाटिका) में घुस जाती है और देख पाती है कि पवित्र-सोच (सीता) जीवित तो है परन्तु मलिनता के एक सघन आवरण से घिरी हुई है। अत: मलिनता के (विकारों के) इस सघन आवरण को तोड़कर ही पवित्र-सोच रूपी सीता को मुक्त किया जा सकता है।

४. हनुमान द्वारा अशोकवाटिका का विध्वंस—

अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान हुआ तथा चेतन मन के स्तर पर प्रकट हुआ अपना ही देहाभिमान (रावण) भ्रष्ट आचरण करता हुआ भी जिन विभिन्न तर्कों के सहारे स्वयं को सदा सही ठहराता है और अपराध बोध से मुक्त रहकर सुख से, मजे से रहता है— उन तर्कों का आधार उसकी अपनी ही मान्यताएँ, धारणाएँ, कल्पनाएँ तथा पक्के विश्वास होते हैं, जिन्हें कथा में अशोकवाटिका के वृक्ष, जलाशय, चित्रशालाएँ तथा पर्वतशिखर के रूप में इंगित किया गया है। आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) इन मान्यताओं, धारणाओं, कल्पनाओं तथा पक्के हो चुके विश्वासों को चूर-चूर करके ही सुख के क्षेत्र (अशोकवाटिका) का विध्वंस करती है और देहाभिमान (रावण) को कमजोर करने का श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न करती है।

५. चैत्य प्रासाद और हनुमान द्वारा उसका विध्वंस—

मनुष्य जो भी कर्म (मानसिक, वाचिक अथवा कायिक) बार-बार करता है, उसकी एक छाप अवचेतन मन (चित्त) में अंकित हो जाती है, जिसे संस्कार कहा जाता है। अनेकानेक जन्मों की सतत यात्रा में मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) में ढेर सारे संस्कार एक के ऊपर एक इकठ्ठे होकर मानो प्रासाद (भवन) का स्वरूप धारण कर लेते हैं, जिसे चैत्य प्रासाद कहा जा सकता है। चूँकि शरीर अथवा संसार में लिप्त रहने वाली मन की सौ वृत्तियाँ ही इस प्रासाद के निर्माण में आधारभूत होती हैं, इसलिए कथा में चैत्य प्रासाद को सौ खम्भों पर स्थित कहा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

गया है। प्रस्तुत कथन यह महत्त्वपूर्ण संकेत करता है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) संस्कारों के पुंज रूप इस चैत्य प्रासाद को भी सहज रूप से ध्वस्त कर देती है।

६. हनुमान द्वारा किंकरादि राक्षसों का विनाश–

मनुष्य एक शरीर को छोड़ता है तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करता है। शरीर को छोड़ने तथा ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में वह अनेकानेक मान्यताओं तथा धारणाओं को अपने भीतर इकठ्ठा कर लेता है और धीरे-धीरे ये मान्यताएँ, धारणाएँ ही उसके विचारों को प्रभावित करके तथा उन पर आधिपत्य स्थापित करके उसके जीवन को ही चलाने लगती हैं। मूलभूत मान्यता तो यही है कि मनुष्य स्वयं को शरीर मान लेता है। शरीर दिखाई देता है, आत्मा अदृश्य है, अतः उचित एवं सम्यक् ज्ञान (आत्म-ज्ञान) के विस्मृत हो जाने से वह अपने आपको शरीर ही मानने लगता है। इस एक मान्यता से फिर सहस्रों प्रकार की मान्यताएँ जन्म ले लेती हैं, जो मनुष्य के जीवन को अधोगामी बनाती हैं। आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठी हुई इन मान्यताओं को ध्वस्त करती है और मनुष्य के विकास का रास्ता खोलती है। परन्तु मान्यताओं का ध्वस्त होना संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) को एकदम स्वीकार्य नहीं होता। इसलिए वह अनेक प्रकार के बहाने बनाकर, परम्पराओं की दुहाई देकर, सम्बन्धों का शोर मचाकर उन मान्यताओं को बचाना चाहता है और प्रज्ञा को ही विनष्ट करने का व्यर्थ प्रयत्न करता है। परन्तु प्रज्ञा की शक्ति अद्भुत होती है। प्रज्ञा के सामने अपने ही देहाभिमान के ढेरों बहाने, परम्परा की दुहाइयाँ– कुछ भी टिक नहीं पाते, विनष्ट हो जाते हैं, जिन्हें कथा में हनुमान द्वारा किंकरादि अस्सी हजार राक्षसों के विनाश के रूप में चित्रित किया गया है।

७. प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली और हनुमान द्वारा उसका वध–

प्रहस्त शब्द प्र उपसर्ग के साथ हस्त शब्द के योग से बना है। हस्त का अर्थ है– हाथ। प्र उपसर्ग को जोड़ने पर प्रहस्त का अर्थ हुआ– विशेष हाथ अर्थात् सहारा। अध्यात्म की दृष्टि से विचार करने पर बहिर्मुखी होना ही देहाभिमान (रावण) को सहारा देता है, इसलिए कथा में प्रहस्त को रावण के मन्त्री के रूप में इंगित किया गया है।

जम्बुमाली शब्द जम्बु और माली नामक दो शब्दों के योग से बना है। जम्बु का अर्थ है– बड़ा और माली का अर्थ है– माला से सम्पन्न। अतः जम्बुमाली का अर्थ

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

हुआ– बड़ी माला (श्रृंखला) से सम्पन्न। अध्यात्म की दृष्टि से विचार करने पर यह बड़ी माला अनेक प्रकार की कामनाओं, इच्छाओं, आशाओं, अपेक्षाओं की माला (श्रृंखला) है, जो बहिर्मुखता के फलस्वरूप पैदा होती है। इसलिए कथा में जम्बुमाली को प्रहस्त से उत्पन्न हुआ कहा गया है।

अपने ही अवचेतन मन के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान (रावण) पहले बहिर्मुखता (प्रहस्त) से युक्त होता है और फिर बहिर्मुखता से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के विकारों की माला (जम्बुमाली) से सम्पन्न हो जाता है, घिर जाता है। उदाहरण के लिए– सम्बन्धों में परस्पर व्यवहार करते हुए प्रेम पाने की सतत आशा, सत्कार-सम्मान पाने की इच्छा, दूसरों से सद्व्यवहार की अपेक्षा आदि कुछ ऐसे भाव रूप विकार हैं, जो बहिर्मुखता के फलस्वरूप ही मन के भीतर पैदा हो जाते हैं।

हनुमान के द्वारा प्रहस्त-पुत्र जम्बुमाली के वध के रूप में यही इंगित किया गया है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) बहिर्मुखता का तथा उससे उत्पन्न हुए उपर्युक्त वर्णित विकारों का वध सहज रूप से करती है। मनुष्य की सामान्य बुद्धि ऐसा करने में समर्थ नहीं है।

८. अक्षकुमार और हनुमान द्वारा उसका वध–

अक्ष का अर्थ है– धुरी, जिसके आधार पर गाड़ी के दोनों पहिये घूमते हैं और गाड़ी चलती है। अध्यात्म के स्तर पर स्वार्थ रूप विकार को ही संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान रूप रावण के जीवन की धुरी कहा जा सकता है क्योंकि स्वार्थ के आधार पर ही देहाभिमान का जीवन-रथ घूमता अर्थात् चलता है।

चूँकि स्वार्थ रूप विकार सदैव 'मैं और मेरा' के आधार पर खड़ा होता है, इसलिए कथा में इस 'मैं और मेरा' को ही अक्षकुमार के दो पैर कहा गया है। इन्हीं 'मैं और मेरा' रूपी दोनों पैरों को पकड़कर प्रज्ञाशक्ति (हनुमान) स्वार्थ रूप विकार (अक्षकुमार) को विनष्ट कर देती है।

९. इन्द्रजित् द्वारा हनुमान का बन्धन–

इन्द्रजित् शब्द इन्द्र और जित् नामक दो शब्दों के योग से बना है। इन्द्र का अर्थ है– इन्द्रियों का राजा मन तथा जित् का अर्थ है– जीतने वाला। अतः इन्द्रजित् का अर्थ हुआ– इन्द्रियों के राजा मन को जीत लेने वाला। चूँकि इन्द्रजित् भी एक विकार (राक्षस) ही है, इसलिए यह (इन्द्रजित्) मन को जीत लेने वाले अर्थात् मन पर अधिकार कर लेने वाले क्रोध नामक विकार को इंगित करता प्रतीत होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कथा में कहा गया है कि रावण से उत्पन्न हुआ इन्द्रजित् यद्यपि हनुमान को बांध नहीं सकता, परन्तु हनुमान ने रावण तक पहुँचने के लिए उस बन्धन को भी स्वीकार कर लिया।

प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान को पहचानना सरल नहीं होता परन्तु क्रोध रूप विकार वह महत्त्वपूर्ण संकेत है, जिसके आधार पर आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की प्रज्ञा (हनुमान) उस देहाभिमान (रावण) तक पहुँच पाती है और उसे देख पाती है।

१०. इन्द्रजित् का ब्रह्मास्त्र–

ब्रह्मास्त्र का अर्थ है– ब्रह्मा अर्थात् निर्माता शक्ति द्वारा दिया गया स्वभाव रूपी अस्त्र। यहाँ यह संकेत किया गया है कि जिस तत्त्व का जो भी स्वभाव है– वह उसे उसी की निर्माता शक्ति (ब्रह्मा) द्वारा दिया गया है। क्रोध का स्वभाव है– विचलित होना, एकटक घूरना, जोर-जोर से चीखना-चिल्लाना अथवा किसी भी चीज को इधर-उधर फेंककर उपद्रव करना। यही क्रोध को ब्रह्मा द्वारा दिया गया अस्त्र है, जिसका प्रयोग वह (क्रोध) यथासमय करता है। चूँकि क्रोध को प्राप्त हुआ यह स्वभाव (ब्रह्मास्त्र) ही मनुष्य की समझ को बांध लेता है, इसलिए इसे पाश अर्थात् बांधने वाला भी कहा गया है। कथा संकेत करती है कि क्रोध के इस पाश (ब्रह्मास्त्र) से मनुष्य की प्रज्ञा (हनुमान) कभी नहीं बंधती परन्तु ब्रह्मास्त्र का मानो सम्मान करते हुए बंधने का अभिनय अवश्य करती है।

११. हनुमान का दूत स्वरूप–

कथा में हनुमान को दूत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दूत का अर्थ है– अविचलित रहकर एक पक्ष के समाचार को दूसरे पक्ष तक ले जाने वाला। प्रज्ञा में यह अद्भुत सामर्थ्य होती है कि वह एक ओर तो आत्म-स्वरूप (राम) से जुड़ने के कारण निष्काम और निःस्पृह होती है, तथा दूसरी ओर अहंकार तथा अहंकार से उत्पन्न हुए विकारों से सर्वथा अस्पर्शित होने के कारण देहाभिमान (रावण) के निकट तक पहुँचने की सामर्थ्य भी रखती है। इस उभयपक्षीय सामर्थ्य के कारण ही प्रज्ञा (हनुमान) को दूत के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१२. पहचान के रूप में अंगूठी और चूड़ामणि रूप आभूषणों का आदान-प्रदान–

पौराणिक साहित्य में आभूषणों का प्रयोग गुणों के प्रतीक रूप में किया गया है। प्रस्तुत कथा में आभूषणों के आदान-प्रदान द्वारा यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि भले ही आत्म-ज्ञान रूपी राम तथा पवित्र-सोच रूपी सीता का श्रेष्ठ युगल चतुर्युगी के कालचक्र में कलियुग के कारण अलग-अलग हो गया हो, परन्तु दोनों अपने अस्तित्व रूप गुण का परित्याग कभी नहीं करते। आत्म-ज्ञान सदैव आत्म-ज्ञान ही रहता है और पवित्र-सोच सदैव पवित्र-सोच ही रहती है। अलग-अलग हो जाने का यह अभिप्राय नहीं है कि कोई तत्त्व अपने अस्तित्व, स्वभाव अथवा गुण से अलग हो जाए।

कथा में आत्म-ज्ञान रूपी राम की पहचान के रूप में अंगूठी का प्रयोग भी बहुत सार्थक है। जैसे अंगुली में पहनी हुई अंगूठी अंगुली के साथ एकरूप हो जाती है, उसका अलग से अहसास नहीं रहता, उसी प्रकार आत्म-ज्ञान भी वही है, जो चेतना के साथ एकरूप हो जाता है अर्थात् मनुष्य को बार-बार यह याद नहीं रखना पड़ता कि वह एक आत्मा है।

चूड़ामणि का अर्थ ही है– पवित्र-सोच। चूड़ा का अर्थ है– सिर जो सोच का वाचक है और मणि का अर्थ है– स्वतः प्रकाशित अर्थात् पवित्रता। पवित्रता (पवित्र-सोच) सदैव मणि की भाँति स्वतः प्रकाशित होती है।

अंगूठी और चूड़ामणि को पहचान के रूप में भेजने का अभिप्राय है– आत्म-ज्ञान (राम) सदैव आत्म-ज्ञान ही है और पवित्र-सोच (सीता) सदैव पवित्र-सोच ही है– अन्यथा नहीं।

१३. हनुमान की पूँछ और लंकापुरी का दहन–

अनेकानेक अद्भुत गुणों से सम्पन्न प्रज्ञा का अनुपम सौन्दर्य है– उसकी ज्ञान-शक्ति जिसे कथा में हनुमान की पूँछ कहकर सम्बोधित किया गया है। प्रज्ञा अपनी ज्ञान-शक्ति रूप इस पूँछ से विशेष प्रेम रखती है और आवश्यकता के अनुसार इसका विस्तार भी करती है, जिसे कथा में पूँछ को बढ़ाना कहकर इंगित किया गया है। अपने ही अवचेतन मन में संस्कार रूप में विद्यमान अपना ही देहाभिमान (रावण) अपने अस्तित्व को बचाने के लिए जब कोई उपाय नहीं देख पाता, तब विकारों की सहायता लेकर इस ज्ञान-शक्ति (पूँछ) को ही विनष्ट करने और लांछित करने का यथासम्भव प्रयास करता है, जिसे कथा में राक्षसों द्वारा हनुमान

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की पूँछ में आग लगाकर हनुमान को नगर में घुमाना कहकर संकेतित किया गया है। परन्तु प्रज्ञा चूँकि मान-अपमान से परे होती है, इसलिए उसकी ज्ञान-शक्ति की अग्नि अधिक प्रज्वलित होकर देहाभिमानी व्यक्तित्व (लंकापुरी) तथा उसका पोषण करने वाली दृढ़ीभूत मान्यताओं के दाह में हेतुभूत हो जाती है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा लंकापुरी के दहन के रूप में इंगित किया गया है।

कथा का अभिप्राय

आत्म-ज्ञान की अनुपस्थिति (विस्मृति) और देहाभिमान की किसी न किसी रूप में छद्मपूर्ण उपस्थिति अर्थात् मोह के वशीभूत होने के कारण जीवन-व्यवहार से पवित्र-सोच (सीता) का हरण अथवा लोप जितनी सरलता से हो जाता है, उतनी सरलता से वह पवित्र-सोच वापस नहीं आ पाती क्योंकि देहाभिमान की छद्मपूर्ण उपस्थिति से उत्पन्न हुए विकारों का एक सघन आवरण अपनी ही उस पवित्र-सोच को ऐसा ढ़क लेता है कि फिर मनुष्य को यही पता नहीं चल पाता कि उसकी पवित्र-सोच (सीता) अब गई कहाँ और आएगी भी कैसे ?

रामकथा संकेत करती है कि जीवन-व्यवहार से लुप्त हुई और विकारों के एक सघन आवरण से ढ़की हुई (अर्थात् राक्षसियों से घिरी हुई) पवित्र-सोच (सीता) तक पहुँचने में केवल प्रज्ञा (हनुमान) समर्थ है। यह प्रज्ञा निष्काम, निष्कम्प और निःस्पृह होने के कारण काम-युक्त, चंचल और स्पृहा-युक्त मन को सहज रूप से लांघ जाती है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा समुद्र के लंघन के रूप में चित्रित किया गया है।

यही नहीं, यह प्रज्ञा (हनुमान) मन में विद्यमान हुई एक बाधक वृत्ति-दोषारोपण-वृत्ति को भी धक्का देकर देहाभिमानी व्यक्तित्व के भीतर प्रविष्ट हो जाती है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा लंका नामक राक्षसी को धक्का देकर लंकापुरी में प्रवेश करने के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रज्ञा के इस अद्भुत महत्त्व को पुनः प्रतिपादित करते हुए प्रस्तुत कथा में कहा गया है कि मनुष्य की अपनी प्रज्ञा (हनुमान) अपने ही व्यक्तित्व (लंकापुरी) के भीतर प्रविष्ट होकर इस रहस्य को भलीभाँति समझ पाती है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान रूप रावण स्वार्थादि विकारों से प्रेरित होकर जब अपवित्र आचरण करता है, तब किसी न किसी तर्क का सहारा लेकर स्वयं को सदा सही ठहराता है और सुख से, आराम से रहता है। सुख के, आराम के इस क्षेत्र को ही कथा में रावण द्वारा निर्मित अशोकवाटिका के रूप में इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सत्यता यह है कि अपवित्र आचरण मनुष्य को बेचैन करता है और वही बेचैनी मनुष्य को अपने विकार तक पहुँचने तथा उसके विनाश के लिए प्रेरित भी करती है परन्तु संस्कार रूप में विद्यमान हुआ प्रबल देहाभिमान (रावण) जब स्वयं को सही ठहराकर आराम से रहने लगता है, तब किसी प्रकार की कोई बेचैनी न होने के कारण जीवन-व्यवहार से अपहृत हुई पवित्र-सोच (सीता) इस सुख के क्षेत्र में कैद हो जाती है, जिसे कथा में सीता के अशोकवाटिका में कैद हो जाने के रूप में चित्रित किया गया है।

यहाँ इस सत्य का भी उद्घाटन किया गया है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) के कारण जीवन-व्यवहार से अपहृत हुई पवित्र-सोच (सीता) भले ही कैद में पड़ी हो, मलिन हो, बेबस हो, विकारों (राक्षसियों) से घिरी हो परन्तु जीवित होने के कारण एक न एक दिन निश्चित रूप से उस कैद से उसकी मुक्ति सम्भव है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा सीता को दिए गए मुक्ति के आश्वासन के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा में कहा गया है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही देहाभिमान (रावण) जिन दृढ़ीभूत मान्यताओं अथवा धारणाओं का सहारा लेकर अपने प्रत्येक कर्म को उचित ठहराता हुआ सुखपूर्वक रहता है, उन दृढ़ीभूत मान्यताओं अथवा धारणाओं को प्रज्ञा ही तोड़ती है और फिर देहाभिमान (रावण) द्वारा निर्मित किए हुए सुख के क्षेत्र (अशोकवाटिका) को विनष्ट कर देती है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा अशोकवाटिका के विध्वंस के रूप में इंगित किया गया है।

मान्यताओं अथवा धारणाओं का टूटना देहाभिमान (रावण) को विचलित करता है, अत: प्रतिक्रिया-स्वरूप जो विभिन्न प्रकार के विकार (जिन्हें कथा में रावण द्वारा भेजे गए किंकरादि राक्षस, मंत्री-पुत्र जम्बुमाली तथा पुत्र अक्षकुमार आदि के रूप में चित्रित किया गया है) बाहर निकलते हैं, उन सभी विकारों का विनाश करके प्रज्ञा की यह शक्ति (हनुमान) देहाभिमान रूप रावण को कमजोर करने का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है।

प्रज्ञा (हनुमान) का सौन्दर्य है– उसकी ज्ञान-शक्ति अर्थात् पूँछ, जो सदैव उसके साथ-साथ, उसके पीछे-पीछे विद्यमान रहती है। संस्कार रूप में विद्यमान अपना ही देहाभिमान (रावण) अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु जब कोई सुदृढ़ उपाय नहीं पाता, तब विकृत विचारों (राक्षसों) के सहारे इस ज्ञान-शक्ति (पूँछ) को ही लांछित करने का व्यर्थ प्रयास करने लगता है। परन्तु ज्ञान की शक्ति एक ऐसी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अग्नि है, जो प्रज्वलित होने पर व्यक्तित्व (लंकापुरी) में निर्मित हुए सभी सुदृढ़ विकारों को भस्मीभूत कर देती है। हनुमान द्वारा पूँछ की आग से लंकापुरी के दहन के रूप में इसी तथ्य को निरूपित किया गया है।

सार रूप में यह कहा जा सकता है कि अनेकानेक जन्मों की लम्बी यात्रा में मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) के भीतर देहाभिमान का जो संस्कार (रावण) प्रबल रूप में निर्मित हो गया है, उसे सीधे-सीधे विनष्ट करना कदापि सम्भव नहीं है। अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान अनेकानेक मान्यताएँ अथवा धारणाएँ उस संस्कार को पुष्ट करती हैं, अतः देहाभिमान (रावण) को विनष्ट करने से पहले उन मान्यताओं, धारणाओं को विनष्ट करना अति आवश्यक होता है। स्वयं को पहचानकर और शरीर का स्वामी बनकर जब मनुष्य (राम) का प्रसुप्त ज्ञान (सुग्रीव) जाग्रत हो जाता है, तब उसकी अपनी प्रज्ञा (हनुमान) पहले मान्यताओं, धारणाओं का विनाश करके देहाभिमान के प्रबल संस्कार (रावण) को कमजोर करती है और फिर पवित्र-सोच (सीता) को वापस लाने में मनुष्य (राम) की सहायक हो जाती है। अतः प्रस्तुत कथा के माध्यम से इस प्रज्ञा के ही अद्भुत महत्त्व को अनेकानेक रूपों में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The Power of Wisdom as depicted through the Story of Hanumāna

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Sundarakāṇḍa, chapters 4-54), there is a story of Hanumāna. It is said that Hanumāna crossed the ocean and after overpowering demoness Laṅkā, he entered Laṅkāpurī. He wandered here and there in search of Sītā but failed. Ultimately, he reached in Aśokavāṭikā where he saw Sītā surrounded by several demonesses. Somehow, he could manage to talk to Sītā and consoled her by assuring that she will be soon liberated.

Hanumāna smashed and damaged trees, ponds, theatres and mountains etc. in Aśokavāṭikā and heavily damaged a big castle (Caitya – Prāsāda) nearby. When this news reached Rāvaṇa, he became angry and sent several demons one after the other to kill him. But Hanumāna killed all those demons. At last, his mighty son Indrajit was sent who captured him (Hanumāna) and produced him before Rāvaṇa. Hanumāna fearlessly and boldly advised Rāvaṇa to release Sītā and hand her over to Rāma. On hearing this, Rāvaṇa got furiously angry and ordered his demons to kill Hanumāna but they could not succeed. At last, on his brother's sane advice, his tail was set on fire. Hanumāna somehow liberated himself, climbed over several castles with burning tail and he burnt out and damaged all of them.

This story depicts the Power of Wisdom symbolized as Hanumāna. It points out that Wisdom is the only Power which is capable of searching Purity (Sītā) stolen by Ego (Rāvaṇa) and which has disappeared from life. For this purpose, Wisdom first enters the realm of Ego symbolized as Laṅkāpurī. Then He analyzes the mechanism of Ego and discovers that Ego (the egoistic mind) symbolized as Rāvaṇa has created a Comfort Zone (Aśokavāṭikā) around himself. This Egoistic mind thinks impurely, behaves wrongly but deceives himself by justifying all his Wrongs as Right. This is a big illusion which makes him feel comfortable and he never repents over his all wrong thoughts

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

and deeds.

In this illusion, Purity of thoughts and deeds symbolized as Sītā remains hidden, never manifests in life and lies in dormant state for ever symbolized as Sītā imprisoned in Aśokavāṭikā.

Wisdom (Ḥanumāna) surely understands that this mechanism of ego has been created by its own beliefs and saṁskāras embedded in deeper mind, therefore it becomes neccessary to destroy them first. As a result, Wisdom starts destroying them symbolized as the destruction of Aśokavāṭikā and Caitya – Prāsāda by Hanumāna.

Now elemination of beliefs and saṁskāras makes Ego (egoistic mind) uncomfortable and in this state of discomfort many many vices come out which are symbolized as the ministers, sons and army of Rāvaṇa which were sent to kill Hanumāna.

The story points out that Wisdom is the only power which one by one, overpowers and kills the vices. In its presence, outwardly thoughts come to an end symbolized as Jambumālī, Selfish Thoughts diminish symbolized as Akṣa Kumāra and Anger i.e., Indrajit which comes and tries to bind Wisdom also fails. Wisdom, posing as bound now directly faces Ego, i.e., Rāvaṇa and requests him to liberate Purity, i.e., Sītā. But Ego remains adamant and dominant on Wisdom using the weapon of Ignorance. In this condition, Knowledge symbolized as Hanumāna's tail emerges and burns all the thoughts of Ego such as ego of name, fame, roles, relations, designations and possessions. This is symbolized as the burning of Big Castles of Laṅkāpurī by the burning tail of Hanumāna.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३२. त्रिजटा कथा

(अन्तर्ज्ञान-शक्ति का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

त्रिजटा कथा के माध्यम से अन्तर्ज्ञान-शक्ति का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत सुन्दरकाण्ड (सर्ग २६-२७) तथा युद्धकाण्ड (सर्ग ४८) में त्रिजटा से सम्बन्धित जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सुन्दरकाण्ड में वर्णित कथा में कहा गया है कि रावण की अशोकवाटिका में कैद हुई तथा राक्षसियों द्वारा डरायी धमकायी जाती हुई सीता जब राम के वियोग में करुण विलाप कर रही थी और प्राणों का परित्याग करने के लिये उत्सुक थी, तब तत्काल सोकर उठी हुई त्रिजटा नामक एक वृद्धा राक्षसी सीता को सान्त्वना देते हुए बोली कि उसने एक अद्भुत स्वप्न देखा है, जो राक्षसराज रावण के विनाश और राम की विजय को सूचित करने वाला है। स्वप्न के अनुसार राक्षसों के लिये शीघ्र ही घोर भय उपस्थित होगा और सीता ही राक्षसियों को अभय दान देने में समर्थ होंगी।

युद्धकाण्ड में वर्णित कथा में कहा गया है कि इन्द्रजित के बाणों से मूर्छित हुए राम और लक्ष्मण को मृत समझकर सीता जब करुण विलाप करने लगी, तब त्रिजटा ने ही सीता को यह कहते हुए आश्वासन प्रदान किया कि राम और लक्ष्मण मरे नहीं हैं। वे केवल मूर्छित हुए हैं क्योंकि मृत अवस्था में शरीर के ऊपर जो लक्षण दिखाई देते हैं, वे लक्षण वहाँ विद्यमान नहीं हैं और राम की सेना में भी हर्ष, क्रोध, उद्यम तथा उत्साह विद्यमान है।

कथा की प्रतीकात्मकता एवं तात्पर्य

कथा प्रतीकात्मक है। अतः प्रतीकों को समझकर कथा का तात्पर्य स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है।

१. त्रिजटा–

त्रिजटा शब्द त्रि और जटा नामक दो शब्दों के मेल से बना है। त्रि शब्द तृ धातु का प्रच्छन्न (छिपा हुआ) स्वरूप है, जिसका अर्थ है– तैरना या बहना। जटा शब्द भी जरा शब्द का प्रच्छन्न स्वरूप है और इसका अर्थ है– पुरानी। अतः अवचेतन मन (चित्त) के स्तर पर विद्यमान किसी ऐसी ज्ञान-शक्ति को त्रिजटा

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहा जा सकता है, जो तैरती हुई या बहती हुई अकस्मात् चेतन मन के स्तर पर प्रकट हो जाती है और किसी न किसी रूप में उपस्थित हुए विषाद विशेष में मनुष्य की सहायक हो जाती है।

२. त्रिजटा की ज्ञानस्वरूपता–

प्रत्येक मनुष्य अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा है और सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द गुणों से सदैव भरपूर है। परन्तु सृष्टि के विराट कालचक्र में कुछ समय के लिये मनुष्य अपने इस वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाता है और स्वयं को देहमात्र समझने लगता है। देहमात्र समझने के कारण उसकी पवित्र-सोच भी जीवन-व्यवहार से लुप्त हो जाती है और तभी प्रकट हो पाती है, जब मनुष्य पुनः अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप में अवस्थित होता है। आत्म-स्वरूप में अवस्थित होकर अब वह जन्म- जन्मान्तर की यात्रा में अर्जित किये हुए देहाभिमान को और देहाभिमान से उत्पन्न हुए समस्त विकारों को विनष्ट करता है और जीवन-व्यवहार से लुप्त हुई पवित्र-सोच को पुनः प्राप्त कर लेता है। यही वह आधारभूत ज्ञान है, जो कभी विनष्ट नहीं होता है और मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) में प्रसुप्त स्थिति में विद्यमान रहता है। यही आधारभूत ज्ञान कभी कभी आभासी रूप में प्रकट हो जाता है और अन्तर में स्थित जो शक्ति इस आभासी ज्ञान को लेकर अकस्मात् चेतन मन के स्तर पर प्रकट हो जाती है, उसे ही कथा में त्रिजटा नामक पात्र की ज्ञानस्वरूपता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। चूँकि यह शक्ति ज्ञानयुक्त होती है, इसलिये इसे आधुनिक शब्दावली में अन्तर्ज्ञान की शक्ति कहा जा सकता है।

३. त्रिजटा का सत्य कथन–

अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान उपर्युक्त वर्णित ज्ञान सत्य ज्ञान होता है, जिसे कथा में त्रिजटा के सत्य कथन के रूप में चित्रित किया गया है। उदाहरण के लिये- एक स्थान पर (सुन्दरकाण्ड में) इस सत्यता का संकेत सीता के प्रति त्रिजटा के इस सत्य कथन के रूप में किया गया है कि अपने ही अवचेतन मन में संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) के कारण मनुष्य की पवित्र-सोच (सीता) भले ही बहुत कमजोर, निष्क्रिय अथवा मृतप्राय सी हो गई हो, परन्तु एक दिन ऐसा अवश्य आता है, जब आत्म-ज्ञान के उदय से (अर्थात् राम के आगमन से) देहाभिमान (रावण) का विनाश अवश्य होता है और देहाभिमान के विनाश से उसकी कैद में पड़ी हुई पवित्र-सोच (सीता) भी अवश्य प्रतिष्ठा प्राप्त करती है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

दूसरे स्थान पर (युद्धकाण्ड में) इस सत्यता का संकेत सीता के प्रति त्रिजटा के इस सत्य कथन के रूप में किया गया है कि अपने ही अवचेतन मन में संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही क्रोध के कारण भले ही आत्म-स्वरूप (आत्म-ज्ञान) मूर्छित (विस्मृत) हो जाए परन्तु वह विनष्ट नहीं होता और आत्म-ज्ञान के जागरण से पवित्र-सोच का मुक्त होना भी निश्चित ही होता है। उसमें विषाद करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

चूँकि अन्तर में विद्यमान यह ज्ञान-शक्ति बहुत पुरानी है और देहाभिमान की स्थिति में ही अवचेतन मन के स्तर से उठकर और चेतन मन के स्तर पर प्रकट होकर मनुष्य को आभासी ज्ञान द्वारा आश्वासन प्रदान करती है, इसलिये कथा में इस अन्तर्ज्ञान-शक्ति अर्थात् त्रिजटा को वृद्धा एवं राक्षसी कहकर सम्बोधित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The Power of Intution as depicted through Demoness Trijaṭā

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Sundarakāṇḍa, chapters 26-27, Yuddhakāṇḍa, chapters 48), a special character is described as demoness Trijaṭā. At one place, it is said that when Sītā was weeping bitterly surrounded by different Demonesses in Aśokavāṭikā, Trijaṭā suddenly appeared and consoled Sītā by describing her the Dream in which she saw that Rāma will come soon, will defeat Rāvaṇa and will free her from his possession.

At other place, it is said that Sītā was sent by Rāvaṇa to the battlefield to show her that Rāma and Lakṣmaṇa are lying dead. Seeing them lying there Sītā wept bitterly. But Trijaṭā consoled her by saying that Rāma and Lakṣmaṇa were not dead. They are simply lying unconscious as their faces were still shining and their brigade of Vānaras was also enthusiastic.

Both these stories clearly show that Trijaṭā is symbolized as the power of Intution. Four aspects which determine this are as follows–

1. The word 'Trijaṭā' itself indicates that Trijaṭā is a perpetually Old Power. In Sanskrit language 'Tri' means- flowing and 'Jaṭā' means– Old. Therefore the perpetually old power which comes flowing is Trijaṭā. Intutive Power is the Old Power which comes flowing from sub-conscious mind to conscious mind.

2. Trijaṭā is associated with Knowledge because whenever she tells something she tells related to knowledge only. She consoles Sītā by using knowledge. This proves that Trijaṭā is an Old Intutive Power because an Old Intutive Power is always associated with knowledge.

3. Trijaṭā is associated with Truth also because whenever she tells, she tells the Truth. This proves that Trijaṭā is an Old Intutive Power because an Old Intutive Power is always possessed with Truth also.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

4. Trijaṭā all of a sudden comes, consoles Sītā and disappears. This also proves that Trijaṭā is an Old Intutive Power because an Old Intutive Power suddenly comes, consoles a person and disappears.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

युद्ध काण्ड

३३. नल द्वारा सेतु-निर्माण कथा

(कुशल मन द्वारा ज्ञान को आचरण (व्यवहार) से जोड़ने की आवश्यकता एवं महत्त्व का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
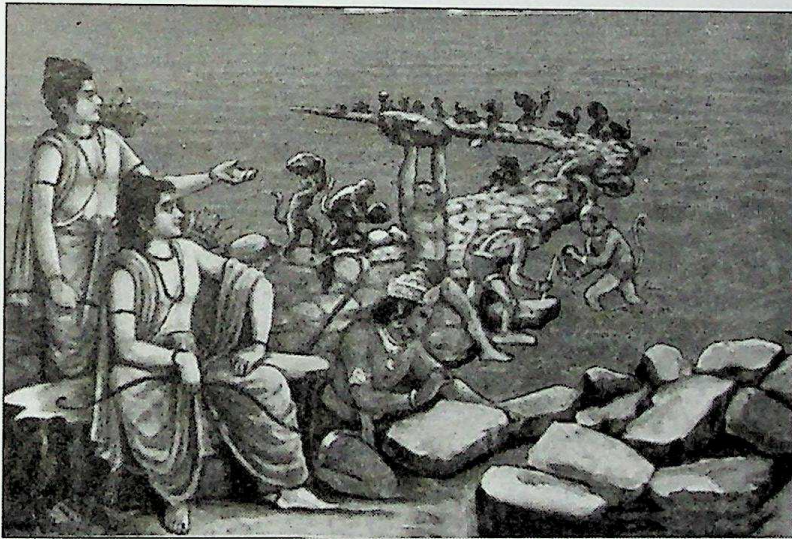
युद्धकाण्ड

नल द्वारा सेतु-निर्माण के माध्यम से कुशल मन द्वारा ज्ञान को आचरण (व्यवहार) से जोड़ने की आवश्यकता एवं महत्त्व का वर्णन

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड (सर्ग २१-२२) में वर्णित सेतु-निर्माण की कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सीता को वापस लाने हेतु लंकापुरी में पहुँचने के लिए दुस्तर समुद्र को पार करना सबसे बड़ी बाधा थी क्योंकि समुद्र बड़े-बड़े नाकों, मत्स्यों, सर्पों, ग्राहों, दानवों, दैत्यों तथा राक्षसों से भरा हुआ था। वानर-सेना के पार होने के लिए समुद्र को पार करना अनिवार्य था। अतः हनुमान और सुग्रीव ने जब राम की शरण में आए हुए विभीषण से पूछा कि वानरों की सेना के साथ इस अक्षोभ्य समुद्र को कैसे पार किया जाए, तब विभीषण ने कहा कि राम को समुद्र की शरण लेनी चाहिए। तदनुसार राम समुद्र के तट पर कुशा बिछाकर समुद्र की उपासना करते रहे, परन्तु समुद्र प्रकट नहीं हुआ। राम ने क्रोधपूर्वक अनेक तीक्ष्ण बाण भी समुद्र के जल में छोड़े, जिससे समुद्र में तो भारी कोलाहल मच गया परन्तु जड़ समुद्र प्रकट नहीं हुआ। अन्त में राम ने उस जड़ समुद्र के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग करते हुए जैसे ही ब्रह्मास्त्र का संधान किया, वैसे ही समुद्र एक देवता के रूप में प्रकट हो गया और समुद्र के कथनानुसार राम ने अपना वह अमोघ बाण जिस स्थान पर छोड़ा, उससे समुद्र का कुक्षि-प्रदेश सूख गया और वहाँ एक नूतन कूप का निर्माण हो गया। अब समुद्र ने राम से कहा कि <आपकी सेना का नल नामक वानर विश्वकर्मा का पुत्र तथा शिल्पकला में निपुण है। वही मेरे ऊपर एक सेतु का निर्माण करे।> तदनुसार नल ने अन्य वानरों की सहायता लेकर बड़े-बड़े पर्वतशिखरों, शिलाखंड़ों और वृक्षों से समुद्र को पाटकर सौ योजन लम्बा एक सेतु तैयार कर दिया और वानरों की विशाल सेना सेतु को बांधते-बांधते समुद्र के पार पहुँच गई।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है। अतः प्रतीकों को समझकर ही कथा को

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समझना सम्भव हो सकेगा।

१. समुद्र–

मनुष्य के अपने मन को ही यहाँ समुद्र कहकर संकेतित किया गया है। चूँकि यह मन विचार (thoughts), भाव (feelings), दृष्टिकोण (attitude), कर्म (action), आदत (habit), दृष्टि (perception), व्यक्तित्व (personality) तथा भाग्य (destiny) के रूप में बहुत गहरा है, इसलिए इसे समुद्र कहना उचित ही है। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्बन्ध-सम्पर्क में (व्यवहार में) रहते हुए मनुष्य जिन अनेकानेक विचारों का निर्माण हर समय करता है, वे विचार केवल विचार तक सीमित नहीं रहते। विचारों से भाव निर्मित होते हैं और समस्त भाव मिलकर मनुष्य के दृष्टिकोण को बनाते हैं। दृष्टिकोण के आधार पर मनुष्य कर्म करता है और कर्म की बार-बार आवृत्ति आदत में बदल जाती है। आदतें ही मनुष्य के भीतर एक विशिष्ट दृष्टि को निर्मित कर देती हैं और अब मनुष्य इसी दृष्टि से निर्मित हुए व्यक्तित्व के अनुसार समस्त जगत् को देखने लगता है। यह दृष्टि मनुष्य की आंखों पर लगे हुए एक रंगीन चश्मे की तरह होती है और अब मनुष्य जो भी देखता है, इसी रंगीन चश्मे के माध्यम से देखता है।

देह-चेतना में रहने अर्थात् अपने आपको शरीर समझकर तदनुसार व्यवहार करने पर जब मनुष्य के विचारों में 'मैं' , 'मेरा' और 'स्वार्थ' प्रविष्ट हो जाता है, तब न केवल मनुष्य के विचार ही दूषित होते हैं, अपितु दूषित विचारों के आधार पर उपर्युक्त वर्णित शृंखला-क्रम में मनुष्य के भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदतें, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य आदि सभी क्रमशः दूषित हो जाते हैं। ये सभी दूषित विचार, भाव, दृष्टिकोण, कर्म, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य मनुष्य को हानि पहुँचाते हैं, इसलिए मन रूपी समुद्र में व्याप्त इस दूषण को ही कथा में समुद्र में रहने वाले ग्राह, मकर, नाग, सर्प, दैत्य, दानव तथा राक्षस आदि के रूप में चित्रित किया गया है।

अनेकानेक जन्मों तक अपने आपको शरीर समझकर स्वार्थ आदि के वशीभूत होने के कारण मनुष्य के विचारों में, भावों में, कर्म तथा दृष्टि आदि में जो यह दूषण या कलुषता व्याप्त हो जाती है, उसे अब देह-चेतना में रहकर नहीं मिटाया जा सकता। यह कलुषता पूर्णरूपेण केवल तभी समाप्त होती है, जब मनुष्य प्रयत्नपूर्वक स्व-चेतना को ही रूपान्तरित कर लेता है अर्थात् स्वयं को शरीर न

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

समझकर आत्म-स्वरूप समझने लगता है। राम के द्वारा समुद्र के कुक्षि- प्रदेश को सुखा देना और वहाँ एक नूतन कूप का निर्माण कर देना इसी तथ्य को इंगित करता है, जिसका विवेचन अगले लेख में किया जाएगा।

प्रस्तुत कथा में यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि मन रूपी समुद्र की गहराई में विद्यमान कलुषता को स्पर्श किए बिना कलुषता से मुक्त रहने का एक अन्य श्रेष्ठतम उपाय है– मन रूपी समुद्र के ऊपर सेतु का निर्माण अर्थात् ज्ञान और आचरण (व्यवहार) का परस्पर समन्वय। ज्ञान और आचरण (व्यवहार) मनुष्य के जीवन में दो पृथक्-पृथक् किनारों की भाँति विद्यमान रहते हैं अर्थात् मनुष्य प्रयत्नपूर्वक ज्ञान का संग्रह तो अवश्य करता है परन्तु उस ज्ञान-संग्रह का विनियोग आचरण (व्यवहार) में अधिकांशतः नहीं करता। इसीलिए जब तक ये दोनों ज्ञान और आचरण अलग-अलग विद्यमान रहते हैं, तब तक मनुष्य का अपना ही कलुषताओं से भरा हुआ मन रूप समुद्र बाधक-स्वरूप बना रहता है। इसके विपरीत संग्रह किये हुए ज्ञान की एक-एक शक्ति को और आचरण (व्यवहार) को परस्पर जोड़ देने पर मन रूपी समुद्र में विद्यमान कलुषता विद्यमान होते हुए भी बाधक-रूप नहीं रहती। उदाहरण के लिए–

मन रूपी समुद्र में विद्यमान अपने ही विचार की कलुषता कहती है कि अमुक व्यक्ति ने मुझे अमुक अवसर पर नहीं बुलाया था, तो मैं ही उन्हें क्यों बुलाऊँ। परन्तु ज्ञान की शक्ति कहती है कि अमुक ने भले ही तुम्हें नहीं बुलाया परन्तु तुम्हें तो बुलाना चाहिए। इस ज्ञान की शक्ति को आचरण (व्यवहार) से जोड़ देने पर अर्थात् अमुक व्यक्ति को बुला लेने पर मन में विद्यमान अभिमान-प्रेरित कलुष विचार निरर्थक हो जाते हैं और मनुष्य उस कलुषता से अछूता बना रहता है।

मन रूपी समुद्र में विद्यमान अपने ही भाव की कलुषता कहती है कि अमुक व्यक्ति यदि मुझसे प्रेम से बात नहीं करता तो मैं ही क्यों करूँ। ज्ञान की शक्ति तुरन्त कहती है कि दूसरा व्यक्ति भले ही प्रेम से बात नहीं करता परन्तु तुम्हें तो प्रेम से ही बात करनी चाहिए। इस ज्ञान-शक्ति को आचरण (व्यवहार) में लाकर अर्थात् अमुक व्यक्ति से प्रेमपूर्वक बात करके मनुष्य न केवल अपने ही मन में पड़ी हुई कलुषता से अस्पृष्ट हो जाता है, अपितु उस अभिमान को कमजोर करने में भी सहायक हो जाता है, जो उसे प्रेमपूर्वक बात करने से रोक रहा था।

इसी प्रकार मन रूपी समुद्र में पड़ी हुई दृष्टि की कलुषता कहती है कि जब अमुक व्यक्ति ने मेरी सहायता नहीं की थी, तो अब मैं ही उसकी सहायता क्यों

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करूँ। ज्ञान-शक्ति कहती है कि किसी ने भले ही तुम्हारी सहायता न की हो, परन्तु तुम्हें तो करनी चाहिए और फिर इस ज्ञान-शक्ति को आचरण में लाकर मनुष्य अमुक की सहायता करता भी है। वास्तव में अपना ही देहाभिमान अपनी ही दृष्टि को दूषित कर देता है परन्तु आचरण (व्यवहार) में उतरी हुई ज्ञान-शक्ति उसी अभिमान को कमजोर करने में सहायक हो जाती है।

इसी प्रकार सहस्रों उदाहरणों से इस बात को सम्यक-रूपेण समझा जा सकता है कि किस प्रकार ज्ञान की शक्तियों और आचरण (व्यवहार) को परस्पर संयुक्त करके मनुष्य अपने ही मन रूपी समुद्र में विद्यमान कलुषता से मुक्त रह सकता है।

२. समुद्र की जड़ता (मन्दता)–

अपने आपको शरीर समझने के कारण मनुष्य यह भूल जाता है कि वह स्वयं अपने प्रत्येक विचार का निर्माता है और विचार के आधार पर ही उसके भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदत, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य आदि सभी का क्रमशः निर्माण होता है। यही विस्मृति अथवा अज्ञानता मनुष्य के मन की जड़ता है, जिसे समुद्र की जड़ता के रूप में इंगित किया गया है।

३. समुद्र का देवता रूप में प्राकट्य–

उपर्युक्त वर्णित इस जड़ स्थिति के बिल्कुल विपरीत स्थिति जागरण की है। अपने आपको आत्मरूप समझते ही मनुष्य को यह भलीभाँति ज्ञात हो जाता है कि वही अर्थात् आत्मा ही तो मन रूप होकर अपने प्रत्येक विचार का निर्माण कर रहा है, अतः विचार से लेकर भाग्य तक की सम्पूर्ण शृंखला का निर्माता वह स्वयं है– कोई दूसरा नहीं। मन की इस समझ अथवा जाग्रत स्थिति को ही कथा में राम के ब्रह्मास्त्र-सन्धान से समुद्र के देवता रूप होकर प्रकट होने के रूप में इंगित किया गया है।

४. समुद्र द्वारा दिशा-निर्देश–

मन की यह समझ अथवा जाग्रत स्थिति ही मनुष्य (राम) को यह महत्त्वपूर्ण दिशा-निर्देश देती है कि अनेकानेक जन्मों से शरीर-चेतना में रहते हुए जो ढेर सारी कलुषता अर्जित हो चुकी है, उस कलुषता के विनाश पर अभी ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता नहीं है। अधिक आवश्यकता इस बात की है कि आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य ने (राम ने) जिन सहस्रों ज्ञान-शक्तियों (वानरों) का

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

संग्रह किया है, उन सब ज्ञान-शक्तियों को अब आचरण (व्यवहार) से संयुक्त कर दिया जाए अर्थात् ज्ञान की छोटी से छोटी शक्ति को भी केवल ज्ञान तक सीमित न रखकर अब उसे आचरण से, कर्म से जोड़ लिया जाए। इसे ही कथा में समुद्र द्वारा राम को दिये गए सेतु के निर्माण के दिशा-निर्देश के रूप में इंगित किया गया है।

५. सेतु–

भौतिक स्तर पर निर्मित सेतु उस शिल्प को कहा जाता है, जो किसी नदी अथवा जलाशय के एक किनारे को दूसरे किनारे से जोड़ता है। आन्तरिक अथवा आध्यात्मिक स्तर पर भी ज्ञान और आचरण (व्यवहार) जीवन रूपी नदी के दो किनारे हैं। ये दो किनारे जब परस्पर जुड़ जाते हैं, तब सेतु कहलाते हैं।

६. नल–

नल शब्द वास्तव में नर शब्द का ही तद्भव स्वरूप (बिगड़ा हुआ स्वरूप) प्रतीत होता है। शास्त्रों में नार और नर शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। शास्त्रीय दृष्टि से विज्ञानमय कोश की शुद्ध एवं ज्ञान युक्त चेतना को नार कहा जाता है तथा इसी नार शब्द के आधार पर बहु प्रचलित नारायण (नार-अयन) शब्द भी निष्पन्न हुआ है। मनोमय कोश की शुद्ध-चेतना को नर कहा जाता है और यह नर चेतना जहाँ एक ओर उपर्युक्त वर्णित विज्ञानमय कोश की शुद्ध एवं ज्ञान युक्त चेतना से जुड़ी रहती है, वहीं दूसरी ओर प्राणमय तथा अन्नमय कोशों से भी जुड़ी रहती है। कहने का तात्पर्य यह है कि मनोमय कोश की नर चेतना ही विज्ञानमय कोश की नार चेतना से प्राप्त हुए ज्ञान को प्राणमय तथा अन्नमय कोशों की चेतना अर्थात् आचरण (व्यवहार) से जोड़ती है। अथवा अत्यन्त सरल रूप में ऐसा भी कह सकते हैं कि वह कुशल मन जो उच्च मन से प्राप्त हुए ज्ञान को आचरण (व्यवहार) से जोड़ देता है– वही नर अथवा नल है।

बिना गढ़े हुए पदार्थ को गढ़कर उसे एक सुन्दर स्वरूप प्रदान कर देना शिल्प कहलाता है। स्वर्ण से आभूषणों के निर्माण अथवा मिट्टी से मूर्त्तियों के निर्माण को जैसे शिल्प कला में गिना जाता है, उसी प्रकार इकठ्ठे हुए ज्ञान को आचरण में उतार लेना भी एक श्रेष्ठ आंतरिक शिल्प है। इसीलिए कथा में नर-चेतना अर्थात् नल नामक वानर को शिल्प-कला में निपुण कहा गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

७. वानर-सेना–

ज्ञान की विभिन्न शक्तियों को ही रामकथा में कोटि-कोटि वानर-सेना के रूप में इंगित किया गया है। ज्ञान की सभी शक्तियाँ किसी न किसी रूप में अभिमान के विनाश में सहयोगी तो अवश्य होती हैं परन्तु ये ज्ञान-शक्तियाँ स्वयं आचरण में नहीं उतर सकती। मनुष्य का कुशल मन (नल) ही प्रयत्नपूर्वक इन्हें आचरण (व्यवहार) में उतारता है। इसे ही कथा में नल द्वारा वानरों की सहायता से सेतु-निर्माण के रूप में इंगित किया गया है।

कथा का तात्पर्य

प्रत्येक मनुष्य का मन एक समुद्र की भाँति है, जिसमें विचार, भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदत तथा दृष्टि आदि के रूप में बहुत कुछ भरा पड़ा है अर्थात् मनुष्य हर समय जिन विचारों की रचना करता है, वे विचार मिलकर उसके भाव का निर्माण करते हैं। समस्त भाव मिलकर उसके दृष्टिकोण को बनाते हैं। दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य कर्म करता है। कर्म की बार-बार आवृत्ति आदतों को जन्म देती है। आदतों से दृष्टि का निर्माण होता है। दृष्टि के अनुसार मनुष्य का व्यक्तित्व निर्मित होता है और जैसा व्यक्तित्व होता है, वैसा ही उसका भाग्य बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य के अपने ही विचार उसके भाग्य का निर्माण करते हैं।

परन्तु मनुष्य जिन विचारों की रचना करता है– उन विचारों का भी मूल है– उसकी अपनी चेतना। यह चेतना दो प्रकार की होती है। या तो मनुष्य शरीर-चेतना में स्थित होता है या आत्म-चेतना में। चतुर्युगी के विराट कालचक्र में जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूलकर शरीर-चेतना में स्थित हो जाता है, तब शरीर और संसार की ओर ही उन्मुख रहने के कारण (मैं-मेरा-स्वार्थादि के कारण) उसके विचारों में कलुषता आने लगती है और फिर विचारों की कलुषता से शनैः-शनैः उसके भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदतें, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य आदि सभी कलुषित हो जाते हैं, जिसे कथा में समुद्र में रहने वाले नाक, मकर, ग्राह, सर्प, दैत्य, दानव तथा राक्षस आदि के रूप में इंगित किया गया है।

शरीर-चेतना के कारण कलुषित हुए इस मन रूपी समुद्र को शुद्ध, स्वच्छ बनाने का एकमात्र उपाय है– शरीर-चेतना को ही रूपान्तरित करके आत्म-चेतना में स्थित होना। आत्म-चेतना में स्थित होकर मनुष्य जिन विचारों का निर्माण करता है– वे विचार शुद्ध, स्वच्छ, पवित्र होते हैं और विचारों के पवित्र होने पर उपर्युक्त वर्णित शृंखला के आधार पर मनुष्य के भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदतें, दृष्टि तथा व्यक्तित्व

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

के रूप में सारा मनःसमुद्र ही पवित्र हो जाता है। राम के ब्रह्मास्त्र से समुद्र के कुक्षिस्थान का सूख जाना और वहाँ एक नए कूप का निर्मित हो जाना इसी उपर्युक्त तथ्य को इंगित करता है (इस तथ्य को अगले लेख में स्पष्ट किया जाएगा)।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि आत्म-चेतना में स्थित होकर मन रूपी समुद्र का सम्पूर्ण जल एक न एक दिन शुद्ध तो अवश्य ही हो जाएगा, परन्तु लम्बे समय तक शरीर-चेतना में रहने के कारण मन रूपी समुद्र के भीतर जो कलुषता इस समय अर्थात् अभी विद्यमान है, उस कलुषता से बचने का भी एक श्रेष्ठतम उपाय है– मन रूपी समुद्र के ऊपर सेतु का निर्माण कर लेना। सेतु-निर्माण का अर्थ है– अर्जित किए हुए नूतन ज्ञान को आचरण (व्यवहार) के साथ संयुक्त कर देना। किसी नदी अथवा जलाशय को पार करने के लिए जैसे एक किनारे को दूसरे किनारे से जोड़ देना आवश्यक होता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक स्तर पर भी ज्ञान और आचरण (व्यवहार) को परस्पर जोड़कर एक ऐसे सेतु का निर्माण होता है, जिस पर चलकर मनुष्य उन सभी कलुषताओं से सुरक्षित हो जाता है, जो कलुषताएँ मनुष्य के ही उस मन रूपी समुद्र में विद्यमान होती हैं, जिनका निर्माण शरीर-चेतना में रहते हुए उसी ने किया था।

ज्ञान और आचरण के समन्वय रूप इस सेतु के निर्माण का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि मनुष्य कलुषता को विनष्ट करने के बोझिल परिश्रम से बचकर अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा को सेतु के निर्माण में लगा देता है और उसका यह प्रयास ठीक वैसा ही होता है, जैसे कोई नदी अपने रास्ते में आने वाली बड़ी-बड़ी शिलाओं से कभी संघर्ष नहीं करती अपितु बगल (किनारे) से रास्ता बनाकर सतत आगे की ओर बढ़ जाती है।

कथा यह महत्त्वपूर्ण संकेत भी करती है कि प्रयत्न-पूर्वक ज्ञान का आश्रय लेकर मनुष्य यद्यपि ज्ञान की सहस्रों शक्तियों से युक्त हो जाता है परन्तु ज्ञान की ये सहस्रों शक्तियाँ स्वयं ही आचरण (व्यवहार) के साथ नहीं जुड़ पाती। ज्ञान की सभी शक्तियों को आचरण (व्यवहार) में उतारने के लिए एक कुशल मन की आवश्यकता होती है, जिसे कथा में नल नाम दिया गया है। यह कुशल मन यद्यपि मनुष्य के पास सदा विद्यमान ही होता है, परन्तु मनुष्य इस कुशल मन को पहचान नहीं पाता। इस कुशल मन की पहचान केवल तभी होती है, जब वह कुशल मन इस जागरण से युक्त होता है कि कलुषता से भरे हुए इस मनःसमुद्र का निर्माण उसी ने किया है और अब ज्ञान को आचरण में उतारकर वही इस कलुषता के परे भी जा सकता है। दिव्य रूप-धारी समुद्र के दिशा-निर्देश के रूप में इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Importance of Combining Knowledge with Behaviour as depicted in the Story of Building a Bridge by Nala

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapters 21-22), there is a story of building up of a bridge by Nala over the Ocean. It is said that Rāma wanted to bring back Sītā from Laṅkāpurī, therefore, he reached the Ocean with his huge army of Vānaras. As the Ocean was very vast and horrible, it seemed very difficult for Vānaras to cross the Ocean. As advised by Vibhīṣaṇa, Rāma first asked the Ocean to provide them the path to cross over, but the Ocean did not oblige.

Rāma got angry over this and he picked up his Bow (Brahmāstra). The Ocean immediately appeared as a Deity (Devatā), advised Rāma to built up a Bridge upon Him and also said that one prominent Vānara of his brigade named Nala is expert in this work and if he builds up a Bridge, all the Vānaras would be able to cross the Ocean easily. Accordingly, Nala with the help of other Vānaras built up the Bridge and all of them crossed the Ocean with ease.

The story is symbolic and related to the Neccessity and Importance of Combining Knowledge with Behaviour. It denotes several aspects as under–

A person is a combination of Ignorance and Knowledge both. He has Ignorance due to Impurities of Deep Mind on one hand and the Knowledge on the other.

Having lived for ages in Body-Consciousness, a person gets entangled in Me and Mine (impure self). This makes his Thoughts impure and the impurity of Thoughts create impurities in his Deep Mind. Accordingly, his Feelings, Attitude, Actions, Habits and Perceptions etc. symbolized as the Ocean, all become impure. This impurity remains very powerful till his Body-Consciousness transforms into Soul-Consciousness.

By the grace of God and his conscious efforts, one day or the other the person gets awakened and collects a lot of useful

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Knowledge symbolized as the Vānaras, a huge army of Sugrīva.

Now, the question arises, who is more powerful between the two – Impurity of Deep Mind or the Powers of Knowledge.

The story points out that the Impurities of Deep Mind are very powerful because they prop – up immediately as soon as a person begins to think about something baser. Therefore, it becomes very necessary to look for a more powerful method which can help to get rid of such impurities.

The story points out that the Impurities of Deep Mind can be destroyed totally only by living in Soul-Consciousness but an immediate relief can be obtained by Combining all the Powers of Knowledge with Behaviour i.e., putting Knowledge into Action. Impurities definitely get weakened by this Implementation of Knowledge. For example, if a person talks rudely to me, the Impurity of my Deep Mind immediately provokes me to react in the same manner. But if I respond lovingly, being inspired by my Knowledge, the former Impurity gets diminished. This Combination of Knowledge and Behaviour is symbolized as Building up of the Bridge over the Ocean.

Just as the Bridge built up over the Ocean is very beneficial, in the same way Smallest Powers of Knowledge (noble qualities) Implemented in one's life are very beneficial as they protect one from all the bad effects of one's own Impurities lying in the Deep Mind.

The story depicts one more important aspect of this Implementation. It says that the different Powers of Knowledge never get converted into Behaviour of their own voluntarily. A Pure Efficient Mind (Nala) is needed for this Implementation. This Efficient Mind converts Knowledge into Behaviour and as a result of this all the Impurities lying there (in the Deep Mind) are overpowered.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३४. राम के ब्रह्मास्त्र से समुद्र-कुक्षि का सूखना और नूतन कूप-निर्माण कथा

(आत्म-ज्ञान द्वारा देह-चेतना के विनाश और आत्म-चेतना के निर्माण का चित्रण)
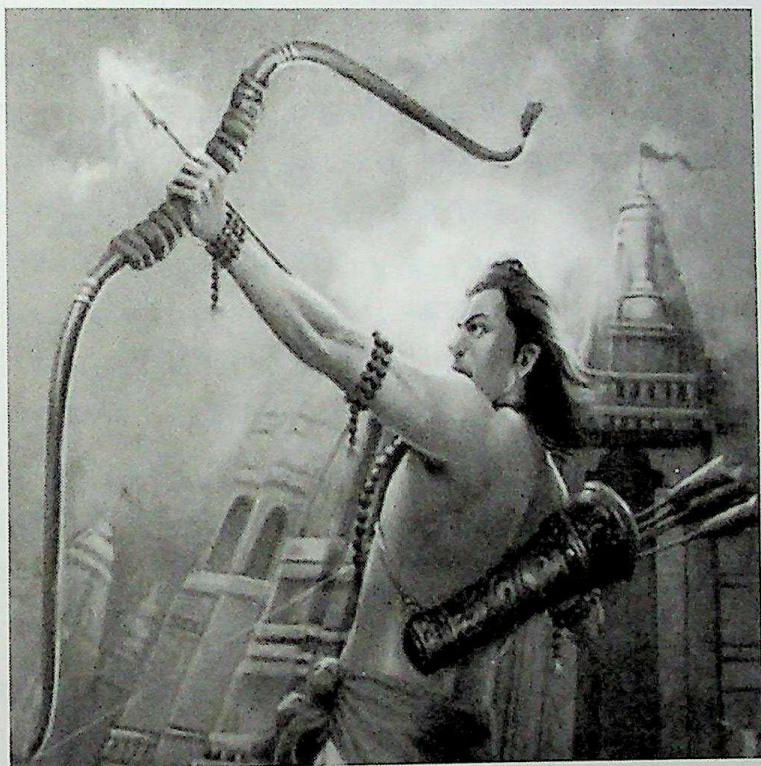
CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

राम के ब्रह्मास्त्र से समुद्र-कुक्षि के सूखने और नूतन कूप के निर्माण के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा देह-चेतना के विनाश और आत्म-चेतना के निर्माण का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड (सर्ग २२) में वर्णित प्रस्तुत कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

समुद्र के प्रति कठोर शब्दों का प्रयोग करते हुए राम ने जब ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया, तब समुद्र एक देवता के रूप में प्रकट हुआ और समुद्र को पार करने हेतु उपाय बताने के लिए अग्रसर हुआ। परन्तु राम ने उसे रोका और कहा कि मेरा यह बाण अमोघ है, अतः पहले यह बताइये कि इसे किस स्थान पर छोड़ा जाए।

समुद्र ने कहा कि <उत्तर की ओर द्रुमकुल्य नाम से विख्यात जो पवित्र देश है, वहीं आप इस बाण को सफल कीजिए। वहाँ भयानक रूप और कर्म वाले आभीर जाति के मनुष्य निवास करते हैं। वे लोग मेरा जल पीते हैं और उन्हीं पापाचारियों के स्पर्श से मेरा जल दूषित हो जाता है।>

समुद्र के कथनानुसार राम ने वहीं अपना बाण छोड़ दिया। राम के बाण से समुद्र का वह कुक्षि-स्थान सूखकर मरुभूमि बन गया और वहीं एक अन्य व्रण (छिद्र) बनकर कुएँ के समान हो गया। कुएँ से निकलता हुआ वह जल भी समुद्र के जल की भाँति दिखाई देने लगा।

कथा की प्रतीकात्मकता

सर्वप्रथम प्रतीकों को समझकर कथा को समझना सहज होगा।

१. द्रुमकुल्य देश–

द्रुमकुल्य शब्द वास्तव में द्रुमकुल शब्द का ही छिपा हुआ स्वरूप है। द्रुमकुल (द्रुम-कुल) का अर्थ है– द्रुम अर्थात् वृक्ष के कुल का। मनुष्य का मन रूपी गहरा समुद्र भी ठीक वैसा ही है, जैसा एक वृक्ष अर्थात् जैसे किसी भी वृक्ष की मूल (जड़ें) होती हैं और तना, शाखा, पत्ते, फूल तथा फल आदि के रूप में वृक्ष विस्तार को प्राप्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करता है, उसी प्रकार मनुष्य का मन भी एक वृक्ष की भाँति होता है। संचित अनुभव, मान्यताएँ, वर्तमान सूचनाओं पर आधारित ज्ञान तथा इन तीनों के समन्वय से निर्मित हुई चेतना (शरीर-चेतना अथवा आत्म-चेतना) उस मन रूपी वृक्ष की मूल (जड़ें) होती हैं तथा विचार, भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदतें, दृष्टि, व्यक्तित्व और भाग्य उस मन रूपी वृक्ष के तने, शाखा, पत्ते, फूल तथा फल आदि होते हैं। मन रूपी द्रुमकुल देश को निम्नांकित तालिका से भलीभाँति समझा जा सकता है।

संचित अनुभव+मान्यताएं+सूचना आधारित ज्ञान

⇓

चेतना

(देह चेतना या आत्मा चेतना

⇓

विचार

⇓

भाव

⇓

दृष्टिकोण

⇓

कर्म

⇓

आदत

⇓

दृष्टि

⇓

व्यक्तित्व

⇓

भाग्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

यह तालिका एक वृक्ष की भाँति है, इसीलिए इसे द्रुमकुल देश कहकर संकेतित किया गया है।

२. आभीर जाति के स्पर्श से समुद्र के जल का दूषित होना–

आभीर (आ-भी (भयं) राति) शब्द का अर्थ है– चारों ओर से (आ) भय को (भयं) देने वाला (राति)। देह-चेतना (मैं शरीर हूँ– इस अहसास में स्थित) को ही यहाँ द्रुमकुल्य देश की आभीर जाति कहकर संकेतित किया गया है क्योंकि देह-चेतना ही मनुष्य को चारों ओर से भय प्रदान करती है। मृत्यु का भय, व्यक्तियों और वस्तुओं को खोने का भय, सुरक्षा का भय, मान-सम्मान को गंवाने का भय तथा आधि-व्याधि का भय आदि अनेक प्रकार के भय हैं, जिनसे मनुष्य निरन्तर ग्रस्त रहता है।

कथा संकेत करती है कि देह-चेतना में रहते हुए उपर्युक्त भयों से ग्रस्त रहने के कारण मन रूपी समुद्र का विचार रूप जल दूषित हो जाता है और विचार के दूषित होने पर भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदत, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य के रूप में सारा मन:समुद्र ही दूषित हो जाता है। इसी तथ्य को कथा में यह कहकर इंगित किया गया है कि आभीर जाति के पापाचारी मनुष्यों के स्पर्श से मन रूपी समुद्र दूषित हो जाता है।

३. राम के ब्रह्मास्त्र से कुक्षिप्रदेश का सूखना और मरुप्रदेश का बनना–

कुक्षि का अर्थ है– भीतरी भाग या गर्भाशय। समझने की सुविधा के लिए मन रूपी समुद्र को दो भागों में बाँटा जा सकता है। एक भाग वह है, जो विचार, भाव, दृष्टिकोण कर्म, आदत, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य के रूप में मनुष्य को दिखाई देता है तथा दूसरा भाग वह है, जो विद्यमान तो है परन्तु दिखाई नहीं देता। इसी अदृश्य भाग के आधार पर दृश्य भाग विद्यमान रहता है। कथा में इस अदृश्य भाग को ही मन रूपी समुद्र का कुक्षि-प्रदेश कहा गया है। इस कुक्षि-प्रदेश में जन्मों-जन्मों में संचित किए गए अनुभव, अनुभवों से निर्मित हुई मान्यताएँ, वर्तमान सूचनाओं पर आधारित हुआ ज्ञान तथा इन तीनों के समन्वय से बनी हुई चेतना (देह-चेतना अथवा आत्म-चेतना) संस्कार रूप होकर विद्यमान होती है। यदि यह चेतना देह-परक होती है, तब मन रूपी समुद्र का ऊपरी दृश्य भाग- जो विचार, भाव, दृष्टिकोण आदि के रूप में दिखाई देता है– देहपरक हो जाता है। इसके विपरीत, यदि यह चेतना आत्म-परक होती है, तब वही ऊपरी दृश्य भाग आत्म-परक हो जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रस्तुत कथा यह संकेत करती है कि मन रूपी समुद्र के ऊपरी भाग को अर्थात् विचार, भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदत, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य को आत्म-परक बनाने के लिए एकमात्र उपाय यही है कि इस कुक्षि-प्रदेश में विद्यमान देह-चेतना को ही आत्म-चेतना में रूपान्तरित किया जाए और चेतना का यह रूपान्तरण केवल तभी घटित होता है, जब मनुष्य आत्म-ज्ञान में (अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप में) स्थित हो जाए। आत्म-ज्ञान का लक्ष्य ही है– मन रूपी समुद्र के कुक्षि-प्रदेश में विद्यमान देह-चेतना को आत्म-चेतना में रूपान्तरित कर देना। इसे ही कथा में राम के बाण से कुक्षि-प्रदेश का सूखना और मरुभूमि का निर्मित हो जाना कहा गया है।

४. राम के ब्रह्मास्त्र से नए व्रण (छिद्र) का निर्माण और व्रण का कूप रूप धारण–

अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानकर तथा आत्म-गुणों में स्थित होकर मनुष्य के जीवन का सारा समीकरण बदल जाता है। अब मलिन विचारों का निर्माण बन्द होकर श्रेष्ठ विचारों का निर्माण प्रारम्भ हो जाता है। श्रेष्ठ विचारों के निर्माण को ही यहाँ नए व्रण (छिद्र) के रूप में इंगित किया गया है। यही नूतन व्रण (छिद्र) शनैः-शनैः कूप का स्वरूप धारण कर लेता है, अर्थात् जैसे कूप कभी सूखता नहीं, उसमें जल की आवक (आगमन) सदा बनी रहती है, उसी प्रकार आत्म-ज्ञान में स्थित होकर आत्म-गुणों में रहने पर श्रेष्ठ विचार भी कभी समाप्त नहीं होते अपितु सतत वृद्धि को प्राप्त होते रहते हैं।

५. ब्रह्मास्त्र–

ब्रह्मास्त्र (ब्रह्मा-अस्त्र) का अर्थ है– रचयिता शक्ति द्वारा बनाया गया स्वभाव रूपी अस्त्र। प्रत्येक तत्त्व का अपना जो विशिष्ट स्वरूप है– वही उसका ब्रह्मास्त्र है। उदाहरण के लिये- क्रोधी व्यक्ति के पास क्रोध रूप स्वभाव ही उसका ब्रह्मास्त्र है तथा आत्म-ज्ञानी के पास सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप स्वभाव ही उसका ब्रह्मास्त्र है।

कथा का तात्पर्य

अपने आपको शरीर समझकर तदनुसार जीवन जीने वाला प्रत्येक मनुष्य प्रतिपल जिन विचारों की रचना करता है, उन विचारों को यदि ध्यानपूर्वक देखा जाता है, तब पता चलता है कि उनमें शुद्धता का अंश कम, कलुषता का अंश अधिक होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इन्हीं विचारों से भाव का निर्माण होता है और भावों से दृष्टिकोण आदि का। अतः केवल विचार के कलुषित होने से भाव, दृष्टिकोण, कर्म, आदतें, दृष्टि, व्यक्तित्व तथा भाग्य आदि के रूप में सारा मन:समुद्र ही कलुषित हो जाता है।

कथा संकेत करती है कि इस मन:समुद्र को पवित्र करने के लिए सारे मन:समुद्र के पृथक्-पृथक् तलों को पवित्र करने की आवश्यकता नहीं है। केवल मूल को रूपान्तरित करके सारे मन:समुद्र को रूपान्तरित किया जा सकता है। इस मन:समुद्र के मूल में विद्यमान होते हैं– वे अनुभव, जिनका संग्रह मनुष्य ने ही अनेक-अनेक जन्मों में किया है, वे बहुत सारी मान्यताएँ, जो अनुभवों के फलस्वरूप निर्मित हुई हैं, वह सूचना-आधारित ज्ञान जिसे मनुष्य वर्तमान से ग्रहण करता है तथा इन तीनों के समन्वय से बनी हुई देह-चेतना। इसे ही कथा में मन रूपी समुद्र का कुक्षि-प्रदेश भी कहा गया है।

कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान द्वारा अर्थात् स्वस्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानकर तथा आत्म-गुणों में स्थित होकर मन:समुद्र के इस मूल को निश्चितरूपेण रूपान्तरित किया जा सकता है और आत्म-ज्ञान का लक्ष्य भी यही है। आत्म-स्वरूप को पहचान लेने पर और आत्म-गुणों में स्थित हो जाने पर जीवन में प्राप्त होने वाले सारे अनुभव ही बदल जाते हैं। अनुभवों के बदलने से मान्यताएँ बदल जाती हैं तथा मान्यताओं के बदलने से शनैः-शनैः सूचनाओं को ग्रहण करने का स्वरूप भी बदल जाता है। फलस्वरूप इन तीनों के बदलने से देह-चेतना भी आत्म-चेतना में रूपान्तरित होकर सारे मन:समुद्र को परिवर्तित कर देती है अर्थात् मन रूपी समुद्र सारी कलुषता का परित्याग करके पूर्णतः पवित्र हो जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Body-consciousness changes into Soul-consciousness by Self-Knowledge as depicted through the story of making a new Well in Ocean by Rāma

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapter 22), there is a short story of deep mind symbolized as Ocean. It is said that Rāma requested the Ocean to give way to his brigade of Vānaras but the Ocean did not oblige. Rāma got angry over this and picked up his Bow. But immediately, Ocean sprung up as a Deity and wished to reveal to Him the method to cross the Ocean.

Rama interrupted and asked him to first show the place where to drop that Arrow. Ocean requested Rama that the Arrow may please be directed towards Drumakulya, where Ābhīra people live. The Ocean told Rāma that those people with bad *karmas* drink His water and their touching pollutes the water. Accordingly, Rāma dropped his Arrow there. As a result, that place of dirty water dried up and a new small hole developed at that place which soon got converted into a well. The water oozing from the well appeared just like the water of Ocean.

The story is symbolic and depicts the glory of Self- Knowledge. It says that having lived in body-consciousness, the deep mind symbolized as Ocean becomes impure and this impure mind always remains as a big obstacle in one's own spiritual development. Therefore, it becomes imperitive to change it. The story says that the best method to change this is to change the consciousness itself. As soon as the consciousness changes, the deep impure mind also changes or it can be said that all the impurities of mind vanish.

Now, the question arises how to shift the consciousness from body to soul.

The story indicates that the Knowledge of Self changes this consciousness. A person, Knowing his own Real Self and living with the innate qualities of this Real Self always focusses on the root. Past Experience, Beliefs and present information are the root cause of body-consciousness. Self-Knowledge changes this root cause and as soon as the root cause change, the

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

consciousness gets transformed from body-consciousness to soul-consciousness. Now this Soul-Consciousness first transforms the Thoughts to purity and then the whole series of Feelings, Attitude, Action, Habit, Perception, Personality and Destiny etc. all become pure.

Here the Body-Consciousness is symbolized as Ābhīra people. Cause of body-consciousness is symbolized as Kukṣi-Pradesh of the Ocean i.e. Past Experience, Beliefs and Information. Soul-Consciousness is symbolized as the new well of pure water and the oozing water from the well is symbolized as Pure Mind i.e.purity of Thoughts-feelings-Attitude-Action-Habit- Perception and Personality.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३५. इन्द्रजित् के नागमय बाणों से राम-लक्ष्मण का बन्धन एवं मुक्ति कथा

(ज्ञान द्वारा व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
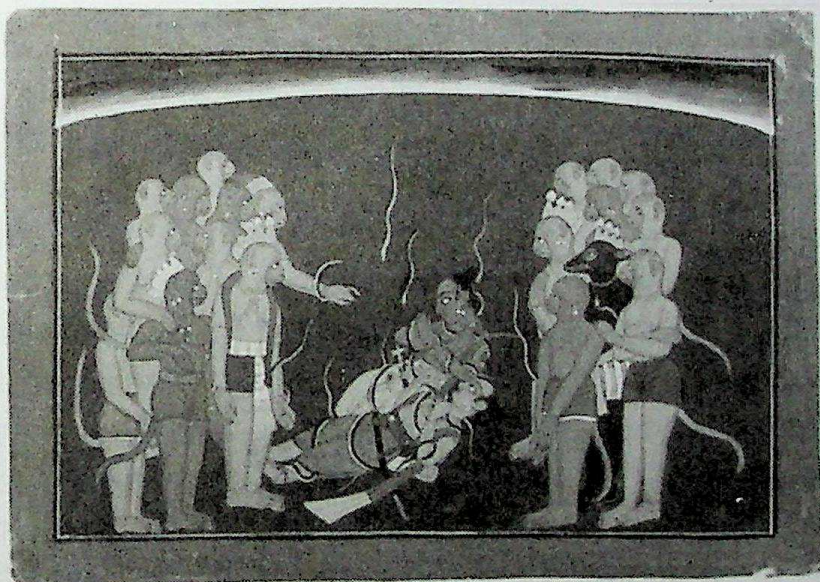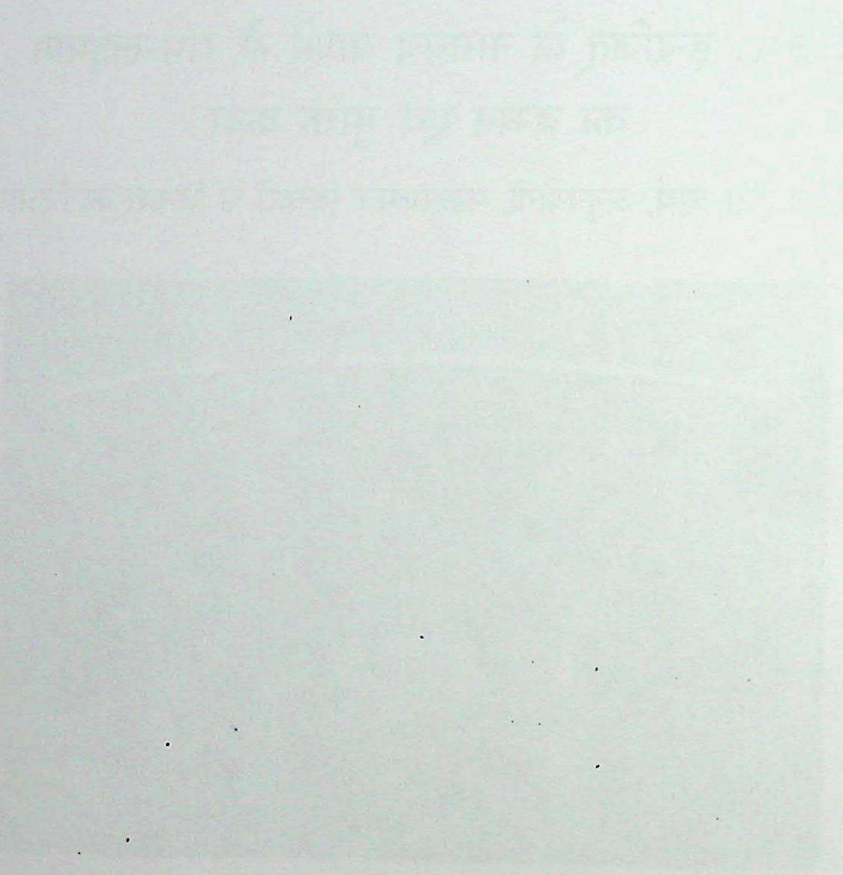
इन्द्रजित् के नागमय बाणों से राम-लक्ष्मण के बन्धन एवं मुक्ति के माध्यम से ज्ञान द्वारा व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड में (सर्ग ४४, ४५ तथा ५०) इन्द्रजित् द्वारा राम- लक्ष्मण के बन्धन एवं मुक्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

प्रकट रूप से युद्ध करते हुए रावण का पुत्र इन्द्रजित् जब राम और लक्ष्मण का सामना करने में समर्थ न हो सका, तब उसने अन्तर्धान विद्या का आश्रय लेकर स्वयं को अदृश्य कर लिया और राम-लक्ष्मण को मोह में डालते हुए उन्हें नागमय बाणों द्वारा बाँध दिया। नागमय बाणों से राम-लक्ष्मण के मूर्च्छित हो जाने पर जब समस्त वानर व्याकुल हो गए, तब विभीषण ने उन्हें सान्त्वना प्रदान की और राम-लक्ष्मण के सचेत हो जाने के प्रति उन्हें आश्वस्त भी किया। सुषेण नामक वानर ने देवासुर संग्राम का स्मरण करते हुए उन दिव्य ओषधियों को लाने का परामर्श दिया, जिनके द्वारा पीड़ित और अचेत हुए देवों की चिकित्सा की जाती थी। परन्तु इसी वार्ता के बीच अकस्मात् विनता-नन्दन गरुड़ वहाँ उपस्थित हुए और उनके आते ही राम-लक्ष्मण को बांधने वाले नागमय बाण तुरन्त भाग गए। सचेत होकर उठे हुए राम ने गरुड़ को हृदय से लगाया और गरुड़ ने भी कहा कि वे उनके मित्र हैं तथा देवों के मुख से उनके नागमय बाणों द्वारा बंधने का समाचार सुनकर शीघ्रतापूर्वक यहाँ आए हैं। गरुड़ ने पुनः कहा कि ये समस्त नागमय बाण कद्रू के पुत्र थे और उनके (गरुड़ के) अतिरिक्त अन्य कोई भी उन्हें इन नागों के बन्धन से छुड़ाने में समर्थ नहीं हो सकता था। इस प्रकार कहकर तथा राम-लक्ष्मण को नीरोग करके गरुड़ ने राम से आज्ञा ली और आकाशमार्ग की ओर प्रस्थान किया।

कथा की प्रतीकात्मकता

प्रस्तुत कथा प्रतीकात्मक है। अतः पहले प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

१. इन्द्रजित्–

इन्द्रजित् (इन्द्र-जित्) शब्द का अर्थ है– इन्द्र को जीत लेने वाला। इन्द्र शब्द यहाँ शुद्ध, शान्त, स्थिर मन का वाचक है। अतः जो विकार मनुष्य के इस शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को अपने वश में कर लेता है, उसे इन्द्रजित् कहा जा सकता है। एक शब्द में कहना चाहें तो क्रोध नामक विकार को ही इन्द्रजित् कहा जा सकता है क्योंकि क्रोध नामक विकार मनुष्य के शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को अपने अधीन कर लेता है। इन्द्रजित् का ही दूसरा नाम मेघनाद अर्थात् मेघ की भाँति गर्जन करने वाला भी है, अतः इस गर्जन के आधार पर भी इन्द्रजित् नामक पात्र क्रोध के प्रतीक रूप में युक्तिसंगत प्रतीत होता है।

२. इन्द्रजित् को प्राप्त हुई अन्तर्धान विद्या–

क्रोध दो प्रकार का होता है। एक दृश्य अर्थात् दिखाई देने वाला तथा दूसरा अदृश्य अर्थात् जो दिखाई तो नहीं देता परन्तु मन के भीतर व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों के रूप में विद्यमान होता है। जोर-जोर से बोलना, चिल्लाना, मुख का लाल हो जाना अथवा हाथ-पैरों को पटकना आदि ऐसे कईं लक्षण होते हैं, जिनके द्वारा क्रोध नामक विकार दृश्य हो जाता है और इन लक्षणों के आधार पर किसी भी मनुष्य के लिए उस क्रोध को पहचानना सरल भी होता है। परन्तु अदृश्य क्रोध में उपर्युक्त वर्णित कोई भी लक्षण विद्यमान नहीं होता। केवल मनुष्य का मन व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों से भर जाता है और क्रोध करने वाला व्यक्ति स्वयं ही अपने मन के ऊपर ध्यान देकर उसे देखने में समर्थ हो पाता है। इस अदृश्य अथवा अप्रकट क्रोध को ही कथा में इन्द्रजित् को प्राप्त हुई अन्तर्धान विद्या कहा गया है।

३. अदृश्य हुए इन्द्रजित् द्वारा प्रयुक्त नागमय बाण–

अदृश्य, अप्रकट अथवा आन्तरिक क्रोध की स्थिति में मनुष्य का मन जिन व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों से युक्त हो जाता है, उन व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों को ही यहाँ इन्द्रजित् के नागमय बाण कहकर संकेतित किया गया है।

कथा में इन नागमय बाणों को कद्रू के पुत्र कहा गया है। कद्रू शब्द कद् अव्यय के साथ रु धातु के योग से बना है। कद् का अर्थ है– बुरा या दूषित तथा रु का अर्थ है– ध्वनि करना या शब्द करना। अतः कद्रू शब्द ऐसी प्रकृति (मन-बुद्धि)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

को इंगित करता है, जो बुरी या दूषित ध्वनि वाली है। ऐसी प्रकृति (मन-बुद्धि) से ही व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों की उत्पत्ति होती है, जिन्हें कथा में नागमय बाण कहा गया है।

नाग शब्द न अव्यय के साथ अग शब्द के मेल से बना है। अग (अ-गच्छति) का अर्थ है– चलने में असमर्थ और न का योग होने पर नाग का अर्थ हुआ– चलने में समर्थ। चूँकि व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचार मन की गहराई (चित्त या अवचेतन मन) से निकलकर तुरन्त ऊपर अर्थात् चेतन मन के स्तर पर आ जाते हैं, इसलिए इस तीव्र गति से चलने के कारण ही इन्हें नाग नाम दिया गया है।

४. अदृश्य हुए इन्द्रजित् द्वारा नागमय बाणों से राम-लक्ष्मण का बन्धन–

यहाँ यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि दृश्य क्रोध में यह सामर्थ्य नहीं होती कि वह स्वस्वरूप की पहचान में स्थित हुए मनुष्य अर्थात् आत्म-ज्ञानी (राम) को अपने आधीन कर सके। आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य कभी भी दृश्य क्रोध– जैसे चीखना-चिल्लाना, सामान फेंकना अथवा व्यर्थ बकवाद करना आदि के वशीभूत नहीं होता। परन्तु अदृश्य क्रोध में व्यर्थ विचार प्रकट होकर कभी-कभी उसकी विचार-शक्ति (लक्ष्मण) को पंगु बना देते हैं और इस प्रकार आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) उनसे बंध जाता है।

५. विनतानन्दन गरुड़ द्वारा राम-लक्ष्मण की बन्धन से मुक्ति–

पौराणिक साहित्य में गरुड़ नामक पक्षी को श्रेष्ठ ज्ञान के प्रतीक रूप में ग्रहण किया गया है। श्रेष्ठ ज्ञान का अर्थ है– सम्यक् रूप में यह समझ लेना कि आत्मा के स्तर पर पूर्णतः एक समान होते हुए भी प्रकृति (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर) के स्तर पर प्रत्येक मनुष्य एक दूसरे से पूर्णतः भिन्न है। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य की सोच, उसका व्यवहार तथा उसकी पसन्द-नापसन्द आदि सभी भिन्न-भिन्न हैं। इस भिन्नता को पूर्णतः स्वीकार करते हुए जीना ही सुखपूर्ण जीवन का एक मात्र आधार होता है।

आत्म-ज्ञान में स्थित (अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानने वाला) मनुष्य यदि कभी आन्तरिक क्रोध से घिरकर व्यर्थ, अनुपयोगी एवं नकारात्मक विचारों के वशीभूत हो भी जाता है, तब अन्तर मन में विद्यमान यही उपर्युक्त वर्णित श्रेष्ठ ज्ञान (गरुड़) तुरन्त अवतरित होकर मनुष्य को उन सभी व्यर्थ, अनुपयोगी एवं नकारात्मक विचारों के बन्धन से मुक्त करता है, जिनका

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

निर्माण केवल इस कारण से हो जाता है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के अपने से सर्वथा भिन्न स्वभाव, संस्कार को कभी-कभी स्वीकार नहीं कर पाता है। इसी तथ्य को कथा में गरुड़ का आकर नागमय बाणों से बंधे हुए राम-लक्ष्मण को मुक्त करने के रूप में चित्रित किया गया है।

गरुड़ को विनता का पुत्र कहकर यह संकेतित किया गया है कि जब मनुष्य की प्रकृति (मन-बुद्धि) विनता (वि-नता) अर्थात् झुकी हुई, अहंकार से रहित होती है, तभी उसके भीतर गरुड़ रूपी उपर्युक्त वर्णित श्रेष्ठ ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है और इस श्रेष्ठ ज्ञान के समक्ष फिर व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचार टिक नहीं पाते, तुरन्त भाग जाते हैं, जिसे कथा में गरुड़ के आते ही नागमय बाणों के भाग जाने के रूप में इंगित किया गया है।

कथा का अभिप्राय

अनेकानेक जन्मों की लम्बी यात्रा में मनुष्य जिन कर्मों की आवृत्ति बार-बार करता है, वे कर्म संस्कार बनकर अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठे हो जाते हैं और फिर पर्त्त के ऊपर पर्त्त बनकर इकठ्ठे हुए उन संस्कारों को विनष्ट करना बहुत कठिन हो जाता है। इकठ्ठे हुए ये संस्कार यद्यपि दैवी और आसुरी दोनों ही प्रकार के होते हैं, परन्तु देह-चेतना में रहने के कारण आसुरी संस्कारों का प्राकट्य अधिक होता है, जिन्हें अहंकार तथा काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारों के रूप में जाना जा सकता है। रामकथा में रावण और उसका परिवार अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान इन्हीं समस्त विकारों का प्रतिनिधित्व करता है।

देह-चेतना में रहकर इकठ्ठे किए हुए इन आसुरी संस्कारों को अब देह-चेतना में रहकर ही विनष्ट नहीं किया जा सकता। इनको विनष्ट करने का अब एकमात्र उपाय होता है– आत्म-ज्ञान अर्थात् स्वस्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान कर अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता बन जाना, जिसे रामकथा में राम-लक्ष्मण के रूप में चित्रित किया गया है।

आत्म-ज्ञान में स्थित होकर और अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता बनकर जब मनुष्य अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठे हुए अपने ही संस्कार रूप विकारों को विनष्ट करने के लिए प्रयत्नशील होता है, तब अपने ही भीतर एक दिव्य संग्राम प्रारम्भ हो जाता है, जिसे रामकथा में राम-रावण संग्राम के रूप में चित्रित किया गया है। अपने ही भीतर चलने वाले ऐसे संग्रामों को

पौराणिक साहित्य में देवासुर-संग्राम भी कहा गया है। इस दिव्य संग्राम के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अन्तर्गत जैसे ही कोई विकार अवचेतन मन (चित्त) से निकलकर बाहर (चेतन मन के स्तर पर) आता है, वैसे ही आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) सावधान होकर अपनी संकल्प-शक्ति, अपने विवेक और अपनी ज्ञान-शक्तियों के सहारे उस विकार को विनष्ट करने का यथासम्भव प्रयत्न करता है और अन्ततः उस विकार को विनष्ट भी कर देता है। परन्तु कभी-कभी कोई विकार इतना प्रबल होता है कि वह विकार न केवल आत्म-ज्ञानी को अपितु उसकी संकल्प-शक्ति को भी अपने बन्धन में बाँध लेता है। इन्द्रजित् नामक पात्र के रूप में क्रोध नामक विकार की इसी प्रबलता को दर्शाया गया है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि क्रोध नामक विकार के दो स्वरूप हैं। एक है– दृश्य (प्रकट) क्रोध तथा दूसरा है– अदृश्य (अप्रकट) क्रोध। दृश्य क्रोध वह है, जो अनेक प्रकार के लक्षणों, जैसे जोर-जोर से चिल्लाना, सामान फेंकना, अपशब्दों का उच्चारण करना आदि के द्वारा सभी को दिखाई देता है। इसके विपरीत, अदृश्य क्रोध वह है, जिसका कोई लक्षण तो नहीं होता परन्तु मनुष्य अवचेतन मन (चित्त) से निकले हुए व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों के वशीभूत हो जाता है। कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) दृश्य क्रोध के आधीन तो कभी नहीं होता परन्तु पूर्व संस्कारों के वशीभूत होकर संकल्प-शक्ति के शिथिल हो जाने से कभी-कभी अदृश्य क्रोध के आधीन अवश्य हो जाता है। इसे ही कथा में अदृश्य हुए इन्द्रजित् के नागमय बाणों से राम-लक्ष्मण का बंध जाना कहा गया है।

कथा यह महत्त्वपूर्ण संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य का व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों के आधीन हो जाना केवल क्षणिक अथवा अल्पकालिक ही होता है क्योंकि श्रेष्ठ ज्ञान के उतरते ही वे व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचार तुरन्त विलीन हो जाते हैं, जिसे कथा में गरुड़ के आते ही नागमय बाणों के भाग जाने के रूप में इंगित किया गया है।

तात्पर्य यह है कि आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य (राम) एक सामान्य मनुष्य की भाँति बहुत लम्बे समय तक व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचारों से ग्रस्त नहीं रहता। वह जान लेता है कि प्रकृति अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त की भिन्नता के कारण प्रत्येक मनुष्य के सोचने-समझने का स्तर अलग-अलग है, सबकी पसन्द-नापसन्द भी अलग-अलग है। अतः सभी मनुष्य आत्मा के स्तर पर एक समान होते हुए भी प्रकृति के स्तर पर बिल्कुल अलग-अलग हैं। इसी श्रेष्ठ ज्ञान को कथा में गरुड़

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कहकर इंगित किया गया है। इस श्रेष्ठ ज्ञान के आगमन से व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचार स्वयमेव भाग जाते हैं। व्यर्थ, अनुपयोगी, नकारात्मक विचार वे विचार हैं, जो उपर्युक्त वर्णित ज्ञान के अभाव में मन के भीतर तब उत्पन्न हो जाते हैं जब कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपने समान व्यवहार वाला बनाने की व्यर्थ कामना से युक्त हो जाता है। इस व्यर्थ कामना से ग्रस्त हो जाने को ही कथा में नागमय बाणों से प्राप्त हुई राम–लक्ष्मण की मूर्छा कहकर इंगित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Knowledge liberates from Waste, Futile Thoughts as described through the story of Nāgapāśa of Indrajit

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, Chapters 44, 45 and 50), there is a story of a fight between Rāma-Lakṣmaṇa and Indrajit (son of Rāvaṇa). When Indrajit could not succeed directly in this fight, he, hiding himself captured Rāma and Lakṣmaṇa and bound them with his Nāga-Arrows (Nāgapāśa). Rāma and Lakṣmaṇa got fainted, therefore the whole brigade of Vānaras became depressed. Now, Vibhīṣaṇa consoled Vānaras and Suṣeṇa advised to bring the medicines to cure Rāma and Lakṣmaṇa. But in the meanwhile, Garuḍa appeared and as soon as he approached, all the Nāga-Arrows disappeared. Rāma regained consciousness and embraced Garuḍa. Garuḍa told Rāma that he is his friend and came here to liberate him from the Nāga-arrows (sons of Kadru). Garuḍa also warned Rāma to remain careful and he flew away.

The story is symbolic and describes the power of Anger and Knowledge both. One should remember here that a person has to fight with his own vices (saṁskāras) embedded in one's own sub-conscious mind. These vices occassionaly come up on conscious level and harm a person. Anger is a powerful vice symbolized as Indrajit in the story.

The story describes that there are two forms of Anger. One is visible which can be seen through different actions and behaviour such as shouting or speaking loudly, throwing the objects at random or behaving foolishly. The second is invisible residing in the mind in the form of useless negative thoughts. Visible Anger tries its best to overpower a Self-Knowledged person but fails totally. Invisible Anger also tries to overpower him and sometimes succeeds symbolized as the capturing of Rāma and Lakṣmaṇa by Indrajit through his Nāga-Arrows.

The story tells that although a Self-Knowledged person perfectly knows that every person is different on all levels – gross, subtle and causal, due to which his thinking, behaving and

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

liking is different, but at some moment, when he forgets it, Anger, in the form of waste, futile thoughts overpowers him. These waste, futile thoughts are symbolized as Nāga-Arrows of Indrajit.

The story reinforces this truth that although waste, futile thoughts overpower a Self-Knowledged person but these waste, futile thoughts immediately disappear as soon as the above described Knowledge reappears in him. This is symbolized as the coming of Garuḍa and running away of Nāga-Arrows in the story.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३६. इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से राम-लक्ष्मण की मूर्च्छा परन्तु हनुमान द्वारा लाई हुई ओषधियों को सूंघकर प्राप्त हुई सचेतनता कथा

(संस्कार रूप में विद्यमान क्रोध नामक विकार से आत्म-ज्ञान में स्थित मनुष्य की क्षणिक अस्वस्थता परन्तु साक्षी भाव में स्थित होकर प्रज्ञा द्वारा अवतरित आत्म-गुणों की सहायता से स्वास्थ्य प्राप्ति का चित्रण)
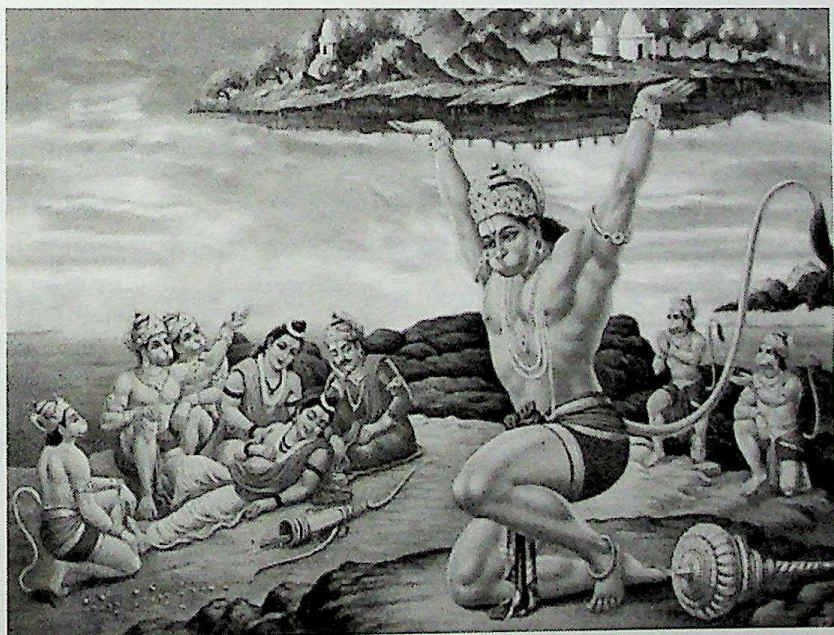
CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से राम-लक्ष्मण की मूर्च्छा परन्तु हनुमान द्वारा लाई हुई ओषधियों को सूंघकर प्राप्त हुई सचेतनता के माध्यम से संस्कार रूप में विद्यमान क्रोध नामक विकार से आत्म-ज्ञानी मनुष्य की क्षणिक अस्वस्थता परन्तु साक्षी भाव में स्थित होकर प्रज्ञा द्वारा अवतरित आत्म-गुणों की सहायता से स्वास्थ्य प्राप्ति का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड (सर्ग ५१ से ७४ तक) में इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र द्वारा राम-लक्ष्मण की मूर्च्छा एवं मूर्च्छा से मुक्ति का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

नागपाश से राम और लक्ष्मण के बन्धन-मुक्त होने का समाचार पाकर रावण अत्यन्त चिन्तित हुआ और उसने धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र, अकम्पन तथा प्रहस्त को एक-एक करके वानर-सेना से युद्ध हेतु भेजा। ये राक्षस वीर भी जब मारे गए, तब रावण स्वयं युद्धभूमि में आया परन्तु राम से परास्त होकर लंका में लौट गया। अपनी पराजय से दुःखी हुए रावण ने अब अपने भाई कुम्भकर्ण को जगाया और युद्ध हेतु भेजा परन्तु वह भी युद्धस्थल में राम के द्वारा मारा गया। अब रावण ने अपने अन्य पुत्रों और भाईयों- नरान्तक, देवान्तक, त्रिशिरा, महोदर, महापार्श्व तथा अतिकाय को युद्ध के लिए भेजा परन्तु एक-एक करके वे वीर भी वानरों द्वारा मार डाले गए।

अब रावण-पुत्र इन्द्रजित् ने शोक में डूबे हुए पिता को सान्त्वना दी और युद्ध के लिए प्रस्थान किया। युद्धभूमि में पहुँचकर इन्द्रजित् ने ब्रह्मास्त्र का आवाहन किया और बाणों की वर्षा करके वानर-सेना को रौंद डाला। वह अदृश्य होकर जब राम और लक्ष्मण के ऊपर सतत बाणों की वर्षा कर रहा था, तब राम ने लक्ष्मण को परामर्श दिया कि अब उन दोनों को युद्ध न करके मूर्च्छित सी अवस्था में लेट जाना चाहिए ताकि विजयलक्ष्मी को प्राप्त हुई समझकर इन्द्रजित् लंकापुरी को लौट जाए।

इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से बाणों की मार खाकर परन्तु ब्रह्मास्त्र का समादर करते हुए जब राम और लक्ष्मण धराशायी हो गए, तब सभी वानर वीर किंकर्तव्यविमूढ़

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

होकर दुःखी हो गए परन्तु विभीषण ने कहा कि राम और लक्ष्मण ने ब्रह्मास्त्र का समादर करते हुए ही अपने शस्त्र नहीं उठाए हैं और ये दोनों इन्द्रजित् के बाण-समूहों से केवल आच्छादित हुए हैं। अतः विषाद करने की कोई बात नहीं है।

विभीषण की यह बात सुनकर हनुमान जी खड़े हो गए और युद्धभूमि में घायल हुए वानर सैनिकों को देखते हुए जाम्बवान् के पास पहुँचे। जाम्बवान् ने हनुमान से कहा कि यह समय तुम्हारे पराक्रम का है। तुम बाणों से पीड़ित हुए राम और लक्ष्मण को स्वस्थ करो और सम्पूर्ण वानर-सेना की रक्षा करो। इसके लिए तुम्हें पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर जाकर वहाँ विद्यमान ओषधियों- मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्णकरनी तथा संधानी को लाकर सभी घायलों को प्राण-दान देना चाहिए।

हनुमान महान् वेग से युक्त थे। अतः तुरन्त हिमालय पर्वत पर पहुँच गए। परन्तु वहाँ पहुँचकर जब वे निर्दिष्ट ओषधियों को नहीं ढूंढ़ सके, तब पर्वत को ही उखाड़कर ले आए। उन महौषधियों की सुगन्ध लेकर राम और लक्ष्मण के साथ-साथ समस्त वानर स्वस्थ हो गए। उनके शरीर से बाण निकल गए और घाव भी भर गए। अब हनुमान ने वेगपूर्वक जाकर उस पर्वत को पुनः हिमालय पर ही पहुँचा दिया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है। अतः सभी प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी है।

१. इन्द्रजित्–

जैसा कि पूर्वलेख में लिखा जा चुका है, इन्द्रजित् नामक पात्र संस्कार रूप में विद्यमान क्रोध नामक विकार को इंगित करता प्रतीत होता है। कथा में धूम्राक्ष, वज्रदंष्ट्र तथा अकम्पन आदि के रूप में जितने भी राक्षस-वीरों का नाम लिया गया है, वे भी वास्तव में मनुष्य के ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान नाना प्रकार के विकार हैं, जो एक-एक करके अवचेतन मन से बाहर निकलते हैं परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य की ज्ञान-शक्तियों (जिन्हें कथा में वानर रूप में प्रस्तुत किया गया है) द्वारा सहज रूप से विनष्ट कर दिए जाते हैं। कुम्भकर्ण के रूप में चित्रित मोह जैसा विकार भी आत्म-ज्ञान के समक्ष टिक नहीं पाता और विनष्ट हो जाता है। परन्तु क्रोध एक ऐसा प्रबल विकार है, जो सतत रूप से आत्म-ज्ञान को बांधने और विनष्ट करने का यथासम्भव प्रयास

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

करता है। यह बात अलग है कि आत्म-ज्ञान की शक्ति के समक्ष यह क्रोध जैसा प्रबल विकार भी टिक नहीं पाता और विनाश को प्राप्त हो जाता है।

२. ब्रह्मास्त्र–

ब्रह्मास्त्र का शाब्दिक अर्थ है– ब्रह्मा द्वारा दिया गया अथवा ब्रह्मा से प्राप्त हुआ अस्त्र विशेष। क्रोध के संदर्भ में यह ब्रह्मास्त्र सम्मोह (मूढ़ता) रूपी अस्त्र को इंगित करना प्रतीत होता है क्योंकि क्रोध को प्राप्त हुआ यह सम्मोह (मूढ़ता रूपी अस्त्र) इतना प्रबल होता है कि इसके प्रभाव में आकर न केवल मनुष्य की ज्ञान-शक्तियाँ (जिन्हें कथा में वानरों के रूप में प्रस्तुत किया गया है) शिथिल होने लगती हैं, अपितु स्वयं मनुष्य की जाग्रता (awakened consciousness) भी (जिन्हें कथा में राम-लक्ष्मण के रूप में प्रस्तुत किया गया है) प्रभावित होने लगती है। क्रोध में मनुष्य ऐसा मूढ़वत् व्यवहार करता है कि उसमें सही-गलत की पहचान नहीं रहती और यह ज्ञान भी विलुप्त हो जाता है कि क्रोध करके वह वास्तव में अपनी ही ऊर्जा को विनष्ट कर रहा है। क्रोध की स्थिति में शरीर की ग्रन्थियाँ कार्टिसोल एवं एड्रीनेलिन नामक ऐसे विषों को भी बाहर निकालने लगती हैं, जो मनुष्य के शरीर को बहुत हानि पहुँचाते हैं। इसीलिए रामकथा में एक स्थान पर (युद्धकाण्ड, सर्ग ९०, श्लोक ८३-८८) कहा गया है कि इन्द्रजित् के मर जाने पर संसार की पीड़ा समाप्त हो गई। महर्षियों, देवताओं, गन्धर्वों और अप्सराओं को प्रसन्नता हुई। जल स्वच्छ हो गया और आकाश निर्मल हो गया।

३. ब्रह्मास्त्र का प्रहार होने पर राम का अस्त्र न उठाना अपितु लक्ष्मण के साथ चुपचाप धरा पर लेट जाना–

प्रस्तुत कथन के द्वारा यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया हैं कि सामान्य मनुष्य अज्ञानवश जहाँ अपने ही भीतर उत्पन्न हुए सम्मोह (मूढ़ता) के साथ संघर्ष करने लगता है, वहीं आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) क्रोधवश उठे हुए सम्मोह (मूढ़ता) का तुरन्त साक्षी हो जाता है अर्थात् वह क्रोध से उठे हुए सम्मोह (मूढ़ता) को ध्यानपूर्वक देखता है परन्तु उसमें उलझता नहीं है। कथा संकेत करती है कि उठे हुए क्रोध और सम्मोह (मूढ़ता) के प्रति कोई संघर्ष न करके केवल साक्षी हो जाने से भी वह क्रोध चुपचाप चला जाता है, जिसे कथा में राम और लक्ष्मण के धराशायी हो जाने पर इन्द्रजित् के लंकापुरी में लौट जाने के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४. विभीषण—

रामकथा में विभीषण नामक पात्र सात्विक गुण (सात्विक मन अथवा सात्विक वृत्ति) को संकेतित करता प्रतीत होता है। अपने आपको शरीर समझते हुए अर्थात् देहाभिमान (ego) में रहते हुए भी यह सात्विक गुण मनुष्य के भीतर विद्यमान रहता ही है। अन्तर केवल इतना होता है कि देहाभिमान में रहते हुए तमस की प्रबलता होने से जहाँ यह सात्विक गुण विद्यमान होते हुए भी दबा हुआ होने के कारण सम्मान प्राप्त नहीं कर पाता (जिसे कथा में रावण द्वारा विभीषण के तिरस्कार के रूप में दर्शाया गया है), वहीं आत्म-ज्ञान में स्थित होने पर यही सात्विक गुण न केवल सम्मानित होता है, अपितु तमस के विनाश हेतु मनुष्य का यथायोग्य दिशा-निर्देशन भी करता है। इन्द्रजित् के विनाश हेतु विभीषण द्वारा दिए गए मार्गदर्शन के रूप में इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

५. जाम्बवान्—

जाम्बवान् शब्द (जाम्ब-जम्ब-जम-यमनियम-वान्) का अर्थ है— यम-नियम आदि से सम्पन्न मन। आधुनिक भाषा में यह यम-नियम आत्म-अनुशासन (self-discipline)को ही संकेतित करता प्रतीत होता है। इन्द्रजित् के विनाश में जाम्बवान् नामक पात्र को सहायक के रूप में उपस्थित करके यह संकेतित किया गया है कि क्रोध रूप विकार को समाप्त करने में मनुष्य का आत्म-अनुशासन भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। क्रोध को क्रोध के द्वारा समाप्त नहीं किया जा सकता। अत: क्रोध के उद्दीपन के रूप में सामने आई हुई परिस्थिति अथवा व्यक्ति चाहे कैसे भी विषम हों, मनुष्य का अपना सभ्य आचरण (आत्म-अनुशासन) भी क्रोध के विनाश में सहयोगी हो जाता है। किसी के असभ्य आचरण के प्रत्युत्तर स्वरूप यदि क्रोध ही किया जाएगा, तब वह क्रोध, क्रोध की अग्नि को अधिकाधिक रूप से प्रज्वलित ही करेगा, जबकि इसके विपरीत प्रयत्नपूर्वक धारण की गई शान्ति से क्रोध को निश्चित रूप से कमजोर किया जा सकेगा। यही नहीं, आत्म-अनुशासन में रहने पर बुद्धि रूपी द्वार खुला रहता है और मनुष्य आगत समस्या के समाधान की ओर प्रवृत्त होता है। जाम्बवान् द्वारा हनुमान को दिया गया ओषधि लाने का परामर्श आत्म-अनुशासन की इसी विशेषता को संकेतित करता है।

६. हनुमान द्वारा हिमालय पर्वत से ओषधियों को लाना और ओषधियों की गन्ध से राम और लक्ष्मण का सचेत हो जाना—

प्रस्तुत कथन के तात्पर्य को समझने के लिए हनुमान, हिमालय पर्वत तथा

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

ओषधि को पृथक्-पृथक् रूप में समझना उपयोगी होगा।

हनुमान- अपने वास्तविक स्वरूप- आत्म-स्वरूप में स्थित हुए (आत्म-ज्ञानी) मनुष्य (राम) की अपनी ही प्रज्ञा को रामकथा में हनुमान नामक पात्र के रूप में प्रदर्शित किया गया है। प्रज्ञाशक्ति वह शक्ति है, जो प्राप्त हुए ज्ञान को ज्ञान तक सीमित न रखकर उसे आचरण में उतार देती है। अथवा ऐसा भी कह सकते हैं कि ज्ञान और आचरण का समन्वित स्वरूप ही प्रज्ञा है।

हिमालय पर्वत- हिमालय पर्वत आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य के शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को इंगित करता है।

ओषधि- इस शुद्ध, शान्त, स्थिर मन के भीतर ही यह ज्ञान सदा विद्यमान रहता है कि मैं एक अजर-अमर-अविनाशी चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ और सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द आदि गुणों से सदैव भरपूर हूँ अर्थात् सुख, शान्ति, प्रेम, आनन्द आदि उपर्युक्त गुणों को कहीं बाहर से प्राप्त नहीं करना है। ये सब गुण मुझ आत्मा का स्वभाव हैं, स्वरूप हैं। अध्यात्म के स्तर पर इस ज्ञान को ही महान् ओषधि के रूप में व्यक्त किया गया है क्योंकि जैसे कोई भौतिक ओषधि मनुष्य के रोग-युक्त भौतिक शरीर को रोग-मुक्त कर देती है, वैसे ही यह ज्ञान रूप ओषधि भी मन-बुद्धि के स्तर पर प्रकट हुए काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि सभी विकार रूप रोगों से मनुष्य को मुक्त कर देती है। यही नहीं, मन का प्रभाव मनुष्य के स्थूल शरीर पर भी पड़ता ही है और मन के रोग-मुक्त होने पर शरीर भी रोग-मुक्त हो जाता है। अतः इस ज्ञान रूप महौषधि को तन और मन दोनों की ही महान् ओषधि कहा गया है।

हनुमान द्वारा लाई हुई ओषधियों को मृतसंजीवनी (मृत को भी जीवित करने वाली अर्थात् नूतन उत्साह का संचार करने वाली), विशल्यकरणी (पीड़ा मुक्त करने वाली), सुवर्णकरणी (स्वर्णवत् शुद्ध और शक्तिशाली बनाने वाली) और संधानी (परमात्म-प्राप्ति रूप लक्ष्य-सन्धान की ओर अग्रसर करने वाली) नाम देकर यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही किसी विकार से जब आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) भी किसी समय क्षणिक रूप से पीड़ित हो जाता है, तब अपनी ही प्रज्ञा (हनुमान) के सहारे वह अपने ही गुणों (आत्म-गुणों) को तुरन्त आचरण में लाकर न केवल उस विकार से प्राप्त हुई पीड़ा से तुरन्त मुक्त हो जाता है, अपितु आत्म-गुणों का स्मरण एवं आचरण उसमें नूतन उत्साह का संचार करके और उसे अधिक शुद्ध एवं शक्तिशाली

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बनाकर सर्वात्मस्वरूपता अथवा परमात्म-प्राप्ति रूप लक्ष्य की ओर अग्रसर कर देता है।

७. हनुमान द्वारा ओषधि पर्वत को पुनः हिमालय पर पहुँचा देना–

चूँकि हिमालय पर्वत शुद्ध, शान्त, स्थिर मन को और ओषधि पर्वत उस मन में विद्यमान सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द प्रभृति आत्म-गुणों को इंगित करता है, अतः यहाँ यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि स्वस्वरूप में स्थित (आत्म-ज्ञानी) मनुष्य के अपने ही शुद्ध, शान्त, स्थिर मन में जो आत्म-गुण सदा विद्यमान रहते हैं, उन्हें ही मनुष्य प्रज्ञाशक्ति (हनुमान) द्वारा जब चाहे आवश्यकता के आधार पर व्यवहार में लाकर प्राप्त हुए विकार के प्रभाव से स्वयं को शीघ्र ही मुक्त कर लेता है। आवश्यकता न होने की स्थिति में वे सब गुण पुनः पूर्ववत् शुद्ध, शान्त, स्थिर मन में विद्यमान हो जाते हैं क्योंकि वही मन उनका मूल आश्रय स्थान है।

कथा का तात्पर्य

जन्मों-जन्मों से शरीर-चेतना (अर्थात् मैं शरीर हूँ– ऐसा समझते हुए जीवन जीना) में रहने के कारण मनुष्य अपनी भूमिकाओं, पदों अथवा अपने सम्बन्ध में निर्मित की हुई अपनी विविध प्रकार की छवियों से इतनी सघनता से जुड़ जाता है कि उन्हें ही अपना वास्तविक स्वरूप समझने लगता है। फिर यही सघन जुड़ाव उसे अनेक प्रकार की आशाओं, अपेक्षाओं, आकांक्षाओं, कामनाओं अथवा वासनाओं से युक्त कर देता है और यही आशाएँ, अपेक्षाएँ अथवा कामनाएँ जब पूरी नहीं होती, तब वह क्रोध नामक विकार से युक्त हो जाता है। शनैः-शनैः यही क्रोध संस्कार (आदत) बनकर अवचेतन मन (चित्त) में इकठ्ठा हो जाता है और यथासमय प्रस्फुटित होकर मनुष्य को बहुत हानि पहुँचाता है। इन्द्रजित् नामक पात्र के माध्यम से अवचेतन मन से निकले हुए इस क्रोध रूप विकार का ही रामकथा में अनेक प्रकार से चित्रण किया गया है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि संस्कार रूप में विद्यमान हुआ यह क्रोध अपने सम्मोह (मूढ़ता) रूप अस्त्र के सहारे (जिसे कथा में ब्रह्मास्त्र नाम दिया गया है) आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य (राम) को भी वशीभूत करने का यथासम्भव प्रयास करता है और कभी न कभी क्षण भर के लिए वशीभूत कर भी लेता है परन्तु आत्म-ज्ञानी मनुष्य कभी तो उस क्रोध का साक्षी होकर क्रोध के

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

प्रभाव से शीघ्र मुक्त हो जाता है (जिसे कथा में राम-लक्ष्मण के धराशायी होने और इन्द्रजित् के लंकापुरी में भाग जाने के रूप में दर्शाया गया है) अथवा कभी अपनी ही प्रज्ञा (हनुमान) के सहारे उन आत्म-गुणों का त्वरित रूप से उपयोग कर लेता है, जो उसी के शुद्ध, शान्त, स्थिर मन में सदा विद्यमान होते हैं। प्रज्ञा द्वारा आत्म-गुणों के स्मरण और उपयोग को ही कथा में हनुमान द्वारा लाई गई ओषधियों के रूप में चित्रित किया गया है। मनुष्य की सात्विकता और आत्म-अनुशासन भी क्रोध से मुक्ति में उसकी सहायता करते हैं, जिसे कथा में विभीषण और जाम्बवान् नामक पात्रों द्वारा प्रदत्त सहायता के रूप में दर्शाया गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि सामान्य मनुष्य जहाँ संस्कार रूप धारण कर चुके अपने ही क्रोध के आधीन होकर असहाय और पीड़ित बना रहता है, वहीं आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य संस्कार रूप धारण कर चुके अपने ही क्रोध से कभी तो साक्षी होकर मुक्त हो जाता है और कभी आत्म-गुणों को उपयोग में लाकर स्वस्थ हो जाता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Observation and Core Qualities of Soul protect a person from his own Anger as described in the story of Indrajit

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yudhhakāṇḍa, chapters 51 to 74), there is a story of Indrajit which says that Rāvaṇa became worried when his prominent warriors were killed in the battle. His son Indrajit consoled him and proceeded to fight. He took his weapon–Brahmāstra and started showering arrows on Vānaras as well as on Rāma and Lakṣmaṇa. Facing his arrows Rāma with Lakṣmaṇa decided to lie down on earth pretending as if they are dead. As a result Indrajit returned to Laṅkāpurī assuming them to be dead.

In such a situation, Vānaras started getting worried but Vibhīṣaṇa consoled them and told that they are alive. Now Jāmbavana advised Hanumāna to go to Himālaya and bring the medicines to cure them. Hanumāna reached Himālaya and brought the mountain of medicines as he could not recognize the exact medicines. As soon as the medicine was given, both Rāma and Lakṣmaṇa along with Vānaras got cured. Now Hanumāna placed back the mountain of medicines on Himālaya.

The story is symbolic and depicts that a Self-Knowledged person is also bound with the Saṁskāra of Anger which props up and tries to affect him but a Self-Knowledged person overpowers it in many ways.

Some times when this Saṁskāra of Anger manifests in the form of waste, futile thoughts, a Self-Knowledged person immediately overpowers it by his knowledge. This is symbolized as the bondage of Rāma and Lakṣmaṇa by Nāgapāśa and liberation by Garuḍa in the previous story.

The present story says that sometimes, when this Saṁskāra of Anger attacks in the form of stupidity, a Self-Knowledged person immediately becomes attentive, does not fight with it but observes it continuously. This continuous observation makes the Anger disappear which is symbolized as the return of Indrajit to Laṅkāpurī.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The story again tells that sometimes when this Saṁskāra of Anger hurts, a Self-Knowledged person, with the help of his wisdom, immediately uses his innate powers of Peace, Power, Purity, Love and Bliss and gets cured. This is symbolized as bringing of the medicines by Hanumāna from Himālaya and curing of Rāma, Lakṣmaṇa and Vānaras.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३७. कुम्भकर्ण कथा

(मोह नामक विकार का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कुम्भकर्ण नामक पात्र के माध्यम से मोह नामक विकार का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड में (सर्ग 60 से 67 तक) कुम्भकर्ण नामक पात्र का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

कुम्भकर्ण विश्रवा मुनि का पुत्र तथा रावण का छोटा भाई है। वह बहुत शक्तिशाली है और इन्द्र का शत्रु है। उसने नन्दनवन की सात अप्सराओं, इन्द्र के दस अनुचरों, ऋषियों तथा प्रजाजनों को भी खा लिया है। अत: बहुत अधिक भोजन करने के कारण ही उसे ब्रह्मा जी से यह शाप प्राप्त हुआ है कि वह ६, ७, ८ अथवा ९ महीने तक सोता रहे और केवल एक दिन के लिये जागे। अंगद, हनुमान, सुग्रीव तथा लक्ष्मण जैसे योद्धा भी कुम्भकर्ण का वध नहीं कर सके। केवल राम ने ही कुम्भकर्ण के एक-एक अंग को काटकर उसका वध किया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कतिपय बिन्दुओं के आधार पर कुम्भकर्ण नामक पात्र मोह नामक विकार का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है। वे बिन्दु निम्नलिखित हैं–

१. कुम्भकर्ण को विश्रवा का पुत्र कहकर मोह की उत्पत्ति के कारक तत्त्व की ओर संकेत किया गया है–

विश्रवा शब्द वि उपसर्ग के साथ श्रव शब्द का योग होने से बना है। श्रव शब्द का अर्थ है– इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त हुआ ज्ञान। मनुष्य को प्राप्त हुई ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों का यह स्वभाव हैं कि वे बाहर विद्यमान विषयों की ओर गति करती हैं। अत: बाह्य गति होने से इन्द्रियों द्वारा प्राप्त हुए ज्ञान को बहिर्ज्ञान कहा जा सकता है। बाहर की ओर गति करने के कारण इन्द्रियाँ जब केवल शरीर को देखती हैं, आत्मा को नहीं– तब इन्द्रियों से प्राप्त हुए इस शरीर-ज्ञान को ही विश्रवा कहा जाता है। यह मात्र शरीर का ज्ञान मनुष्य को पहले तो शरीर का अभिमानी (देहाभिमानी) बनाता है, जिसे कथा में रावण नाम पात्र के रूप में चित्रित किया गया है तथा फिर 'मैं' और 'मेरा' रूप मोह को पैदा कर देता है, जिसे कुम्भकर्ण नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

चूँकि इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त हुए इस शरीर के ज्ञान-से शरीर-अभिमान (देहाभिमान) रूप रावण पहले उत्पन्न होता है तथा मोह रूपी कुम्भकर्ण बाद में, इसलिए कथा में कुम्भकर्ण को विश्रवा मुनि के पुत्र तथा रावण के छोटे भाई के रूप में चित्रित किया गया है।

२. कथा में कुम्भकर्ण को इन्द्र का शत्रु कहा गया है–

पौराणिक साहित्य में इन्द्र शब्द का प्रयोग श्रेष्ठ मन के लिए भी किया गया है और अश्रेष्ठ (दूषित) मन के लिए भी।

प्रस्तुत संदर्भ में इन्द्र शब्द इन्द्रियों के अधिपति श्रेष्ठ मन का वाचक है। श्रेष्ठ मन के भीतर शुद्धता, शान्ति, सहयोग, स्वीकार, सेवा, समर्पण तथा स्थिरता आदि जो श्रेष्ठ गुण विद्यमान होते हैं, उन सब गुणों को यह 'मोह' नामक विकार ढ़क देता है, इसीलिए कथा में कुम्भकर्ण को इन्द्र के शत्रु के रूप में इंगित किया गया है। उपर्युक्त वर्णित गुणों के ढ़क जाने पर उनके आश्रित अन्य अनेक गुण भी विनष्ट हो जाते हैं, जिसे कथा में कुम्भकर्ण द्वारा प्रजाजनों को खा जाने के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा में कहा गया है कि कुम्भकर्ण ने नन्दनवन की सात अप्सराओं, देवराज इन्द्र के दस अनुचरों तथा बहुत से ऋषियों एवं मनुष्यों को खा लिया है।

इस कथन का तात्पर्य भी यही है कि मोह नामक विकार सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप नन्दनवन की सात अप्सराओं को (गुणों को) जीवन में अभिव्यक्त नहीं होने देता। दसों इन्द्रियों के शुद्धतम स्वरूप अर्थात् देवराज इन्द्र के दसों अनुचरों को यह विनष्ट कर देता है तथा मन में उत्पन्न हुए श्रेष्ठ विचार रूप ऋषि भी मोह की उपस्थिति में नष्ट-प्राय हो जाते हैं। परिवार, समाज, देश तथा विश्व में व्याप्त हुए समस्त भ्रष्टाचार का आधार यह मोह (मैं तथा मेरा) नामक विकार ही होता है। अतः रामकथा में कुम्भकर्ण की प्रबलता का विस्तृत वर्णन इसी तथ्य को संपुष्ट करता है।

३. कुम्भकर्ण को ब्रह्मा जी से यह शाप प्राप्त हुआ है कि वह ६, ७, ८ या ९ महीने सोता रहे तथा केवल एक दिन जागे–

पौराणिक साहित्य में शाप शब्द अवश्य भवितव्यता अर्थात् अवश्य घटित होने को इंगित करता है। यहाँ यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि चार युगों वाले विराट कालचक्र के अधिकांश भाग में या तो यह मोह नामक विकार पूर्णतः प्रसुप्त

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

स्थिति में विद्यमान रहता है अथवा प्रसुप्त सी स्थिति में रहकर मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुँचाता। केवल कलियुग के अत्यल्प अन्तिम भाग में शरीर-चेतना के प्रबल हो जाने पर शरीर-ज्ञान से उत्पन्न हुआ यह मोह नामक विकार जाग्रत (क्रियाशील) हो जाता है और विकराल रूप को धारण करता हुआ मनुष्य को बहुत हानि पहुँचाता है।

४. राम द्वारा ही कुम्भकर्ण का विनाश सम्भव है–

कथा में कहा गया है कि अंगद, हनुमान, सुग्रीव, अन्य वानर-वीर तथा लक्ष्मण जैसे योद्धा भी जब कुम्भकर्ण का विनाश नहीं कर सके, तब राम ने ही कुम्भकर्ण के एक-एक अंग को काटकर (पहले हाथ काटे, फिर पैर काटे तथा अन्त में मस्तक को काटा) अन्ततः उसका विनाश किया।

प्रस्तुत कथन द्वारा यह स्पष्ट संकेत किया गया है कि देह-ज्ञान (विश्रवा) से उत्पन्न हुए मोह रूप प्रबल विकार को समाप्त करने में मनुष्य का स्वस्थ, शुद्ध मन (अंगद), विवेक या प्रज्ञा (हनुमान), श्रेष्ठ ज्ञान (सुग्रीव), ज्ञान की विभिन्न शक्तियाँ (वानर वीर), तथा संकल्प-शक्ति अर्थात् संकल्पों की रचयिता शक्ति (लक्ष्मण) भी समर्थ नहीं है। केवल आत्म-ज्ञान (राम) द्वारा ही देह-ज्ञान से उत्पन्न हुए मोह का विनाश सम्भव है अर्थात् शरीर को ही सत्य समझकर शरीर से सम्बन्ध रखने वाले जिन व्यक्तियों तथा वस्तुओं से मनुष्य दृढ़तापूर्वक बंध जाता है, उस सुदृढ़ बन्धन से छूटने का एकमात्र उपाय आत्म-ज्ञान ही है। <मैं आत्म-स्वरूप हूँ तथा मेरे समान अन्य सब मनुष्य भी आत्म-स्वरूप ही हैं>- इस आत्म-ज्ञान में स्थित होकर ही मनुष्य धीरे-धीरे मोह के पार जा पाता है। कथा में राम द्वारा कुम्भकर्ण के एक-एक अंग को काटना कहकर यही संकेत किया गया है कि मोह का विनाश धीरे-धीरे होता है, एकदम नहीं।

५. कुम्भकर्ण शब्द भी मोह रूप अर्थ को इंगित करता है–

कुम्भकर्ण शब्द कुम्भ और कर्ण नामक दो शब्दों के योग से बना है। कुम्भ शब्द मन-बुद्धि का वाचक है। इस मन-बुद्धि रूपी कुम्भ को ही आध्यात्मिक साधना द्वारा पकाकर अर्थात् शुद्ध, श्रेष्ठ बनाकर इस योग्य बनाया जाता है कि यह कुम्भ अपने भीतर आत्म-विचार (अर्थात् मैं चैतन्य शक्ति आत्मा हूँ– इस विचार) को धारण कर सके।

कर्ण शब्द कण शब्द का ही प्रच्छन्न (छिपा हुआ) स्वरूप प्रतीत होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कण शब्द कराहना, चिल्लाना अथवा शब्द करना अर्थ वाली कण् धातु से बना है। इस प्रकार कुम्भकर्ण शब्द ऐसे मन-बुद्धि को इंगित करता है, जो साधना द्वारा पका हुआ नहीं है। अतः इसमें अशान्ति है, शोर है, व्यथा है। मोह नामक विकार मनुष्य को व्यथित करता है, अशान्त बनाता है– अतः कुम्भकर्ण नामक पात्र यहाँ मोह नामक विकार का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Kumbhakarṇa is a personification of Delusion

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapters 60-67), there is a detailed description of Kumbhakarṇa. It is said that he is a son of Viśravā Muni and younger brother of Rāvaṇa. He is very powerful and an enemy of Indra. As he eats too much, he got a curse from Brahmā to sleep for 6 to 9 months and awaking only for one day. Aṅgada, Hanumāna, Sugrīva and Lakṣmaṇa could not kill him. Only Rāma killed him by cutting his body into pieces.

The above description is symbolic and describes about Delusion. One can find out some important points about this Delusion through this story.

1. Delusion arises when a person forgets his Real Identity – The Being and takes himself as a body. This is symbolized as taking birth of Kumbhakarṇa from Viśravā Muni.

2. Delusion arises along with Ego symbolized as Rāvaṇa. When a person thinks himself a body, he first gets attached to his roles and designations and then a strong thought of Me and Mine arises.

This Me and Mine is a Delusion in which a person gets entangled strongly. As this Delusion arises only after ego, therefore this fact is symbolized as saying that Kumbhakarṇa is the younger brother of Rāvaṇa.

3. This Delusion is very powerful and takes a person into the realm of impurities such as selfishness and greed etc., therefore this Delusion is the enemy of Purity symbolizing Kumbhakarṇa as the enemy of Indra.

4. This Delusion destroys all the virtues, therefore Kumbhakarṇa is remembered as a great consumer of food i.e. virtues.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

5. This Delusion arises only in the last part of Kaliyuga when a person is in Body-Consciousness strongly. In soul-consciouness, either there is no Delusion or this Delusion remains dormant. This is symbolized as the sleeping of Kumbhakarṇa for a long time i.e. six to nine months and waking up only for one day.

6. This Delusion is too deep, therefore neither a healthy mind (Aṅgada), Knowledge (Sugrīva) or Wisdom (Hanumāna) nor Creative Power of Thoughts (Lakṣmaṇa) are able to destroy it. Delusion is totally destroyed only when a person knows his own Real Self symbolized as Rāma, the Killer of Kumbhakarṇa.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३८. इन्द्रजित्-वध कथा

(क्रोध नामक विकार के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
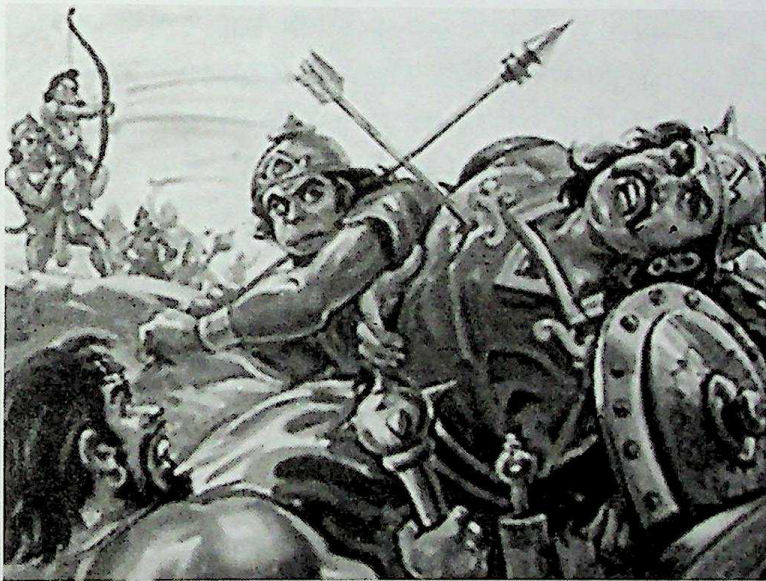
इन्द्रजित्-वध के माध्यम से क्रोध के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड (सर्ग ८० से ९० तक) में इन्द्रजित् के वध का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

सुग्रीव की आज्ञा से वानर-वीरों ने जब पुनः लंकापुरी पर आक्रमण किया, तब रावण ने कुम्भ, निकुम्भ, यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजंघ तथा कम्पन को युद्ध के लिए भेजा परन्तु वानर-वीरों द्वारा उन सभी का वध कर दिया गया। रावण की आज्ञा से मकराक्ष भी युद्ध के लिए निकला परन्तु राम ने मकराक्ष का भी वध कर दिया। वीरों के वध से कुपित हुए रावण ने अब इन्द्रजित् को युद्ध के लिए जाने की आज्ञा दी। इन्द्रजित् ने मायामयी सीता का निर्माण किया तथा उसे रथ पर बैठाकर वह युद्धस्थल में आया। वहाँ उसने जब मायामयी सीता का वध कर दिया, तब उस वध को सीता का वध समझकर राम, लक्ष्मण तथा समस्त वानर शोकमग्न हो गए परन्तु विभीषण ने सीता के जीवित होने के प्रति सबको आश्वस्त किया क्योंकि वे इन्द्रजित् की माया का रहस्य जानते थे। विभीषण ने कहा कि इस समय इन्द्रजित् निकुम्भिला मन्दिर में वट-वृक्ष के नीचे पहुँचकर होम करेगा और होम को पूरा करके जब वह पुनः युद्धभूमि में आएगा, तब किसी के लिए भी उसे देखना और मारना असम्भव हो जाएगा। अतः इन्द्रजित् को मारने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक होगा कि उसे तत्काल उस होमकर्म से हटा दिया जाए। विभीषण के अनुरोध पर राम ने इन्द्रजित् के वध के लिए लक्ष्मण को जाने की आज्ञा दी और लक्ष्मण सेना सहित सुग्रीव, हनुमान तथा जाम्बवान् को साथ लेकर निकुम्भिला मन्दिर के निकट पहुँच गए।

इन्द्रजित् बड़ा ही मायावी, अधर्मी, क्रूर कर्म करने वाला और सम्पूर्ण लोकों के लिए भयंकर था। अतः इन्द्रजित् के वध की प्रबल इच्छा से जब लक्ष्मण हनुमान की पीठ पर आरूढ़ हो गए, तब दोनों में महाभयंकर संग्राम हुआ। इन्द्रजित् के सारथी और घोड़े मार ड़ाले गए। परन्तु इन्द्रजित् दूसरे रथ पर आरूढ़ होकर पुनः युद्धस्थल में आ पहुँचा। लक्ष्मण द्वारा सारथी के और विभीषण द्वारा घोड़ों के पुनः मारे जाने पर भी इन्द्रजित् भयंकर युद्ध करता रहा। अन्ततः लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

नामक बाण को चलाकर इन्द्रजित् का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। इन्द्रजित् के धराशायी हो जाने पर सारे संसार की अधिकांश पीड़ा नष्ट हो गई। ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, अप्सराएँ – सभी प्रसन्न हो उठे। जल स्वच्छ हो गया और आकाश भी निर्मल दिखाई देने लगा।

कथा की प्रतीकात्मकता एवं तात्पर्य

प्रस्तुत कथा के माध्यम से क्रोध के आत्यन्तिक स्वरूप, उद्गम एवं विनाश के उपायों का चित्रण निम्नलिखित रूप में किया गया है–

१. क्रोध का आत्यन्तिक स्वरूप–

इन्द्रजित् द्वारा मायामयी सीता का निर्माण और वध कहकर वास्तव में क्रोध रूप विकार के उस अन्तिम एवं तीक्ष्ण स्वरूप की ओर संकेत किया गया है, जो क्रोध के विनाश के लिए प्रमुख रूप से कारणभूत हो जाता है। आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य (राम) की सबसे बड़ी शक्ति है– उसकी पवित्र-सोच, जिसे रामकथा में सीता नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। सोच के पवित्र होने पर वचन और कर्म स्वयमेव पवित्र हो जाते हैं। परन्तु क्रोध के वशीभूत हुआ आत्म-ज्ञानी मनुष्य भी जब कभी इस पवित्र-सोच को अपनी ही किसी अपवित्र सोच से ढ़क देता है, तब अपवित्र सोच से ढ़क जाने के कारण पवित्र-सोच (सीता) का वध हुआ समझकर वह दुःखी हो जाता है। उदाहरण के लिए– क्रोध के वशीभूत हुआ आत्म-ज्ञानी मनुष्य जब कभी ऐसा सोच लेता है कि मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं अथवा मुझसे कभी बात मत करना आदि-आदि, तब वह मानो मायामयी सीता (अपवित्र सोच) का ही निर्माण करता है क्योंकि उसकी वह सोच सत्य नहीं होती और क्षणभर बाद वह स्वयं ही उस असत्य सोच का वध भी कर देता है। क्रोध के आधीन होकर इस प्रकार से अपवित्र सोच के निर्माण और वध से आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) निश्चित् रूप से दुःखी होता है और क्रोध के समूल विनाश के लिए तत्पर भी।

२. क्रोध का मूल उद्गम आशाएँ, अपेक्षाएँ अथवा कामनाएँ हैं–

क्रोध के मूल उद्गम का संकेत करते हुए कथा में कहा गया है कि क्रोध का मूल उद्गम मनुष्य की अपनी ही आशाएँ, अपेक्षाएँ अथवा कामनाएँ होती हैं, जो पूर्ण न होने की स्थिति में क्रोध को उत्पन्न करती हैं। इन आशाओं, अपेक्षाओं अथवा कामनाओं को ही कथा में वट-वृक्ष कहकर संकेतित किया गया है। जैसे वट-वृक्ष

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

की शाखाएँ पृथिवी में घुसकर मूलरूप (जड़रूप) हो जाती हैं, उसी प्रकार आशाएँ, अपेक्षाएँ, कामनाएँ भी मन-बुद्धि रूपी पृथिवी में घुसकर मूलरूप को धारण कर लेती हैं और फिर उन्हें आसानी से काटना सम्भव नहीं हो पाता।

शरीर के अभिमान में रहकर अनेक प्रकार की भूमिकाओं (roles, relations) अथवा पदों (designations) का निर्वाह करते हुए जब मनुष्य उन्हें ही अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेता है, तब नाना प्रकार की आशाओं, अपेक्षाओं अथवा कामनाओं से संयुक्त हो जाता है। उन आशाओं, अपेक्षाओं अथवा कामनाओं की बार-बार और निरन्तर आवृत्ति उन्हें मजबूत बना देती है और फिर उनके पूर्ण न होने की स्थिति में मनुष्य को क्रोध आ जाता है। वट-वृक्ष के नीचे इन्द्रजित् के होमकर्म के रूप में इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

इन्द्रजित् को होमकर्म से हटाने की अनिवार्यता कहकर यह संकेत किया गया है कि आशाओं, अपेक्षाओं अथवा कामनाओं की अपूर्ति से उत्पन्न होने वाले क्रोध को संस्कार (आदत) बनने से पहले ही समाप्त कर देना चाहिए। एक बार संस्कार बन जाने पर फिर इसका विनाश करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

कथा में निकुम्भिला मन्दिर के रूप में यह संकेत किया गया है कि शरीर के अभिमान में रहने वाला मनुष्य नाना प्रकार की आशाओं, अपेक्षाओं अथवा कामनाओं के भीतर इतना अधिक उलझ जाता है कि उसे यह पता ही नहीं चल पाता कि क्रोध नामक विकार कब और कैसे चुपचाप उसके अपने मन के भीतर प्रविष्ट हो चुका है। निकुम्भिला शब्द नि उपसर्ग पूर्वक कुम्भिल शब्द के योग से बना है। मन्दिर शब्द मन का वाचक है और कुम्भिल का अर्थ है– सेंध लगाकर घर में घुसने वाला चोर। अत: नि उपसर्ग का योग होने पर निकुम्भिला मन्दिर का अर्थ हो जाता है– सेंध लगाकर मन रूपी घर में घुस जाने वाला क्रोध रूपी विशिष्ट चोर।

३. क्रोध के विनाश के लिए स्वयं की विचार-शक्ति अथवा संकल्प शक्ति (स्वयं का उत्तरदायित्व) रूप लक्ष्मण की अनिवार्यता–

क्रोध के विनाश में सबसे बड़ी बाधा है– क्रोध के लिए स्वयं को जिम्मेदार न मानकर दूसरों को ही जिम्मेदार ठहराना। अपने क्रोध के लिए दूसरों को जिम्मेदार मानकर क्रोध को कभी भी समाप्त नहीं किया जा सकता। अत: मनुष्य के लिए यह समझना आवश्यक हो जाता है कि कोई परिस्थिति अथवा कोई व्यक्ति क्रोध की उत्पत्ति में उद्दीपन रूप तो हो सकता है, परन्तु क्रोध को उत्पन्न नहीं कर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

सकता। क्रोध की उत्पत्ति मनुष्य स्वयं करता है क्योंकि वही अपने प्रत्येक विचार का निर्माता है। कोई भी मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य के मन के भीतर प्रविष्ट होकर उसके विचारों का निर्माण नहीं करता है। अतः क्रोध की उत्पत्ति के लिए स्वयं को जिम्मेदार मान लेने पर क्रोध को विनष्ट करना बहुत सरल हो जाता है क्योंकि अब वह अपनी इच्छा के अनुसार जब चाहे, जितनी देर बाद चाहे, अपने ही शान्ति रूप अस्त्र का उपयोग करके स्वयं को क्रोध से मुक्त कर सकता है। इसी तथ्य को कथा में लक्ष्मण द्वारा ऐन्द्रास्त्र (शान्ति रूप अस्त्र) की सहायता से इन्द्रजित् के वध के रूप में संकेतित किया गया है।

लक्ष्मण का अर्थ है— आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य का इस ज्ञान में स्थित होना कि <मैं आत्मा ही मन रूप होकर अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता हूँ, अतः जिस समय जैसा जाहूँ, वैसा विचार रच सकता हूँ>। स्वयं को अपने प्रत्येक विचार का निर्माता-नियन्ता जानने वाला मनुष्य ही इस उत्तरदायित्व का वहन करने में समर्थ होता है कि क्रोध रूप विकार का निर्माण भी मैंने ही किया है और अब विनाश भी मैं ही कर सकता हूँ।

४. क्रोध के विनाश के लिए ज्ञान रूप सुग्रीव की आवश्यकता—

चूँकि अपनी ही आशाएँ, अपेक्षाएँ अथवा कामनाएँ पूर्ण न होने की स्थिति में क्रोध को उत्पन्न करती हैं, अतः आशाओं, अपेक्षाओं, कामनाओं से अलिप्त होने के लिए ज्ञान में स्थित होना आवश्यक है अर्थात् यह जानना-समझना अति आवश्यक है कि आत्मा के तल पर सभी मनुष्य एक समान होते हुए भी शरीर के तल पर कोई भी मनुष्य एक समान नहीं है। जन्म-जन्मान्तरों की यात्रा में अर्जित किये हुए संस्कारों की भिन्नता के कारण प्रत्येक मनुष्य की सोच, उसका वचन अथवा उसका कर्म (मन-वचन-कर्म) बिल्कुल अलग-अलग होता है। अतः अज्ञानता के कारण इस भिन्नता को ध्यान में न रखते हुए जब मनुष्य इस आशा, अपेक्षा अथवा कामना में जीने लगता है कि दूसरा मनुष्य वैसा ही सोचे, बोले अथवा करे, जैसा मैं सोचता हूँ, बोलता हूँ अथवा करता हूँ, तब ही मन में क्रोध का आगमन होता है क्योंकि आशा, अपेक्षा पूरी नहीं होने पर पहले तो वह भीतर ही भीतर चिड़चिड़ेपन के अधीन होता है और फिर धीरे-धीरे क्रोध से युक्त हो जाता है। इस प्रकार ज्ञान का अभाव जहाँ एक ओर क्रोध की उत्पत्ति में कारणभूत हो जाता है, वहीं ज्ञान की उपस्थिति क्रोध के विनाश में सहायक भी हो जाती है। इन्द्रजित् के विनाश में सुग्रीव नामक पात्र के सहायक होने के रूप में इसी तथ्य को संकेतित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

५. क्रोध के विनाश के लिए प्रज्ञा (ज्ञान और आचरण का समन्वित स्वरूप) रूप हनुमान की आवश्यकता—

क्रोध के विनाश में केवल ज्ञान पर्याप्त नहीं है। ज्ञान और आचरण का समन्वय अर्थात् प्रज्ञा भी आवश्यक है। कथा संकेत करती है कि मनुष्य की समझ कितनी भी श्रेष्ठ हो परन्तु इस श्रेष्ठ समझ को जब तक मनुष्य व्यवहार में या आचरण में नहीं लाता, तब तक उस श्रेष्ठ समझ से अपेक्षित परिणाम की आशा नहीं की जा सकती। अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि आचरण में लाए बिना श्रेष्ठ ज्ञान अथवा समझ का कुछ भी परिणाम नहीं आता। मनुष्य की जो प्रज्ञा ज्ञान की एक-एक बूंद को आचरण में उतारती है, उसी प्रज्ञा को रामकथा में हनुमान नामक पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। क्रोध रूप विकार के विनाश में ज्ञान (सुग्रीव) जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही महत्त्वपूर्ण है— उस ज्ञान को व्यवहार में लाने वाली अपनी प्रज्ञा अर्थात् हनुमान। इसीलिए कथा में इन्द्रजित् के विनाश में हनुमान नामक पात्र को भी एक सहयोगी के रूप में दर्शाया गया है।

६. क्रोध के विनाश के लिए आत्म-अनुशासन रूप जाम्बवान् की आवश्यकता—

जैसा कि पूर्व लेख में स्पष्ट किया जा चुका है, जाम्बवान् नामक पात्र आत्म-अनुशासन को संकेतित करता है। इन्द्रजित् रूप क्रोध के विनाश में जाम्बवान् नामक पात्र को सहायक के रूप में उपस्थित करके यह संकेत किया गया है कि क्रोध रूप विकार को समाप्त करने में मनुष्य का आत्म-अनुशासन भी बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि उद्दीपन के रूप में सामने आई हुई परिस्थिति अथवा व्यक्ति चाहे कैसे भी विषम हों, मनुष्य का अपना सभ्य आचरण भी क्रोध के विनाश में सहयोगी हो जाता है। किसी के असभ्य आचरण के प्रत्युत्तर-स्वरूप यदि क्रोध ही किया जाएगा, तब वह क्रोध, क्रोध की अग्नि को अधिकाधिक रूप से प्रज्वलित ही करेगा। जबकि इसके विपरीत प्रयत्नपूर्वक धारण किंये गए संयम से क्रोध को निश्चितरूपेण कमजोर किया जा सकेगा।

७. क्रोध के विनाश के लिए सात्त्विक गुण रूप विभीषण की आवश्यकता—

रामकथा में विभीषण नामक पात्र को सात्त्विक गुण के प्रतिनिधि रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह सात्त्विक गुण मनुष्य के मन में देहाभिमान (ego) की अवस्था में भी विद्यमान होता है और आत्माभिमान (आत्म-ज्ञान) की अवस्था में भी।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देहाभिमान की अवस्था में विद्यमान यह सात्विक गुण रजस तथा तमस गुणों के सम्बन्ध-सम्पर्क में रहता ही है और इसी साहचर्य के कारण यह तमस गुण को तथा तमस गुण से उत्पन्न हुए क्रोध के स्वभाव को भलीभाँति पहचानता है। इसीलिये क्रोध की अवस्था में यही सात्विक गुण यथायोग्य दिशा-निर्देश देकर मनुष्य की अत्यन्त सहायता करता है। विभीषण द्वारा इन्द्रजित् को वट-वृक्ष के नीचे पहुँचकर होम न करने देने के निर्देश के रूप में इसी तथ्य को व्यक्त किया गया है।

८. क्रोध के विनाश के लिए मान्यताओं के विनाश की आवश्यकता–

अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान अनेक मान्यताएँ भी क्रोध के विनाश में बाधक-स्वरूप होती हैं। अतः क्रोध के विनाश के लिये उनका विनाश भी अनिवार्य हो जाता है। कथा संकेत करती है कि अवचेतन मन (चित्त) के भीतर विद्यमान यह मान्यता कि अमुक-अमुक स्थिति में क्रोध का आना तो सहज और स्वाभाविक है, क्रोध जैसे विकार को कभी मरने नहीं देती। क्रोध को सहज और स्वाभाविक कहकर मनुष्य न केवल क्रोध रूप विकार को उचित ठहरा देता है, अपितु प्रत्येक परिस्थिति में शान्त रहने की सम्भावना को भी विनष्ट कर देता है। चूँकि यह मान्यता क्रोध को बचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है, इसलिए इसे कथा में इन्द्रजित् के रथ के सारथि के रूप में चित्रित किया गया है।

इसी प्रकार मनुष्य के अवचेतन मन (चित्त) में ये मान्यताएँ भी अत्यन्त दृढ़ीभूत रूप से विद्यमान हो गई हैं कि क्रोध से ही काम होता है, क्रोध करने से काम जल्दी होता है, क्रोध से लोग डरते हैं अथवा क्रोध से लोग वश में रहते हैं। ये मान्यताएँ भी क्रोध को बचाती हैं, कभी मरने नहीं देती। इन्द्रजित् के रथ में जुते हुए चार घोड़ों के रूप में इन्हीं मान्यताओं की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है और इनको (रथ के सारथि और घोड़ों को) मारना भी इन्द्रजित् रूप क्रोध के विनाश में सहयोगी हो जाता है। क्रोध एक नकारात्मक ऊर्जा है, जो कभी भी सकारात्मक परिणाम नहीं ला सकती। अतः क्रोध के विनाश के लिए इन सभी मान्यताओं से स्वयं को मुक्त करना आवश्यक है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Destruction of Anger as described through killing of Indrajit

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapters 80 to 90), there is a story of Indrajit related to his killing. It is said that Indrajit – son of Rāvaṇa was very powerful. Rāma and his troop were so much injured by him that they now decided to kill him.

Vibhīṣaṇa advised Rāma first to deter him from performing sacrifice (yajña) in the temple of Nikumbhilā under fig (Vaṭa) tree. Vibhīṣaṇa also told Rāma that this sacrifice (Yajña) will make him strong and no one will be able to kill him after successful completion of this sacrifice.

Hearing this Rāma directed Lakṣmaṇa along with Sugrīva, Hanumāna and Jāmbvana to deter him from performing that sacrifice (Yajña) and to kill him. A terrible fight was fought but at last with the help of these brave soldiers Lakṣmaṇa killed Indrajit by the weapon named Aindrāstra.

It is also said that Indrajit had a chariot driven by a charioteer and equipped with four horses. After killing of charioteer and four horses, Indrajit lost his power and ultimately was killed by Lakṣmaṇa. It is also said in the story that Indrajit created a false (illusionary) Sītā (Māyā Sītā), brought her in the battle field and killed her. Rāma with Vānaras became very sad but Vibhīṣaṇa consoled them as he knew the secret of this illusion created by Indrajit.

The story is symbolic and describes below the ways to destroy 'Anger'–

1. First of all the story says that one's own Expectations or Desires in any form are the root cause of Anger. When these expectations or desires are not fulfilled, Anger arises. Therefore to destroy Anger first and foremost way is to come out of these expectations or desires symbolized as avoiding Indrajit to go to Vaṭa tree.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

2. One's own *Sāttvika* Mind is very helpful in destroying Anger as *Sāttvika* Mind only knows the root cause of Anger. When this *Sāttvika* Mind lives with *tamas* for a long long time in the journey of births and deaths, this long association with *tamas* helps him in knowing all the vices originating from *tamas*. This *Sāttvika* Mind is symbolized as Vibhīṣaṇa who suggested Rāma how to kill Indrajit.

3. One's own Spiritual Knowledge helps in destroying Anger. One should know that everybody is equal on energy i.e Ātma level but is totally different on Body level. One can see that Gross bodies are never similar, they are different. On Thought level also everybody thinks differently e.g. one likes white, other likes blue, one likes sweets other likes salty. It means that everybody's likes and dislikes are different. On Causal level also everybody is having his own *Saṁskāras* (Habits). One likes truth, other likes lie, one likes virtue, other likes vices. This Knowledge helps a person to come out of Anger when he accepts this difference and properly knows that expectations are seldom fulfilled while living in any kind of relationship. This Knowledge is symbolized as Sugrīva helping Lakṣmaṇa in killing of Indrajit.

4. The story says that knowledge is good but not enough. Implementation of the above Knowledge is a Must. It is a common fact that everybody may have a wide information and may know perfectly but he becomes very weak in its Implementation because Implementation needs Power. Therefore Knowledge and its Implementation both are required. The faculty which implements knowledge into behaviour is called Wisdom. This Wisdow is symbolized as Hanumāna, a wonderful help in killing Anger.

5. One's own Self-Discipline also helps in controlling Anger. This Self-Discipline may be in thinking, speaking or behaving. Anger is an emotion and an emotion can never be controlled by any other emotion. Therefore an antidote like stability or quietness helps in controlling Anger. This is symbolized as

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Jāmbvana, helping Lakṣmaṇa in killing Indrajit.

6. The story indicates that Beliefs also play an important role in Anger. Beliefs have power either in strengthening Anger or in destroying Anger. If a person believes that Anger is normal and desirable, then no question arises to destroy it. A person can only try to destroy it when he believes it as Abnormal. In the same way, if a person believes that Anger is a motivator or people are controlled only by Anger or work is done easily by Anger or Anger gives respect, then Anger can never be destroyed. Now Anger is protected and its antidote Peace can never be used in life and is ignored totally. This is symbolized as the charioteer and four horses of the chariot which protect Indrajit but the assacination of the above weakens Indrajit.

7. The story emphasizes that Knowing One's Self, responsible for his own Anger, liberates him from Anger. One should know that he himself is the creator of his Anger as he himself is the creator of his all other thoughts. No one can creates others thoughts. Any situation or a person definitely may stimulate creating Anger in other's mind but ultimately the person himself is the creator of his Anger. If a person blames a situation or a person for his Anger, Anger can never be destroyed. On the contrary, if a person takes responsibility for his Anger, he tries his best in different ways to finish it and at last succeeds also by using the weapon of Peace, Power and Purity. This Self-Responsibilty is symbolized as Lakshmana, the main faculty in killing Indrajit by using his Weapon–Aindrāstra.

8. The story also depicts the reason why a Self-Knowledged person is very keen to destroy his Anger. It says that a Self-Knowledged person always likes purity and any kind of impurity is never liked by him. As Anger creates impure thoughts, he never feels himself comfortable. He tries his best and destroys Anger.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३९. राम द्वारा रावण-वध कथा

(आत्म-ज्ञान द्वारा देहाभिमान के विनाश का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
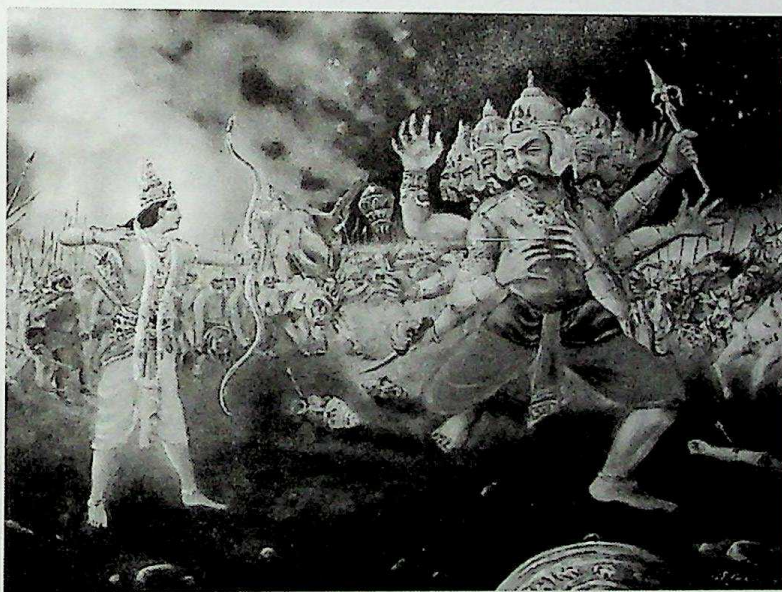
राम द्वारा रावण-वध के माध्यम से आत्म-ज्ञान द्वारा देहाभिमान के विनाश का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड में (सर्ग ९९, १००) राम-रावण के युद्ध तथा राम द्वारा रावण के वध की कथा विस्तारपूर्वक वर्णित है। कथा का संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

राम और उनके वानर सैनिकों द्वारा जब रावण के सभी महाबली योद्धाओं का वध कर दिया गया, तब रावण क्रोध में भरकर स्वयं युद्धभूमि में आया और राम के साथ भयानक युद्ध करने लगा। उसने अपने तामस एवं आसुर अस्त्रों के द्वारा राम को मारने का यथेष्ट प्रयास किया परन्तु राम ने अपने आग्नेय आदि अस्त्रों का प्रयोग करते हुए उसके सभी अस्त्रों को विनष्ट कर दिया। रावण ने मयासुर द्वारा निर्मित शक्ति का प्रयोग करते हुए विंभीषण को मारने का भी प्रयास किया परन्तु लक्ष्मण ने आगे आकर विभीषण को बचा लिया, जिससे वह शक्ति लक्ष्मण को लगी और वे मूर्च्छित हो गए। परन्तु हनुमान द्वारा तत्काल लाई हुई ओषधि के सुषेण द्वारा प्रयोग से लक्ष्मण की मूर्च्छा दूर हो गई और वे स्वस्थ हो गए। राम और रावण के उस द्वन्द्व युद्ध को देखने के लिए देव, ऋषि, गन्धर्व आदि भी आकाश में आकर खड़े हो गए। देवों ने जब रावण को रथ के ऊपर परन्तु राम को भूमि पर ही खड़ा हुआ देखा, तब वे चिन्तित हुए। अतः देवराज इन्द्र ने अपने चार दिव्य घोड़ों से जुते हुए रथ को सारथि मातलि के साथ राम की सेवा में भेज दिया। रथ पर आरूढ़ हुए दोनों योद्धा राम और रावण जब एक दूसरे के अस्त्रों को काटते रहे, तब युद्ध देखने के लिए आए हुए अगस्त्य मुनि ने भी राम को विजय-प्राप्ति हेतु आदित्य-हृदय-स्तोत्र प्रदान किया।

राम अपने तीक्ष्ण बाण से जब-जब रावण का एक सिर काटते, तब-तब दूसरा नया सिर उत्पन्न हो जाता और इस प्रकार उसके समान तेज वाले सौ सिरों को काट डालने पर भी मस्तकों का अन्त होता नहीं दिखाई दिया। अतः राम और रावण का वह युद्ध जब रात-दिन चलता रहा, तब मातलि ने राम को ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करनें के लिए प्रेरित किया। अब राम ने ब्रह्मास्त्र का स्मरण कर निरन्तर बाण-वर्षा करते हुए रावण के मस्तक को धड़ से अलग कर दिया।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रावण देवों और ऋषियों का विरोधी था। धर्म की सदा जड़ काटता था और उसने इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर आदि चारों लोकपालों को भी परास्त कर दिया था। अत: रावण के मारे जाने पर देवों, सिद्धों, गन्धर्वों, चारणों तथा ऋषियों को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण दिशाएँ प्रसन्न हो गई, आकाश निर्मल हो गया, पृथ्वी का काँपना बंद हो गया, हवा स्वाभाविक गति से चलने लगी तथा सूर्य की प्रभा भी स्थिर हो गई।

कथा की प्रतीकात्मकता

प्रस्तुत कथा प्रतीकात्मक है। अत: कथा के तात्पर्य को समझने के लिए प्रतीकों को समझना उपयोगी है।

१. राम–

अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाने को ही रामकथा में राम नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है अर्थात् जब मनुष्य इस सम्यक् ज्ञान में स्थित हो जाता है कि वह एक शरीर नहीं है, अपितु शरीर रूपी यन्त्र को चलाने वाला, शरीर का स्वामी, सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द से ओतप्रोत, अजर-अमर-अविनाशी, चैतन्य-शक्ति आत्मा है– तब राम कहलाता है।

२. रावण–

अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाने के कारण शरीर को तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं (roles), पदों (designations) तथा छवियों (images) को ही मैं मानकर (यही मैं हूँ– ऐसा मानकर) उनसे गहरा जुड़ाव बना लेना देहाभिमान कहलाता है। अर्थात् जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूलकर यह मानने लगता है कि मैं माँ हूँ, मैं पिता हूँ, मैं भाई हूँ आदि आदि (अर्थात् भूमिकाओं को ही मैं मान लेना), मैं डाक्टर हूँ, मैं इंजीनियर हूँ आदि आदि (अर्थात् पद को ही मैं मान लेना), मैं हिन्दू हूँ, मैं मुस्लिम हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं क्षत्रिय हूँ, मैं अमीर हूँ, मैं गरीब हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं कमजोर हूँ आदि आदि (अर्थात् छवियों को ही मैं मान लेना) और ऐसा मानकर फिर उनसे इतनी आसक्ति भी बना लेता है कि उनके प्रति कही हुई किसी की जरा सी बात उसे आहत कर देती है, तब स्वयं को देहाभिमान में स्थित समझना चाहिए।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

एक शरीर को छोड़ने तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में जब यह देहाभिमान प्रबल होकर संस्कार रूप धारण कर लेता है, तब मनुष्य के मन को विकारों से भरकर दुःखों की ओर ले जाता है। कामना, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, राग, द्वेष, ईर्ष्या, आसक्ति, तुलना, स्पर्द्धा, आलोचना, बदला, घृणा, निन्दा आदि जितने भी विकार हैं– सबका कारण यह देहाभिमान ही होता है।

इस देहाभिमान की स्थिति में सहन-शक्ति अथवा स्वीकार-शक्ति भी मन्द (कमजोर) हो जाती है, जिसे कथा में रावण की पत्नी मन्दोदरी के रूप में चित्रित किया गया है। मन्दोदरी शब्द मन्द और उदरी नामक दो शब्दों के योग से बना है। मन्द का अर्थ है– कमजोर अथवा क्षीण और उदरी का अर्थ है– पेट अर्थात् पाचन वाली। अत: जो कमजोर पाचन वाली है, जो सब कुछ नहीं पचा सकती- वह मन्दोदरी है। अध्यात्म के स्तर पर यह कमजोर पाचन-शक्ति कमजोर सहन-शक्ति (low tolerance power) अथवा कमजोर स्वीकार-शक्ति (low acceptance power) को इंगित करती प्रतीत होती है। पौराणिक साहित्य में लम्बोदर अथवा महोदर जैसे शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है और प्रत्येक शब्द अपने भीतर अपने अर्थ को समाए हुए है। उदाहरण के लिये- विवेक के प्रतिनिधि गणेश को लम्बोदर केवल इसलिये कहा गया है कि विवेक-युक्त की पाचन-शक्ति अर्थात् सहन-शक्ति या स्वीकार-शक्ति बहुत अधिक होती है। इसके विपरीत देहाभिमान की स्थिति में यही पाचन-शक्ति अर्थात् सहन-शक्ति या स्वीकार-शक्ति बहुत मन्द हो जाती है। देहाभिमान में स्थित मनुष्य अपने से श्रेष्ठ को पचा नहीं पाता। श्रेष्ठ को सामने पाकर वह द्वेष अथवा ईर्ष्या आदि से युक्त हो जाता है। अपने से निम्न को भी वह पचा नहीं पाता। निम्न को सामने पाकर वह उसके प्रति अवहेलना अथवा असम्मान से युक्त हो जाता है। बराबर वाले को भी वह पचा नहीं पाता। बराबर वाले को सामने पाकर वह स्पर्धा, प्रतियोगिता और तुलना जैसे विकारों से युक्त हो जाता है।

मन्दोदरी को मय दानव की कन्या कहकर यह संकेत किया गया है कि कमजोर सहन-शक्ति या कमजोर स्वीकार-शक्ति (मन्दोदरी) का कारण मनुष्य का मैं-मैं (मय दानव) अर्थात् अहंकार ही होता है। मन्दोदरी को रावण की पत्नी कहकर भी यही संकेत किया गया है कि कमजोर सहन-शक्ति या कमजोर स्वीकार-शक्ति अर्थात् मन्दोदरी देहाभिमान की स्थिति (रावण) के साथ सदा विद्यमान रहती है। इसके अतिरिक्त मन्दोदरी को इन्द्रजित् (क्रोध) की माता कहकर भी यह संकेत किया गया है कि सहन-शक्ति या स्वीकार-शक्ति की

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मन्दता अर्थात् मन्दोदरी क्रोध नामक विकार (इन्द्रजित्) को सहज रूप से उत्पन्न कर देती है।

रावण शब्द क्रन्दन, चीत्कार, शब्द, ध्वनि या रोना अर्थ वाली रु धातु में णिच् और ल्युट् प्रत्ययों के योग से निर्मित हुआ है और इसकी व्युत्पत्ति रावयति भीषयति सर्वान् इति रावणः अर्थात् जो रुलाता है, के रूप में की गई है।

३. राम और रावण का युद्ध–

राम और रावण के उपर्युक्त वर्णित आध्यात्मिक स्वरूप को समझ लेने पर यह समझना सरल हो जाता है कि राम और रावण का युद्ध कोई बाहरी अर्थात् बाहर लड़ा जाने वाला दो व्यक्तियों का युद्ध नहीं है। यह युद्ध आन्तरिक है। अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचानकर अर्थात् राम बनकर अपने ही उस देहाभिमान रूप विकार से लड़ना है, जो जन्मों-जन्मों की लम्बी यात्रा में संस्कार रूप धारण करके अर्थात् अत्यन्त सुदृढ़ होकर अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हो गया है।

४. राम और रावण के सैनिक–

ज्ञान (आत्म-ज्ञान) से सम्बन्ध रखने वाली सभी ज्ञानात्मक, गुणात्मक तथा सकारात्मक शक्तियों को रामकथा में राम के वानर सैनिकों के रूप में तथा इसके विपरीत अज्ञान (देहाभिमान) से सम्बन्ध रखने वाली सभी विकारात्मक तथा नकारात्मक शक्तियों को रावण के राक्षस सैनिकों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

रामकथा में ज्ञानरूप, गुणरूप, तथा सकारात्मक शक्तियों के अन्तर्गत गज, गवय, गवाक्ष, ऋषभ, गन्धमादन, नील, हनुमान, अंगद, जाम्बवान, सुषेण, वेगदर्शी, शतबलि, केसरी, पनस, अर्क, दरीमुख, प्रजंघ, जम्भ, रभस, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, सानुप्रस्थ, सम्पाति, श्वेत, चण्ड, रम्भ, शरभ, विनत, क्रोधन, हर, धूम्र, दम्भ, संतादन, क्रथन, प्रमाथी, सुमुख, दुर्मुख, ज्योतिर्मुख, हेमकूट, दुर्धर, प्रथु, स्कन्ध, पावकाक्ष, विद्युत्दंष्ट्र, दधिमुख, हरिलोमा तथा सूर्यास्त आदि नामों का उल्लेख किया गया है।

इसके विपरीत अज्ञानरूप, विकाररूप तथा नकारात्मक शक्तियों के अन्तर्गत प्रहस्त, दुर्मुख, वज्रदंष्ट्र, निकुम्भ, वज्रहनु, रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर, अग्निकेतु, रश्मिकेतु, इन्द्रजित्, विरूपाक्ष, धूम्राक्ष, अतिकाय, कुम्भकर्ण, कुम्भ, देवान्तक, नरान्तक, अतिरथ, अकम्पन, शार्दूल, शुक, सारण,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

माल्यवान्, त्रिशिरा, पिशाच, शोणिताक्ष, यूपाक्ष, मकराक्ष, प्रजंघ, कम्पन, अक्षकुमार, जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवेग, अशनिप्रभ, संह्रादी, विकट, अरिघ्न, तपन, मन्द, प्रघास, प्रघस, जंघ, विद्युतजिह्व, द्विजिह्व, सूर्यशत्रु, सुपार्श्व तथा चक्रमाली आदि नामों का उल्लेख किया गया है।

कतिपय गुणरूप तथा विकाररूप प्रसिद्ध नामों का स्पष्टीकरण तो कथाओं के अन्तर्गत यत्र-तत्र प्रसंगानुसार कर दिया गया है परन्तु शेष नामों का स्पष्टीकरण भविष्य में अपेक्षित है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि रामकथा में राम के सैनिकों द्वारा रावण के सैनिकों का वध कहकर वास्तव में अज्ञान-शक्तियों के ऊपर ज्ञान-शक्तियों की विजय को दर्शाया गया है।

५. राम और रावण के अस्त्र–

राम के आग्नेय आदि अस्त्र और रावण के तामस-आसुर अस्त्र क्रमशः गुणों (स्वीकार, सहयोग, सेवा, समर्पण आदि) और अवगुणों (तमस से उत्पन्न परछिद्रान्वेषण, परचिन्तन आदि) की ओर ही संकेत करते प्रतीत होते हैं।

६. रावण द्वारा मयासुर-निर्मित शक्ति का प्रयोग–

मयासुर (मय अर्थात् मैं- असुर) शब्द के द्वारा वास्तव में मन में उत्पन्न हुए उस मैं-मैं रूपी असुर की ओर संकेत किया गया है, जो प्रचलित भाषा में दम्भ या अहंकार कहलाता है और इसी दम्भ या अहंकार के सहारे देहाभिमान में स्थित हुआ मनुष्य (रावण) अपनी ही सात्विकता को बहुत हानि पहुँचाता है।

७. मयासुर-निर्मित शक्ति से लक्ष्मण की मूर्च्छा परन्तु हनुमान द्वारा लाई हुई ओषधि के सेवन से लक्ष्मण का जागरण–

आत्म-ज्ञान में स्थित होकर चूँकि मनुष्य (राम) अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता हो जाता है, अतः विचारों की उस निर्माता और नियन्ता शक्ति को ही रामकथा में लक्ष्मण नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि किसी भी प्रकार का अहंकार का प्रस्फुटन मनुष्य की इस विचार-शक्ति को शिथिल बनाता है, जिसे कथा में मयासुर-निर्मित शक्ति के द्वारा लक्ष्मण की मूर्च्छा के रूप में चित्रित किया गया है। परन्तु अपनी ही प्रज्ञा द्वारा आत्म-गुणों के त्वरित स्मरण से यह शिथिल हुई विचार-शक्ति पुनः जाग्रत हो जाती है, जिसे कथा में हनुमान द्वारा लाई हुई ओषधियों के सेवन से लक्ष्मण के जागरण के रूप में दर्शाया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

८. इन्द्र का रथ, सारथि मातलि और घोड़े–

स्वस्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित हुए मनुष्य (राम) का अपना ही श्रेष्ठ मन इन्द्र कहलाता है जो संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान के विनाश में अत्यन्त सहयोगी हो जाता है। यह श्रेष्ठ मन जिन अनेकानेक गुणों से युक्त होता है, उन गुणों को ही एक रूपक बनाकर इन्द्र के रथ, सारथि तथा घोड़ों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए–

रथ–

ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्र के रथ के रूप में श्रेष्ठ मन में विद्यमान शौर्य, धैर्य आदि उन अनेक गुणों की ओर संकेत किया गया है, जो देहाभिमान रूपी रावण के विनाश में सहयोगी होते हैं।

सारथि मातलि–

मातलि शब्द मातरि (मातृ) शब्द का तद्भव स्वरूप प्रतीत होता है। मातृ का अर्थ है– माँ अर्थात् नव का निर्माण करने वाली चेतना (प्रकृति)। आध्यात्मिक स्तर पर स्थिर गुण से युक्त हुए मन-बुद्धि को ही मातृ (मातलि) कहा जा सकता है क्योंकि स्थिर मन-बुद्धि में ही नूतन विचार के निर्माण की अद्भुत सामर्थ्य विद्यमान होती है। अस्थिर एवं चंचल मन-बुद्धि में नव-निर्माण की सामर्थ्य कभी नहीं होती। उदाहरण के लिए– जीवन-क्षेत्र में व्यवहार करते हुए जब मनुष्य भिन्न-भिन्न स्वभाव एवं संस्कार वाले लोगों के साथ सम्बन्ध-सम्पर्क में आता है, तब किसी न किसी रूप में स्वयं का ही अभिमान प्रस्फुटित होने लगता है। ऐसी स्थिति में आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने स्थिर मन-बुद्धि के सहारे उस प्रस्फुटित हुए अभिमान को नियन्त्रित करके त्वरित रूप से एक नूतन परिस्थिति का निर्माण कर लेता है और कुशल सारथि बनकर अपने गुण रूप रथ को उचित दिशा में गतिमान कर देता है।

रथ में जुते हुए चार दिव्य घोड़े–

गुण रूप रथ को क्रियाशील (सक्रिय) बनाने वाले चार दिव्य घोड़े भी चार विशिष्ट कारकों (गुणों) की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं।

(अ) स्वस्वरूप में स्थित हुए मनुष्य (राम) के गुण रूप रथ को क्रियाशील बनाए रखने में पहला कारक तत्त्व है– स्व-परिवर्तन के प्रति उसका सुदृढ़ दृष्टिकोण। इसी दृष्टिकोण के कारण मनुष्य का ध्यान सतत अपने गुणों पर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

केन्द्रित रहता है और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न गुणों का उपयोग करने के कारण उसके गुण सदा सक्रिय स्थिति में विद्यमान रहते हैं। इसके विपरीत, जब मनुष्य दूसरों को ही बदलना चाहता है, स्वयं को नहीं, तब गुणों का भी कोई विशेष उपयोग नहीं हो पाता और गुण सदा निष्क्रिय स्थिति में ही विद्यमान रहते हैं।

(आ) गुण रूप रथ को क्रियाशील बनाए रखने में दूसरा कारक तत्त्व है– कारण-कार्य नियम के प्रति सुदृढ़ स्वीकार भाव। आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य (राम) इस अटल नियम में दृढ़तापूर्वक स्थित रहता है कि विचारों के रूप में जो भी ऊर्जा सतत प्रवाहित होकर बाहर की ओर जाती है, वही ऊर्जा निश्चित रूप से वापस भी लौटती है। यही कर्मफल-नियम भी कहलाता है। अतः आत्म-ज्ञानी मनुष्य सदैव श्रेष्ठ सकारात्मक विचारों का निर्माण करता है, जिससे सभी गुण सतत क्रियाशील बने रहते हैं।

(इ) गुण रूप रथ को क्रियाशील बनाए रखने में तीसरा कारक तत्त्व है– प्रत्येक शरीर (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण) की पूर्ण भिन्नता के कारण सभी के प्रति पूर्ण स्वीकार भाव। पूर्ण स्वीकार भाव होने से ही आत्म-ज्ञानी मनुष्य कभी भी बदले की भावना से ग्रस्त नहीं होता। वह दुष्ट के साथ प्रेम का, निर्दयी के साथ दया का अथवा अनुपकारी के साथ भी उपकार गुण का ही आश्रय ग्रहण करता है।

(ई) गुण रूप रथ को क्रियाशील बनाए रखने में चौथा कारक तत्त्व है– देह रूप यन्त्र की विनाशशीलता और स्वयं की (आत्मा की) अमरता के प्रति गहरा स्वीकार भाव। इस स्वीकार भाव के कारण ही मनुष्य सदैव गुणों का संग्राहक बना रहता है, अतः गुण सदा सक्रिय स्थिति में विद्यमान रहते हैं।

९. अगस्त्य द्वारा राम को प्रदत्त आदित्य-हृदय-स्तोत्र–

अगस्त्य शब्द अग और स्त्य नामक दो शब्दों के मेल से बना है। अग (अगति या गति रहित अर्थात् परिवर्तनरहित) शब्द आत्मा का वाचक है और स्त्य का अर्थ है– विस्तार। अतः अगस्त्य शब्द आत्मा के विस्तार अर्थात् सभी के प्रति आत्म-भाव के विस्तार को संकेतित करता है।

आदित्य शब्द को सूर्य के पर्यायवाची रूप में ग्रहण किया जाता है और सूर्य शब्द पौराणिक साहित्य में कहीं आत्मा का तथा कहीं परमात्मा का वाचक है। प्रस्तुत संदर्भ में सूर्य शब्द परमात्मा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अतः प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

(राम) जब सभी के प्रति आत्म-भाव से युक्त हो जाता है, तब सहज रूप से परमात्म-योग में स्थित होकर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान को विनष्ट करने में अद्भुत रूप से समर्थ हो जाता है।

१०. राम का रावण के एक सिर को काटना परन्तु पुनः-पुनः नए सिरों का उत्पन्न हो जाना–

रावण का सिर नकारात्मक सोच को इंगित करता प्रतीत होता है। यहाँ यह संकेत किया गया है कि संस्कार रूप में विद्यमान जो अपना ही प्रबल देहाभिमान है, वह सरलता एवं शीघ्रता से विनष्ट नहीं होता। स्वस्वरूप– आत्म-स्वरूप में स्थित होकर भी जब मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार की परिस्थितियों अथवा भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वभाव-संस्कार वाले मनुष्यों के सम्बन्ध- सम्पर्क में आता है, तब अनेक बार ऐसी स्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं कि अपना ही देहाभिमान प्रस्फुटित हो जाता है और मनुष्य किसी न किसी रूप में नकारात्मक सोच को निर्मित कर लेता है। फिर तत्काल ही आत्म-स्वरूप के प्रति जाग्रत होकर वह एक नकारात्मक सोच को काटता है, तो दूसरी निर्मित हो जाती है और इस प्रकार उस नकारात्मक सोच का क्रम (सिलसिला) एकदम समाप्त नहीं हो पाता।

११. ब्रह्मास्त्र के निरन्तर प्रयोग से राम द्वारा रावण का वध–

ब्रह्मास्त्र शब्द सर्वत्र स्वभाव रूपी अस्त्र को संकेतित करता प्रतीत होता है। किसी भी तत्त्व का जो मूल स्वभाव होता है, वही उसका ब्रह्मास्त्र अर्थात् ब्रह्मा द्वारा दिया हुआ अस्त्र कहलाता है। चूँकि राम आत्म-स्वरूप में स्थिति का वाचक है, अतः राम के संदर्भ में सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप जो आत्मा का स्वभाव है, वही उसका ब्रह्मास्त्र है। प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया है कि आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य जब सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप स्व-स्वभाव को प्रतिपल जीता अर्थात् आचरण में उतारता है, तभी देहाभिमान विनष्ट होता है, उससे पहले नहीं अर्थात् संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) को विनष्ट करने के लिए आत्म-गुणों में या आत्म-स्वभाव में प्रतिपल जीना आवश्यक है।

कथा का तात्पर्य

रामकथा को स्थूल दृष्टि से देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ अयोध्या में रहने वाले राम नामक व्यक्ति की लड़ाई लंका में रहने वाले किसी रावण नामक

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

व्यक्ति से है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि राम और रावण किन्हीं दो व्यक्तियों के वाचक नहीं, अपितु एक ही व्यक्ति में विद्यमान दो भिन्न प्रकार की चेतनाओं के वाचक हैं। अतः राम और रावण का युद्ध भी वास्तव में एक ही व्यक्ति में विद्यमान दो भिन्न चेतनाओं के बीच लड़ा जाने वाला एक विशिष्ट आन्तरिक युद्ध है।

जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेता है, तब आत्म-ज्ञान में स्थित हुई उस विशिष्ट चेतना को ही राम कहा जाता है। इसके विपरीत, जब मनुष्य देह (शरीर) और देह से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं (मैं माँ हूँ, मैं पिता हूँ– आदि-आदि), अपने पदों (मैं डाक्टर हूँ, मैं इंजीनियर हूँ– आदि-आदि), अपनी छवियों (मैं हिन्दू हूँ, मैं मुस्लिम हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, मैं शूद्र हूँ– आदि-आदि), यहाँ तक कि अपने किसी विचार या धारणा (मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं अमीर हूँ, मैं ईमानदार हूँ– आदि-आदि) को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर (यही मैं हूँ– ऐसा मानकर) उनसे गहरा जुड़ाव बना लेता है, तब उसकी चेतना देहाभिमानी कही जाती है। एक शरीर को छोड़ने तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करने की लम्बी यात्रा में यही देहाभिमानी चेतना संस्कार रूप धारण करके अत्यन्त प्रबल हो जाती है और अपने ही चित्त (अवचेतन मन) में गहरी जड़ें जमा कर विद्यमान हो जाती है। संस्कार रूप में विद्यमान इस देहाभिमानी चेतना को ही रामकथा में रावण नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

चूँकि यह देहाभिमानी चेतना ही समस्त विकारों का मूल और दुःखों का कारण होती है, अतः आत्म-स्वरूप को पहचानकर और उसमें स्थित होकर (अर्थात् राम बनकर) मनुष्य को अपनी ही इस देहाभिमानी चेतना से लड़ना और इसका विनाश करना आवश्यक हो जाता है।

जैसे नए-नए अंकुरित हुए पौधे को जमीन से उखाड़कर फेंक देना अत्यन्त सरल होता है परन्तु एक बार जड़ें जमा लेने पर फिर उसी पौधे को निकालकर फेंकना अपेक्षाकृत कठिन होता चला जाता है, उसी प्रकार उपर्युक्त वर्णित देहाभिमानी चेतना भी जब केवल चेतन मन के स्तर तक सीमित रहती है, तब उसे उस चेतन मन रूपी जमीन से उखाड़ कर फेंकना सरल होता है परन्तु एक बार जड़ें जमा लेने पर अर्थात् चित्त (अवचेतन मन) में प्रविष्ट होकर संस्कार रूप धारण कर लेने पर फिर उसी देहाभिमानी चेतना को विनष्ट करना कठिन हो जाता है और यह कदापि सम्भव नहीं हो पाता है कि मनुष्य केवल उत्तम गुणों का आश्रय

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

लेकर अपनी ही इस देहाभिमानी चेतना को विनष्ट कर सके।

रामकथा संकेत करती है कि चित्त (अवचेतन मन) में प्रविष्ट होकर गहरी जड़ें बना चुकी इस देहाभिमानी चेतना को (रावण को) अब केवल स्व-स्वरूप की पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होकर ही विनष्ट किया जा सकता है। अतः सबसे पहले मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचाने। जब मनुष्य सम्यक्-रूपेण इस समझ या ज्ञान में स्थित हो जाए कि वह शरीर नहीं है अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी, सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द से भरपूर चैतन्य-शक्ति आत्मा है– तब यही समझ, यही ज्ञान संस्कार रूप धारण कर चुकी देहाभिमानी चेतना को (रावण को) विनष्ट करने के लिए उठा हुआ उसका पहला कदम होता है, जिसे रामकथा में रावण के विनाश हेतु राम के जन्म के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

रामकथा संकेत करती है कि संस्कार रूप धारण कर चुकी यह देहाभिमानी चेतना (रावण) अपनी विकार रूपी सेनाओं के साथ ऐसा सुदृढ़ स्वरूप धारण कर लेती है कि विकारों का विनाश किए बिना इस देहाभिमानी चेतना को विनष्ट करना सम्भव नहीं होता। अतः आत्म-ज्ञान में स्थित होकर अपनी समस्त ज्ञान-शक्तियों को आचरण में उतारते हुए पहले विकारों को विनष्ट करना ही अनिवार्य हो जाता है, जिसे रामकथा में राम की वानर सेना द्वारा रावण की राक्षस सेना के विनाश के रूप में चित्रित किया गया है। राक्षस सेना के इस विनाश से ही देहाभिमानी चेतना कमजोर पड़ती है और आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) का देहाभिमानी चेतना के (रावण के) विनाश हेतु उठा हुआ यही दूसरा कदम है।

प्रस्तुत कथा के माध्यम से रामकथा पुनः संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित होकर (राम बनकर) ज्ञानपूर्वक आचरण करते हुए जो विकारों का विनाश रूप कार्य सम्पन्न होता है, उससे निश्चितरूपेण देहाभिमानी चेतना रूप रावण कमजोर तो होता है परन्तु विनष्ट नहीं होता। देहाभिमानी चेतना के (रावण के) विनाश के लिए एक विशेष प्रकार का शक्ति-संयोजन आवश्यक है अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य की समग्र शक्ति जब एक ही लक्ष्य पर केन्द्रित हो जाती है, तब वही संयोजित शक्ति देहाभिमानी चेतना को विनष्ट कर पाती है। शक्ति-संयोजन का अर्थ है– आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ मनुष्य अपने श्रेष्ठ गुणों में स्थित होकर, सभी के प्रति पूर्णतः आत्म-भाव रखते हुए, सतत परमात्म-योग में रहकर जब एकमात्र आत्म-गुणों (सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम, आनन्द) को ही आचरण में उतारता है, तब निश्चितरूपेण संस्कार रूप में

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

विद्यमान स्वयं की ही देहाभिमानी चेतना को विनष्ट करता है, जिसे रामकथा में राम द्वारा रावण के वध के रूप में चित्रित किया गया है।

श्रेष्ठ गुणों में स्थिति को ही यहाँ (प्रस्तुत कथा में) इन्द्र-प्रेषित रथ के ऊपर राम की आरूढ़ता के रूप में, सबके प्रति आत्म-भाव में रहने को ही अगस्त्य मुनि के आगमन के रूप में, परमात्म-योग में स्थिति को ही आदित्य-हृदय-स्तोत्र की प्राप्ति के रूप में तथा आत्म-गुणों में सतत आचरण को ही राम द्वारा ब्रह्मास्त्र धारण के रूप में संकेतित किया गया है।

कथा संकेत करती है कि प्रत्येक व्यक्तित्व के स्थूल तथा सूक्ष्म- सभी स्तरों पर जो अद्भुत दिव्यता विद्यमान होती है, उस दिव्यता के प्रकटन में सबसे बड़ी बाधा व्यक्ति का अपना ही देहाभिमान होता है। अत: देहाभिमान के विनाश का अर्थ हो जाता है– व्यक्तित्व में क्रियाशील स्थूल तथा सूक्ष्म सभी प्रणालियों अथवा क्रियाओं का अपने मूल-स्वरूप– दिव्य-स्वरूप में प्रकट हो जाना। दिव्यता के इस प्रकटन को ही कथा में देवता, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, चारण आदि की प्रसन्नता के रूप में तथा आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी रूप पञ्च महाभूतों की प्रसन्नता के रूप में व्यक्त किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Ego is destroyed by Self-Knowledge as described through the killing of Rāvaṇa by Rāma

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapters 99-108), it is described that Rāvaṇa became very angry when his prominent warriors were killed by the warriors of Rāma. He himself came to the battlefield and tried to kill Rāma using his Tāmasic and Āsuri weapons. Rāma faced him and destroyed his weapons by using his Sāttvika weapons. Rāvaṇa wished to kill Vibhīṣaṇa also but Lakṣmaṇa saved Vibhīṣaṇa as he stood up in front of him to protect him. Lakṣmaṇa got injured by the Power of Demon Mayāsura and became unconscious but soon regained consciousness by taking the medicine brought by Hanumāna from Himālayas.

When Rāma and Rāvaṇa were fighting on the battlefield, Devas, Gandharvas and Ṛṣis etc. appeared in the sky to see that war. Devas were worried when they saw Rāma standing on the ground, while Rāvaṇa was standing on his chariot. Devarāja Indra immediately sent his chariot and charioteer for Rāma and Ṛṣi Agastya also offered him 'Āditya-Hṛdaya-Stotra' for his victory.

Now Rāma started cutting the heads of Rāvaṇa but as soon as one head was cut, the other new fresh head appeared. In this situation Rāma used his Brahmāstra and killed Rāvaṇa. Rāvaṇa was against Devas. Many many Ṛṣis were killed by him. He always acted against Dharma. Even Five elements of Nature i.e., sky, air, fire, water and earth were afraid of him. Therefore they all became happy when Rāvaṇa was killed.

The story is symbolic and related to the destruction of Ego. When a person forgets his own Real Self and thinks himself a body, he gets attached to his roles thinking himself as role. This is Ego which becomes a *Saṁskāra* in the long journey of births and deaths. This Ego brings pain in everyone's life and a long chain of different vices get originated from it.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The story describes that this Ego is very deep and powerful, therefore ordinary methods are not enough to destroy it. Self-Knowledge is compulsory. When a person is established in the knowledge of his own Real Self, he takes first step in the process of its destruction.

The story also tells that deferent vices originated from Ego strengthens this Ego. Therefore it becomes necessary to first destroy these vices. Thus when a person knows his own Real Self, all his divine powers emerge and help him in destroying these vices.

The story also tells that though all divine powers are very helpful in destroying vices but Ego still persists. Ego is destroyed only by using all the methods collectively i.e. when a Self-Knowledged person lives in his virtues, perceives everyone as soul, connects himself with the Supreme (Paramātman) and always uses Peace, Power, Purity, Love, Knowledge and Bliss in day to day life, then only Ego is destroyed symbolized as killing of Rāvaṇa by Rāma.

Living in virtues is symbolized here by a chariot, charioteer and four horses of Indra. Perceiving everyone as a soul is symbolized by Ṛṣi Agastya. Connecting with the Supreme is symbolized by Āditya-Hṛdaya-Stotra and living life in Peace, Power, Purity, Love, Knowledge and Bliss is symbolized here as Brahmāstra of Rāma.

The story depicts that this Ego is so much harmful that all kinds of Divinity get vanish, higher elevated thoughts remain dormant and five elements of body (Nature) become disturbed. Therefore destruction of Ego brings happiness to all of them and they evolve accordingly.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Ego is destroyed by Self-Knowledge as described through the killing of Rāvaṇa by Rāma

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapters 99-108), it is described that Rāvaṇa became very angry when his prominent warriors were killed by the warriors of Rāma. He himself came to the battlefield and tried to kill Rāma using his Tāmasic and Āsuri weapons. Rāma faced him and destroyed his weapons by using his Sāttvika weapons. Rāvaṇa wished to kill Vibhīṣaṇa also but Lakṣmaṇa saved Vibhīṣaṇa as he stood up in front of him to protect him. Lakṣmaṇa got injured by the Power of Demon Mayāsura and became unconscious but soon regained consciousness by taking the medicine brought by Hanumāna from Himālayas.

When Rāma and Rāvaṇa were fighting on the battlefield, Devas, Gandharvas and Ṛṣis etc. appeared in the sky to see that war. Devas were worried when they saw Rāma standing on the ground, while Rāvaṇa was standing on his chariot. Devarāja Indra immediately sent his chariot and charioteer for Rāma and Ṛṣi Agastya also offered him 'Āditya-Hṛdaya-Stotra' for his victory.

Now Rāma started cutting the heads of Rāvaṇa but as soon as one head was cut, the other new fresh head appeared. In this situation Rāma used his Brahmāstra and killed Rāvaṇa. Rāvaṇa was against Devas. Many many Ṛṣis were killed by him. He always acted against Dharma. Even Five elements of Nature i.e., sky, air, fire, water and earth were afraid of him. Therefore they all became happy when Rāvaṇa was killed.

The story is symbolic and related to the destruction of Ego. When a person forgets his own Real Self and thinks himself a body, he gets attached to his roles thinking himself as role. This is Ego which becomes a *Saṁskāra* in the long journey of births and deaths. This Ego brings pain in everyone's life and a long chain of different vices get originated from it.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

The story describes that this Ego is very deep and powerful, therefore ordinary methods are not enough to destroy it. Self-Knowledge is compulsory. When a person is established in the knowledge of his own Real Self, he takes first step in the process of its destruction.

The story also tells that deferent vices originated from Ego strengthens this Ego. Therefore it becomes necessary to first destroy these vices. Thus when a person knows his own Real Self, all his divine powers emerge and help him in destroying these vices.

The story also tells that though all divine powers are very helpful in destroying vices but Ego still persists. Ego is destroyed only by using all the methods collectively i.e. when a Self-Knowledged person lives in his virtues, perceives everyone as soul, connects himself with the Supreme (Paramātman) and always uses Peace, Power, Purity, Love, Knowledge and Bliss in day to day life, then only Ego is destroyed symbolized as killing of Rāvaṇa by Rāma.

Living in virtues is symbolized here by a chariot, charioteer and four horses of Indra. Perceiving everyone as a soul is symbolized by Ṛṣi Agastya. Connecting with the Supreme is symbolized by Āditya-Hṛdaya-Stotra and living life in Peace, Power, Purity, Love, Knowledge and Bliss is symbolized here as Brahmāstra of Rāma.

The story depicts that this Ego is so much harmful that all kinds of Divinity get vanish, higher elevated thoughts remain dormant and five elements of body (Nature) become disturbed. Therefore destruction of Ego brings happiness to all of them and they evolve accordingly.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४०. विभीषण की राज्याभिषेक कथा

(मनुष्य-व्यक्तित्व में सात्त्विकता की स्थापना का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
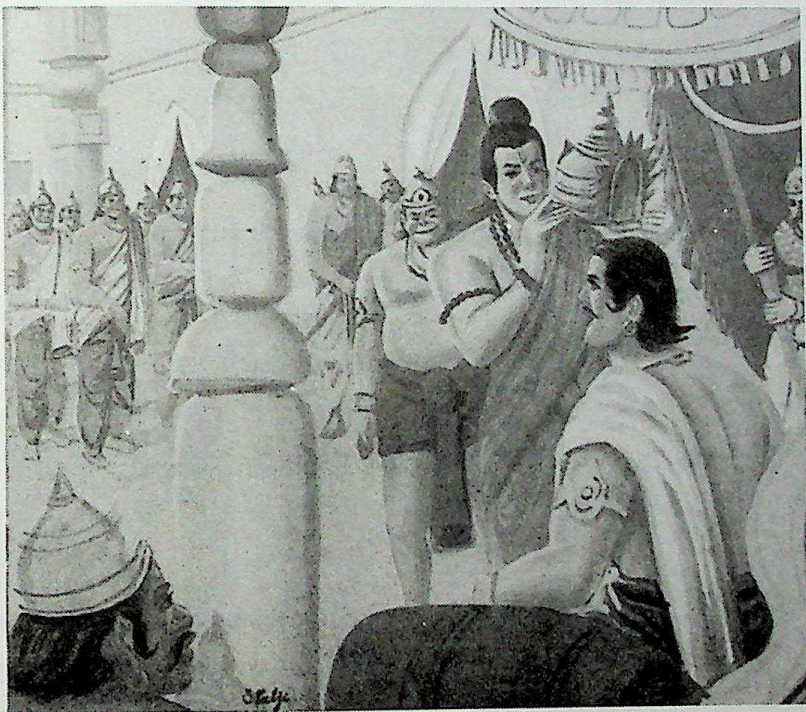
लंकापुरी में विभीषण के राज्याभिषेक के माध्यम से मनुष्य के व्यक्तित्व में सात्विकता की स्थापना का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड (सर्ग ११२) में कहा गया है कि राम ने जब रावण का वध कर दिया और वे अपनी छावनी में लौट आए, तब समीप ही खड़े हुए भाई लक्ष्मण से बोले कि वे लंकापुरी में जाकर उनके प्रेमी और भक्त विभीषण को लंकापुरी के राज्य पर अभिषिक्त कर दें। अतः राम की आज्ञा का अनुसरण करते हुए लक्ष्मण ने लंकापुरी में जाकर वहाँ के राज्य पर विधिपूर्वक विभीषण का अभिषेक कर दिया, जिससे सभी को अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई।

कथा की प्रतीकात्मकता

प्रस्तुत कथा प्रतीकात्मक है। अतः प्रतीकों को समझ लेना आवश्यक है।

१. विभीषण–

रामकथा में विभीषण नामक पात्र सत्त्व गुण अथवा सात्विकता का प्रतिनिधित्व करता प्रतीत होता है क्योंकि सत्त्व गुण की जो शम, दम, तितिक्षा, विवेक, तप, सत्य, दया, सन्तोष, त्याग, निस्पृहता, श्रद्धा, लज्जा तथा आत्मरति आदि विभिन्न वृत्तियां हैं– वे सभी इस विभीषण नामक पात्र के भीतर किसी न किसी रूप से विद्यमान हैं।

रामकथा में वर्णित विभीषण नामक पात्र के चार मन्त्रियों- अनल, पनस, प्रमति तथा सम्पाति (युद्धकाण्ड, ३७-७) के रूप में भी प्रकारान्तर से सत्त्व गुण की ओर ही संकेत किया गया प्रतीत होता है। यथा–

१. अनल (नास्ति अलः पर्याप्तिः यस्य) का अर्थ है– जो कभी पूर्ण या पर्याप्त नहीं होता। व्यक्तित्व के भीतर सात्विक वृत्ति का अधिकाधिक विनियोग होना मनुष्य को आध्यात्मिक ऊँचाइयों की ओर ले जाता है और आत्म-ज्ञान में स्थित होने का प्रमुख हेतु भी यही सात्विकता होती है।

२. पनस (पन् धातु के साथ असच् प्रत्यय का योग, अतः पनाय्यते स्तूयते अनेन इति पनस) का अर्थ है– प्रशंसित होना। सत्त्व गुण सर्वत्र प्रशंसित होता है। रजोगुण अथवा तमोगुण में यह विशेषता विद्यमान नहीं होती।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

३. प्रमति (प्र उपसर्ग के साथ मति शब्द का योग) का अर्थ है– उत्कृष्ट मति या समझदारी। सत्त्वगुण-सम्पन्न मनुष्य सदा उत्कृष्ट मति से सम्पन्न होता है।

४. सम्पाति (सम् उपसर्ग के साथ पाति का योग) का अर्थ है– सम्यक् अर्थात् संतुलित का पान करने वाला। सात्विक अर्थात् सत्त्व गुण से सम्पन्न मनुष्य मन, वचन तथा कर्म- सभी स्तरों पर संतुलन को बनाए रखता है। वह कभी भी किसी भी अतिरेक की ओर अग्रसर नहीं होता।

उपर्युक्त वर्णित विशेषताएँ चूँकि सत्त्व गुण का धर्म अर्थात् स्वभाव ही है, इसलिये रामकथा में विभीषण को धर्मनिष्ठ कहकर सम्बोधित किया गया है। धर्म का अर्थ है– स्वभाव। जो अपने स्वभाव में स्थित है, वही धर्मनिष्ठ है।

शास्त्रीय दृष्टि से विचार करने पर ऐसा भी कहा जा सकता है कि मन की जो एक सौ एक वृत्तियां हैं, उनमें से सौ वृत्तियां तो मनुष्य को शरीर अथवा संसार की ओर अग्रसर करती हैं परन्तु एक सात्विक वृत्ति मनुष्य को आत्म-ज्ञान अथवा परमात्म-ज्ञान की ओर ले जाती है। अतः आत्म-ज्ञान (राम) की ओर ले जाने वाली वह एक सात्विक वृत्ति ही विभीषण है।

चूँकि यह एक सात्विक वृत्ति मनुष्य को आत्म-ज्ञान की ओर अग्रसर करती है, इसलिये कथा में विभीषण को राम के परम प्रेमी तथा भक्त के रूप में निरूपित किया गया है। आत्म-ज्ञान (राम) द्वारा संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान रूप तमस (रावण) तथा मोह रूप रजस (कुम्भकर्ण) का विनाश हो जाने पर यही सात्विक वृत्ति (विभीषण) मनुष्य-व्यक्तित्व पर राज्य करती है, जिसे कथा में लंकापुरी में विभीषण के राज्याभिषेक के रूप में चित्रित किया गया है।

विभीषण शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर भी विभीषण नामक पात्र को सत्त्व गुण के प्रतीक रूप में ग्रहण किया जा सकता है। विभीषण (न भीषयति इति) शब्द का अर्थ है– वह गुण जो मनुष्य को भय प्रदान नहीं करता। इसके विपरीत रावण (रावयति भीषयति इति) शब्द का अर्थ है– वह गुण जो मनुष्य को भय प्रदान करता है। यह तथ्य सर्वविदित है कि सत्त्व गुण मनुष्य को अभय प्रदान करता और प्रसन्नता में ले जाता है, जबकि तमस गुण मनुष्य को भय प्रदान करता और दुःख की ओर ले जाता है।

२. लंकापुरी–

सुन्दरकाण्ड (सर्ग १५,४१,४३) तथा युद्धकाण्ड (सर्ग ३,३६,३७,३९) में लंकापुरी से सम्बन्धित जो विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है, उस वर्णन के आधार

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पर लंकापुरी देहाभिमानी व्यक्तित्व को संकेतित करती प्रतीत होती है। उदाहरण के लिये–

I. लंकापुरी को त्रिकूट पर्वत पर स्थित कहा गया है। त्रिकूट पर्वत सत, रज तथा तम नामक त्रिगुणात्मिका प्रकृति को इंगित करता है। त्रिगुणात्मिका प्रकृति का अर्थ है– मनुष्य के मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रिय, विषय, भाव, दृष्टि आदि सभी का सत, रज तथा तम नामक तीन गुणों से युक्त होना। सत्त्व गुण का अर्थ है– मन, बुद्धि आदि का शम, दम, तितिक्षा, दया, सत्य, विनय, सरलता आदि से युक्त होना। रजो गुण का अर्थ है– मन, बुद्धि आदि का कामना, घमंड, असन्तोष, भेदबुद्धि, विषयभोग, प्रयत्न, उद्योग आदि से युक्त होना। तमो गुण का अर्थ है– मन, बुद्धि आदि का क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, याचना, पाखण्ड, कलह, भय, दीनता, अकर्मण्यता आदि से युक्त होना। अतः लंकापुरी को त्रिकूट पर्वत पर स्थित कहकर यह संकेत किया गया है कि देहाभिमानी व्यक्तित्व सत, रज तथा तम नामक तीनों गुणों के आधार पर स्थित होता है।

II. लंकापुरी में विद्यमान चैत्यप्रासाद के सौ खम्भ भी संसार की ओर उन्मुख हुई उन सौ वृत्तियों की ओर संकेत करते प्रतीत होते हैं, जो मनुष्य के मन को बहिर्मुखी बनाती हैं।

III. चार दिशाओं में विद्यमान लंकापुरी के चार द्वारों की सुरक्षा और मध्य भाग की सुरक्षा का वर्णन भी देहाभिमानी व्यक्तित्व के कुछ विशेष तथ्यों की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। कथा में कहा गया है कि रावण ने लंकापुरी की सुरक्षा के लिये पूर्व दिशा के द्वार पर प्रहस्त को, दक्षिण दिशा के द्वार पर महापार्श्व तथा महोदर को, पश्चिम दिशा के द्वार पर राक्षस सेना के साथ इन्द्रजित को, उत्तर दिशा के द्वार पर शुक, सारण तथा स्वयं को एवं मध्य भाग में बहुसंख्यक राक्षसों के साथ विरूपाक्ष नामक राक्षस को नियुक्त किया। परन्तु राम ने पूर्व द्वार पर नील आदि को, दक्षिण द्वार पर अंगदादि को, पश्चिम द्वार पर हनुमान को, उत्तर द्वार पर स्वयं को तथा लक्ष्मण को तथा मध्य भाग में सुग्रीव, जाम्बवान एवं मन्त्रियों सहित विभीषण को नियुक्त करके उस अभेद्य लंकापुरी का भेदन कर दिया।

अध्यात्म की दृष्टि से पूर्व दिशा ज्ञान-प्राप्ति की दिशा कही जाती है। रावण द्वारा पूर्व दिशा के द्वार पर प्रहस्त नामक राक्षस (बहिर्मुखता रूप विकार) की नियुक्ति के माध्यम से यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) के कारण

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

मनुष्य का व्यक्तित्व बहिर्मुखी बना रहता है और बहिर्मुखी होने के कारण वह ज्ञान-प्राप्ति की ओर उन्मुख नहीं हो पाता। इसके विपरीत आत्म-निष्ठ अथवा आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) द्वारा उसी द्वार पर नील नामक वानर की नियुक्ति करके यह संकेत किया गया है कि ज्ञान की प्राप्ति के लिये संयम (नील नामक वानर) को धारण करना आवश्यक है।

दक्षिण दिशा दक्षता-प्राप्ति की दिशा कही जाती है। रावण द्वारा दक्षिण दिशा के द्वार पर महापार्श्व (स्वार्थ रूप विकार) और महोदर (व्यर्थ बातों को धारण करना रूप विकार) नामक राक्षसों की नियुक्ति के माध्यम से यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व स्वार्थ के वशीभूत रहता है और व्यर्थ बातों को धारण करने के कारण दक्षता-प्राप्ति की ओर उन्मुख नहीं हो पाता। इसके विपरीत आत्म-निष्ठ अथवा आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) द्वारा उसी द्वार पर अंगद नामक वानर की नियुक्ति करके यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि दक्षता-प्राप्ति के लिये स्वस्थ एवं सुदृढ़ मन (अंगद) से युक्त होना आवश्यक है।

पश्चिम दिशा कर्मफलों के समापन की दिशा कही जाती है। रावण द्वारा पश्चिम दिशा के द्वार पर इन्द्रजित नामक राक्षस (क्रोध रूप विकार) की नियुक्ति के माध्यम से यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व क्रोध रूप विकार से युक्त रहता है, अत: कर्मफलों के समापन की ओर उन्मुख नहीं हो पाता। इसके विपरीत आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) द्वारा उसी द्वार पर हनुमान (प्रज्ञाशक्ति) नामक वानर की नियुक्ति करके यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि कर्मफलों के समापन के लिये प्रज्ञा में स्थित होना आवश्यक है।

उत्तर दिशा ऊर्ध्व विकास की दिशा कही जाती है। रावण द्वारा ऊर्ध्व दिशा के द्वार पर शुक एवं सारण नामक राक्षसों (पुरानी बातों की जुगाली करना रूप विकार) की नियुक्ति के माध्यम से यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) के कारण मनुष्य का व्यक्तित्व पुरानी बातों को कभी भुलाता नहीं और उन्हीं बातों की सतत जुगाली करने के कारण वह ऊर्ध्व विकास की ओर अग्रसर नहीं हो पाता। इसके विपरीत आत्म-निष्ठ अथवा आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

द्वारा लक्ष्मण की नियुक्ति करके यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि उच्चतर विकास हेतु अपने प्रत्येक विचार का निर्माता एवं नियन्ता होना आवश्यक है।

लंकापुरी के मध्य भाग में रावण द्वारा विरूपाक्ष नामक राक्षस (इन्द्रियों की विषयोन्मुखता रूप विकार) की नियुक्ति के माध्यम से यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) के कारण व्यक्तित्व (लंकापुरी) के केन्द्र में जहाँ इन्द्रियों की विषयोन्मुखता रूप अज्ञानता (विरूपाक्ष) विद्यमान रहती है, वहीं आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) व्यक्तित्व के केन्द्र में ज्ञान को (सुग्रीव को), यम-नियमादि अर्थात् सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष, स्वाध्याय, ईश्वर-प्रणिधान आदि को (जाम्बवान् को) तथा सात्विकता को (विभीषण को) स्थापित कर लेता है।

IIII. लंकापुरी में कभी कुबेर राज्य करते हैं, कभी रावण तथा कभी विभीषण। इसका तात्पर्य यही है कि मनुष्य का व्यक्तित्व जब अन्तर्मुखी और सकारात्मक होता है, तब इसे कुबेर की नगरी कहा जाता है। जब यह व्यक्तित्व संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान से युक्त होता है, तब इसे रावण की नगरी कहा जाता है तथा संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान के समाप्त होने पर जब इस मनुष्य-व्यक्तित्व में सात्विकता की स्थापना हो जाती है, तब इसे विभीषण द्वारा शासित नगरी के रूप में जाना जाता है।

लंका शब्द की निरुक्ति के आधार पर भी लंकापुरी मनुष्य व्यक्तित्व को संकेतित करती प्रतीत होती है। लंका शब्द को दो प्रकार से समझा जा सकता है। प्रथम निरुक्ति के अनुसार लंका शब्द अधम अर्थ वाले रंक शब्द में र अक्षर को ल अक्षर करने से बना हुआ प्रतीत होता है (उणादि कोष, पाद ३, सूत्र ४०)। पुरी शब्द व्यक्तित्व का वाचक है। अतः लंकापुरी शब्द अधम अर्थात् देहाभिमानी मनुष्य-व्यक्तित्व को संकेतित करता है।

दूसरी निरुक्ति के अनुसार लंका शब्द लखा (लक्ष् धातु से निर्मित) शब्द का छिपा हुआ स्वरूप प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है– प्रत्यक्ष या दृश्यमान्। लखा का विपरीत शब्द है– अलखा (अलका) अर्थात जो प्रत्यक्ष या दृश्यमान् नहीं है। मनुष्य-व्यक्तित्व दृश्यमान् है अर्थात् दिखाई देता है। अतः इसे लखा कहा जा सकता है। इसके विपरीत व्यक्तित्व में विद्यमान चैतन्य-शक्ति दृश्यमान् या प्रत्यक्ष नहीं है, अतः उसे अलखा कहा जा सकता है। व्यवहारिक जीवन में भी

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अलख जगाना (अर्थात् जो दिखाई नहीं देता है, उसके प्रति जाग्रत होना) और अलख निरन्जन (अर्थात् जो दिखाई नहीं देता है, वह पवित्र है) शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया जाता है।

कथा का अभिप्राय

प्रस्तुत कथा के माध्यम से यह संकेत किया गया है कि जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूला रहता है और स्वयं को पूर्णत: देहमात्र ही समझता है, तब मन के देहाभिमानी होने से उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही देहाभिमानी हो जाता है क्योंकि यह एक सर्वविदित तथ्य है कि विचारों के आधार पर भावों का निर्माण होता है। समस्त भाव मिलकर मनुष्य के दृष्टिकोण को बनाते हैं। दृष्टिकोण के अनुसार मनुष्य कर्म करता है। बार-बार किया हुआ कर्म ही जब आदत में बदल जाता है, तब एक विशिष्ट दृष्टि निर्मित हो जाती है और जैसी दृष्टि होती है, वैसा ही मनुष्य का व्यक्तित्व बन जाता है। यही देहाभिमान धीरे-धीरे एक संस्कार बनकर अवचेतन मन (चित्त) में चला जाता है और तब तक वहाँ विद्यमान रहता है, जब तक मनुष्य अपनी सही पहचान (आत्म-ज्ञान) में स्थित नहीं हो जाता।

कथा संकेत करती है कि मनुष्य का मन परिवर्तनशील है। वह सदा एक जैसा नहीं रहता। इसी परिवर्तन के कारण एक न एक दिन मनुष्य के मन के भीतर यह ज्ञान अवश्य उद्भूत हो जाता है कि वह देहमात्र नहीं है अपितु देह का स्वामी, देह का उपयोग एक उपकरण की भाँति सम्यक् रूप से करने वाला चैतन्य-शक्ति आत्मा है। अब स्वयं की इस सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) एक न एक दिन उस बहुत पुराने तथा संस्कार रूप धारण कर चुके देहाभिमान (रावण) को विनष्ट कर देता है, जिसे रामकथा में राम द्वारा रावण के वध के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) एक ओर तो अवचेतन मन (चित्त) रूपी सिंहासन के ऊपर विराजमान हुए देहाभिमान रूप विकार (रावण) का विनाश करता है, वहीं दूसरी ओर उस सिंहासन के ऊपर उस सात्विक गुण (विभीषण) को स्थापित कर देता है, जो देहाभिमान रूप विकार (रावण) के कारण सदा उपेक्षित और अपमानित होता रहा है। सात्विक गुण की स्थापना से शनैः-शनैः सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही सात्विक बन जाता है, जिसे रामकथा में लंकापुरी के राज्य पर विभीषण के अभिषेक के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Establishment of Divinity (Sāttviktā) in Human Personality as depicted through coronation of Vibhīṣaṇa in Laṅkāpurī

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapter 112), it is said that after killing Rāvaṇa, Rāma returned to his cantonment and asked Lakṣmaṇa to coronate Vibhīṣaṇa in Laṅkāpurī. Accordingly, Lakṣmaṇa coronated Vibhīṣaṇa in Laṅkāpurī as per rules and everyone became very happy.

The story is symbolic and depicts the establishment of Divinity (Sāttviktā) in human personality. It is said that when a person forgets his Real Self and thinks himself as Body, Ego emerges. Ego means– an attachment to a wrong image about his own Self. This Ego first affects the thoughts and slowly the whole personality gets merged into it. Everyone knows that Thought creates Feeling. All Feelings together creat Attitude. Attitude overpowers Action. Action gets converted into Habit which creates Perception and Perception makes one's Personality. Thus Egoistic thoughts or Egoistic mind makes a person's Personality Egoistic.

But the mind or thought always changes. It never remains the same. Therefore, one day or the other, in the long journey of births and deaths, a person ultimately remembers his Real Self and understands properly that he is essentially a Soul (Energy) and not a Body. Body is his instrument and he himself operates this instrument according to his wish. This Emerged Knowledge of Self is symbolized as manifestation of Rāma in Rāmāyaṇa.

The story tells that this new Emerged Knowledge of Self effaces Ego that had become a *Saṁskāra* or deep impression in sub-conscious mind. This effacement of Ego is symbolized as killing of Rāvaṇa by Rāma.

The present story depicts that this Ego is a strong evil and as soon as this evil is effaced, Divinity (*Sāttviktā*), is emerged. This Divinity (*Sāttviktā*) which remains neglected and disrespected in presence of Ego, now regains its honour and respect as soon as

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Ego is effaced. This establishment of Divinity in personality is symbolized as coronation of Vibhīṣaṇa in Laṅkāpurī.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४१. सीता की अग्नि-प्रवेश कथा

(ज्ञान द्वारा पवित्र सोच के परिष्कार का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
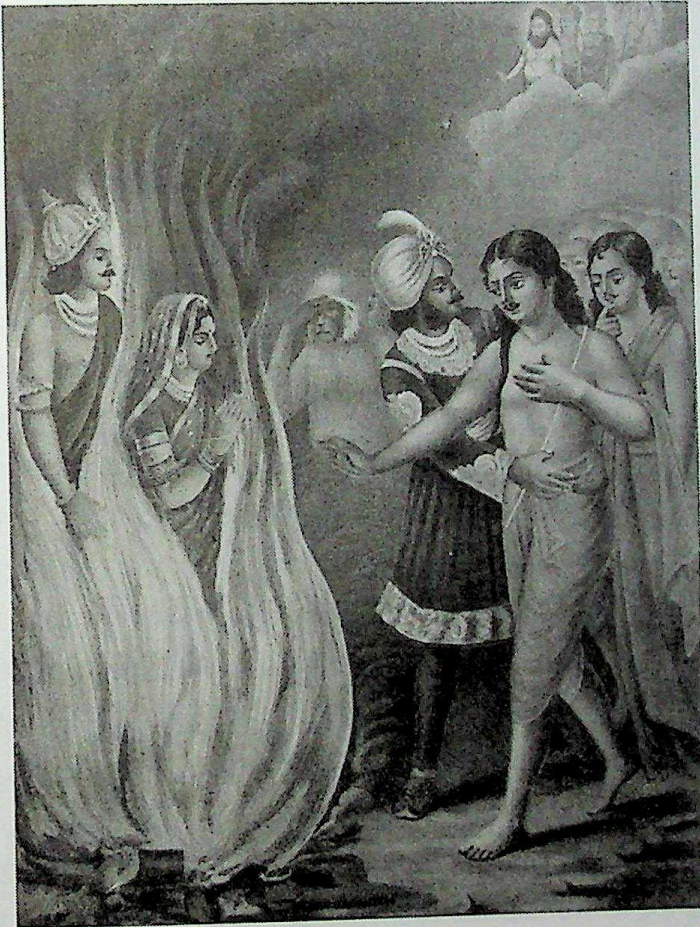
सीता के अग्नि-प्रवेश के माध्यम से ज्ञान द्वारा पवित्र-सोच के परिष्कार का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड (सर्ग ११२ से ११८ तक) में सीता के अग्नि-प्रवेश की जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

रावण का वध करके राम जब युद्धकर्म से निवृत्त हो गए, तब लंकापुरी के राज्य पर विभीषण का अभिषेक करवाकर उन्होंने हनुमान को आज्ञा दी कि वे सीता के समीप पहुँचकर उनसे रावण के वध का समस्त समाचार निवेदित करें। तदनुसार हनुमान ने सीता के समीप पहुँचकर राम का संदेश उन्हें सुनाया और वापस लौटकर राम से मिलने की सीता की इच्छा को भी राम के समक्ष निवेदित किया। अब राम ने विभीषण को आज्ञा दी कि वे सीता को ले आएँ। अतः विभीषण राम की इच्छा के अनुसार सीता को दिव्य वस्त्राभूषणों से विभूषित करके, शिविका में बैठाकर राम के समीप ले आए। राम के आदेश से सीता शिविका से उतरकर पैदल चलकर राम के समक्ष उपस्थित हुई और राम के मुख-चन्द्र का दर्शन करके अत्यन्त प्रसन्न हुई। राम ने सीता के समक्ष रावण के वध से प्राप्त हुई अपनी सन्तुष्टता को व्यक्त किया परन्तु रावण के घर में रहने के कारण सीता के चरित्र पर संदेह करते हुए उन्हें ग्रहण करने से इन्कार कर दिया।

राम के वचनों से स्तब्ध और दुःखी सीता ने अब अग्नि में प्रवेश का निश्चय करके लक्ष्मण से प्रार्थना की कि वे उसके लिये चिता तैयार कर दें। राम के संकेत से अनुमोदन पाकर लक्ष्मण ने चिता तैयार कर दी और निष्कलंक सीता अग्निदेव से रक्षा की प्रार्थना करते हुए अग्नि में प्रविष्ट हो गई। चारों ओर विद्यमान राक्षस और वानर यह सब देखकर भयंकर हाहाकार करने लगे तथा राम भी इस हाहाकार को सुनकर दुःखी हुए और दो घड़ी तक कुछ सोचते रहे। इसी बीच मूर्तिमान अग्निदेव सीता को गोद में लेकर चिता से ऊपर उठे और सीता की पवित्रता को प्रमाणित करते हुए उन्होंने सीता को राम को समर्पित कर दिया। अग्निदेव द्वारा सीता की निष्पापता को सुनकर राम प्रसन्न हुए और कहा कि सीता अत्यन्त पवित्र हैं परन्तु तीनों लोकों के प्राणियों के मन में सीता की निष्पापता का विश्वास दिलाने के लिये ही उन्होंने ऐसा किया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा पूर्णरूपेण प्रतीकात्मक है और कथा में आए हुए सभी पात्र रामकथा के पूर्व परिचित पात्र ही हैं। फिर भी कथा के मर्म को समझने के लिये पात्रों का पुनरावलोकन आवश्यक है।

१. रावण–

रावण नामक पात्र अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान को इंगित करता है। देहाभिमान का अर्थ है– अपनी सही पहचान (आत्म-स्वरूपता) को भूल जाने के कारण गलत पहचान (देह तथा देह से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं, पदों तथा छवियों को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझ लेना) को ही अपनी सही पहचान मानकर उससे सघन रूप से जुड़ जाना।

२. राम–

राम नामक पात्र नूतन उदित हुए आत्म-ज्ञान को अर्थात् अपनी सही पहचान-आत्म-स्वरूपता में स्थिति (मैं देह नहीं हूँ, अपितु देह को चलाने वाला अजर, अमर, अविनाशी, चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ) को इंगित करता है। अपनी इस सही पहचान में स्थित होकर मनुष्य एक दिन अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान रूप रावण को अवश्य विनष्ट करता है।

३. सीता–

आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) की शक्तिस्वरूपा पवित्र-सोच को ही रामकथा में सीता नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जन्मों-जन्मों की यात्रा में अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप (बीज रूप) में विद्यमान हुए अपने ही देहाभिमान (रावण) के कारण यह अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) बन्धन में पड़ती है और आत्म-ज्ञान में स्थित होकर देहाभिमान (रावण) का विनाश हो जाने पर यही पवित्र-सोच (सीता) एक दिन मुक्त भी हो जाती है। अतः पवित्र-सोच (सीता) के बन्धन का अर्थ है– जीवन-व्यवहार से पवित्र-सोच (सीता) का लुप्त हो जाना और पवित्र-सोच (सीता) की मुक्तता का अर्थ है– जीवन-व्यवहार में पवित्र-सोच (सीता) का पुनः उपस्थित हो जाना।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४. हनुमान और विभीषण की सहायता से राम का सीता से पुनर्मिलन और दर्शन–

रामकथा में हनुमान नामक पात्र को प्रज्ञा के प्रतीक रूप में तथा विभीषण नामक पात्र को सात्विकता के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। राम और सीता के पुनर्मिलन में हनुमान और विभीषण के सहायक होने के रूप में इस तथ्य की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपनी इन्हीं दोनों शक्तियों- प्रज्ञा अर्थात् हनुमान एवं सात्विकता अर्थात् विभीषण की सहायता से ही देहाभिमान रूप रावण द्वारा हरण की गई अपनी पवित्र-सोच (सीता) से पुनः मिलता और उसके दर्शन करता है। प्रज्ञा-शक्ति (हनुमान) और सात्विक-शक्ति (विभीषण) के अभाव में मनुष्य अपनी पवित्र-सोच से मिल नहीं सकता।

५. राम के आदेश से सीता का शिविका से उतरकर पैदल ही चलकर राम के समक्ष उपस्थित होना–

प्रस्तुत कथन आध्यात्मिक साधना की आरोहण (ऊर्ध्व गति) और अवरोहण (प्रसारण या फैलाव) नामक स्थितियों की ओर संकेत करता प्रतीत होता है। सीता का शिविका में चढ़ना पवित्र-सोच की आरोहण स्थिति (ऊर्ध्व गति) को तथा सीता का शिविका से उतरना पवित्र- सोच की अवरोहण स्थिति (प्रसारण या फैलाव) को इंगित करता है। यहाँ इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि देहाभिमान (रावण) का विनाश हो जाने पर आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) की पवित्र-सोच (सीता) का केवल सोच के स्तर तक सीमित रहना उचित नहीं है। अब उसका वचन और कर्म के बाह्य स्तरों पर प्रकट अथवा अवतरित हो जाना भी अनिवार्य है।

६. सीता के आदेश से लक्ष्मण द्वारा चिता का निर्माण और चिता की अग्नि में सीता का प्रवेश–

चिता शब्द यहाँ चित्ति शब्द का ही प्रच्छन्न स्वरूप प्रतीत होता है। चित्ति का अर्थ है– ज्ञान। वेद में कहा गया है– चित्तिः ज्ञानम् अचित्तिः अज्ञानम्। ज्ञान को अग्नि भी कहा गया है और यह एक ऐसी अग्नि है, जो न केवल कलुषता का विनाश करती है अपितु पवित्र को पवित्रतम भी बना देती है। अतः चिता की अग्नि में सीता के प्रवेश द्वारा पवित्र-सोच के परिष्कृत एवं पवित्रतम स्वरूप को ही चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

७. तीनों लोकों के प्राणियों के मन में सीता की निष्पापता का विश्वास दिलाने के लिये सीता का अग्नि-प्रवेश–

तीन लोक यहाँ मन, वचन तथा कर्म रूप तीन स्तरों को संकेतित करते प्रतीत होते हैं। मन (सोच) की पवित्रता ही वचन तथा कर्म को भी निस्सन्देह रूप से पवित्र बना देती है और तीनों स्तरों पर विद्यमान हुई अपनी इस पवित्रता के कारण ही आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अब सज्जन अथवा दुर्जन सभी के लिये अत्यन्त विश्वसनीय हो जाता है।

कथा का अभिप्राय

जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूल जाता है और शरीर तथा शरीर से सम्बन्ध रखने वाली अपनी भूमिकाओं को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर उनमें आसक्त हो जाता है, तब उसे देहाभिमान में स्थित कहा जाता है। यही देहाभिमान धीरे-धीरे संस्कार रूप होकर अवचेतन मन (चित्त) के भीतर चला जाता है और चेतन मन के तल पर प्रकट होकर मनुष्य को बहुत हानि पहुँचाता है। संस्कार रूप में विद्यमान हुए इस देहाभिमान को अब वहाँ से (अवचेतन मन से) निकालना अथवा विनष्ट करना कठिन होता है, ठीक उसी प्रकार जैसे किसी मजबूत जड़ों वाले वृक्ष को मूलतः विनष्ट करना कठिन हो जाता है।

रामकथा संकेत करती है कि अपने ही अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुआ अपना ही यह देहाभिमान (रावण) एक दिन छलपूर्वक अपनी ही पवित्र-सोच (सीता) को चुरा लेता है और तब अपने ही जीवन-व्यवहार से अपनी ही पवित्र-सोच लुप्त हो जाती है परन्तु आत्म-ज्ञान में स्थित होकर जब मनुष्य (राम) इस देहाभिमान (रावण) का विनाश कर देता है, तब वही पवित्र-सोच (सीता) जीवन-व्यवहार में पुनः प्रकट भी हो जाती है। रावण (देहाभिमान) द्वारा सीता (पवित्र-सोच) के बन्धन परन्तु रावण (देहाभिमान) के विनाश से सीता (पवित्र-सोच) की मुक्ति के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) जब इस देहाभिमान का विनाश कर देता है, तब देहाभिमान (रावण) के विनाश से बन्धन-मुक्त हुई अपनी पवित्र-सोच (सीता) को पाकर भी वह पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं हो पाता। वह यह चाहता है कि उसकी अपनी पवित्र-सोच (सीता) एक बार ज्ञान की अग्नि (चिता की अग्नि) में तप जाए क्योंकि ज्ञान की अग्नि में तपकर

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

बाहर आई हुई वही पवित्र-सोच पवित्रतम होकर जब वचन तथा कर्म में प्रकट होगी, तब सभी के लिये अत्यन्त विश्वसनीय हो जाएगी। पवित्र-सोच के इस परिष्कार तथा प्रसार को ही कथा में दो प्रकार से चित्रित किया गया है।

पहले प्रकार के अन्तर्गत इस परिष्कार तथा प्रसार को सीता के शिविका में चढ़ने (आरोहण) तथा उतरने (अवरोहण) के रूप में चित्रित किया गया है। तथा दूसरे प्रकार के अन्तर्गत लक्ष्मण द्वारा चिता का निर्माण और चिता की अग्नि में प्रविष्ट होकर सीता के पुन: सुन्दर रूप में प्रकट होने के रूप में यही संकेत किया गया है कि आत्म-ज्ञानी मनुष्य (राम) अपनी संकल्प-शक्ति (लक्ष्मण) के सहारे अपने ही भीतर एक ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करता है। उस ज्ञानाग्नि में तपकर उसकी अपनी पवित्र-सोच (सीता) पवित्रतम होकर वचन तथा कर्म में प्रकट हो जाती है।

मन, वचन तथा कर्म रूप सभी स्तरों पर प्रकट हुई इस पवित्रता के कारण ही अब आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) सज्जन अथवा दुर्जन सभी के लिये अत्यन्त विश्वसनीय हो जाता है और उसके प्रति किसी के भी मन में किसी भी प्रकार के सन्देह का लेशमात्र भी नहीं होता।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Embellishment of Pure-Thinking by Knowledge as depicted by entering of Sītā in Fire

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapters 112-118), there is a story of Sītā, entering the fire and coming out of that fire. It is said that after killing Rāvaṇa, Rāma ordered Hanumāna to go to Sītā and inform her about killing of Rāvaṇa by Rāma. Accordingly, Hanumāna approached Sītā, conveyed to her Rāma's message, came back, and also conveyed to Rāma that Sītā wishes to see him soon.

Now Rāma requested Vibhīṣaṇa to bring Sītā, hence Vibhīṣaṇa brought her in a carriage. Sītā, adorned with divine clothes and ornaments, approached Rāma in the carriage but got down from that carriage as per Rāma's wish. Rāma, in front of Sītā expressed his satisfaction in killing of Rāvaṇa but refused to accept her expressing his doubt about her character.

Hearing this, Sītā became very sad and numb and requested Lakṣmaṇa to prepare a fire for her. Lakṣmaṇa, getting permission through gestures of Rāma, prepared fire, in which Sītā entered. Sītā prayed Agni-Deva (Deity of fire) to protect her if she is pure. Agni-Deva emerged out of the fire soon taking Sītā in His lap and thus declared that Sītā is pure. Now Rāma accepted Sītā and said that Sītā was already pure but he wanted to establish Purity amongst three lokas.

The story is symbolic and depicts embellishment of Pure-Thinking by Knowledge. In Rāmāyaṇa, it is said that when a person forgets his Real Identity in the long journey of births and deaths, Ego is created. This Ego becomes a *Saṁskāra* (a deep impression) and lies in sub-consious mind. Ego simply means-an Attachment to a Wrong Image about Himself and in Rāmāyaṇa, Rāvaṇa represents this Ego.

It is also said in Rāmāyaṇa that when a person knows his Real Self, he gets possessed with Pure-Thinking but the Saṁskāra of Ego emerges from his sub-conscious mind and

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

steels away his Purity (Pure-Thinking) symbolized as steeling (kidnapping) of Sītā by Rāvaṇa.

Now the story specially points out that this Purity (Pure-Thinking i.e. Sītā) stolen by Ego (Rāvaṇa) remains intact. This Purity only gets engulfed by Ego and other impurities emerging from Ego. As soon as Ego is effaced, all those impurities also get effaced and Purity (Pure-Thinking i.e. Sītā) becomes free.

The present story depicts that although Purity (Pure-Thinking i.e. Sītā) becomes free from the clutches of Ego but a Self-Knowledged Person is not satisfied completely. He strongly wishes its embellishment by Knowledge because Knowledge is such fire that adorns this Purity. Such adorned Purity (Sītā) becomes trustworthy on all levels– Thoughts, Words and Deeds (the three *lokas*) and no flash of doubt remains. Therefore destruction of Ego brings happiness to all of them and they evolve accordingly.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

४२. राम-राज्याभिषेक कथा

(आत्म-ज्ञान में प्रतिष्ठित होकर स्वराज्य-अधिकारी बनने का चित्रण)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi
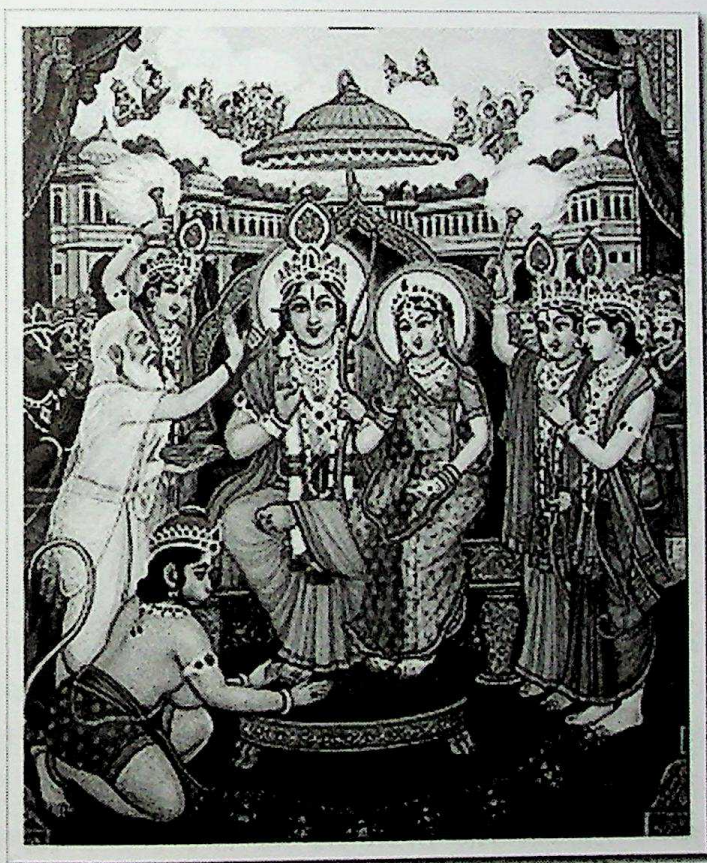
राम के राज्याभिषेक के माध्यम से आत्म-ज्ञान में प्रतिष्ठित होकर स्वराज्य-अधिकारी बनने का चित्रण

वाल्मीकि रामायण के अन्तर्गत युद्धकाण्ड में (सर्ग १२८) राम के राज्याभिषेक की जो कथा वर्णित है, उसका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है–

कथा का संक्षिप्त स्वरूप

रावण आदि राक्षसों का विनाश करके और लंकापुरी के राज्य पर विभीषण का अभिषेक करके राम ने जब लक्ष्मण और सीता के साथ अयोध्या लौटने का निश्चय किया, तब विभीषण ने भी सुग्रीव आदि वानरों के साथ अयोध्या चलने और राम के राज्याभिषेक को देखकर वापस लौट आने का राम से आग्रह किया। तदनुसार राम सभी को साथ लेकर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हुए और नन्दिग्राम में तपस्या में लगे हुए अपने भाई भरत के पास पहुँचे। राम से मिलकर भरत अत्यन्त प्रसन्न हुए और भरत ने जब राम से राज्य-ग्रहण हेतु आग्रह किया, तब राम ने भी भरत के आग्रह को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया। अब राम ने भरत आदि के साथ मिलकर पहले स्नान किया और फिर श्रृंगारादि से विभूषित होकर अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। अयोध्यापुरी में वसिष्ठ जी ने सीता सहित राम को एक रत्नमयी चौकी पर बैठाया और न केवल मंत्रियों, ब्राह्मणों, योद्धाओं, वानरों और व्यवसायियों ने अपितु आकाश में स्थित देवताओं और लोकपालों ने भी चारों समुद्रों के जल से उनका अभिषेक किया। अन्त में राम को किरीट से विभूषित किया गया। राम के इस राज्याभिषेक के अवसर पर देवगन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नृत्य करने लगी और पृथ्वी भी हरी-भरी होकर फल-फूलों से सम्पन्न हो गई। अन्त में राम ने सभी ब्राह्मणों और वानरादि का यथायोग्य सत्कार करके सबको विदा कर दिया और स्वयं भाइयों के साथ मिलकर ग्यारह सहस्त्र वर्षों तक राज्य किया।

कथा की प्रतीकात्मकता

कथा प्रतीकात्मक है, अतः कुछ प्रतीकों को समझ लेना उपयोगी है।

१. राम द्वारा रावणादि राक्षसों का विनाश–

स्वयं की सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होकर अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में विद्यमान हुए तथा संस्कार रूप धारण कर चुके अपने ही

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

देहाभिमान (रावण) प्रभृति नाना प्रकार के विकारों के विनाश को यहाँ राम द्वारा रावणादि राक्षसों के विनाश के रूप में संकेतित किया गया है।

२. लंकापुरी के राज्य पर विभीषण का अभिषेक–

अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही विकारों का विनाश हो जाने पर अपने ही व्यक्तित्व में जो सात्विकता विराजित होती है, उसे ही कथा में लंकापुरी के राज्य पर विभीषण के अभिषेक के रूप में इंगित किया गया है।

३. पुष्पक विमान–

पुष्पक विमान एक श्रेष्ठ संकल्प को इंगित करता प्रतीत होता है। पौराणिक साहित्य में विमान शब्द संकल्प के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और विमान के साथ पुष्पक शब्द का योग होने पर यह पुष्पक विमान एक श्रेष्ठ संकल्प को संकेतित करता है। पुष्पक शब्द की निरुक्ति के आधार पर इस श्रेष्ठ संकल्प को समझने का प्रयास किया जा सकता है। पुष्पक शब्द पुष्प और क नामक दो शब्दों के योग से बना है। पुष्प का अर्थ है– खिलना, खुलना, विकास या विस्तार और क का अर्थ है– करने वाला। अतः एक ऐसा संकल्प, जो व्यक्तित्व को खिलाता है, खोलता है अथवा विकसित करता है– पुष्पक कहलाता है। मनुष्य के जीवन में जो भी घटना घट रही है, वह उसके अपने कर्म के (प्रकृति के) नियमानुसार घट रही है। अतः जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटना शुभ एवं कल्याणकारी है– यह एक श्रेष्ठ सकारात्मक संकल्प है, जो कठिन स्थितियों में भी मनुष्य को स्थिर और शान्त रखता है। आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) इस श्रेष्ठ संकल्प पर सहज रूप से आरूढ़ हो जाता है।

रामकथा में कहा गया है कि पुष्पक विमान पहले कुबेर देवता के पास था, जिसे बाद में रावण ने छीन लिया था। परन्तु रावण का विनाश करके राम ने इसे नन्दीग्राम में पहुँचते ही पुनः कुबेर के पास वापस भेज दिया था।

चूँकि कुबेर देवता धन के अर्थात् धनात्मकता या सकारात्मकता के प्रतीक हैं, इसलिये प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि उपर्युक्त वर्णित श्रेष्ठ संकल्प एक सकारात्मक संकल्प है और सकारात्मक व्यक्तित्व में ही यह श्रेष्ठ सकारात्मक संकल्प अत्यन्त सहज रूप में विद्यमान होता है। परन्तु देहाभिमान की स्थिति में भी जब मनुष्य इस श्रेष्ठ संकल्प का उपयोग करता है,

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

तब वह इसका उपयोग समुचित रीति से न करके मनमाने ढंग से अर्थात् वाचिक रूप से ही करता है। अत: उपयोग की इस भिन्नता को दर्शाने के लिये ही कथा में रावण के पुष्पक विमान को खरयुक्त और राम के पुष्पक विमान को हंसयुक्त कहा गया है।

४. भरत–

भरत नामक पात्र को भरत शब्द की निरूक्ति के आधार पर सम्यक् रूप से समझने का प्रयास किया जा सकता है।

भरत शब्द भर और त नामक एकाक्षर के योग से बना है। भर का अर्थ है– वह भार या संग्रह, जिसे प्रत्येक आत्मा (मनुष्य) अपने ही भीतर धारण करता है अर्थात् प्रत्येक आत्मा जिन सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप गुणों से युक्त है– वही उसका भार या संग्रह कहलाता है। त (तनोति इति) का अर्थ है– फैलाव या विस्तार। अत: उपर्युक्त वर्णित सुख, शान्ति आदि आत्म-गुणों के भार या संग्रह का फैलाव ही भरत कहलाता है।

तात्पर्य यह है कि सबसे पहले मनुष्य अपनी सही पहचान अर्थात् आत्म-ज्ञान में स्थित होता है और आत्म-ज्ञान में स्थित होकर ही उसे यह ज्ञात हो पाता है कि वह स्वयं सुख, शान्ति, शक्ति, शुद्धता, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप गुणों के भार से भरपूर है। इन्हीं गुणों के भार को जीवन-व्यवहार में फैलाना है। अत: सर्वप्रथम आत्म-ज्ञान में स्थित होने और फिर उसके पश्चात् ही आत्म-गुणों के भार को जीवन-व्यवहार में फैलाने के कारण रामकथा में आत्म-ज्ञान को बड़े भाई राम के रूप में तथा फिर आत्म-गुणों के भार के फैलाव को छोटे भाई भरत के रूप में चित्रित किया गया है।

५. नन्दीग्राम में भरत का निवास और तप–

नन्दीग्राम शब्द के द्वारा वास्तव में नन्दी अर्थात् आनन्दस्वरूप आत्मा को ही संकेतित किया गया है। भरत को नन्दीग्राम में तपोरत कहकर यह संकेत किया गया है कि आत्म-गुणों के भार या संग्रह का जीवन-व्यवहार में फैलाव या विस्तार तब तक सम्भव नहीं होता, जब तक मनुष्य के अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही विकारों का विनाश नहीं हो जाता। चित्तगत विकारों का विनाश होने तक आत्म-गुणों का भार या संग्रह जीवन-व्यवहार में प्रकट न होकर आत्मा के भीतर उसी प्रकार विद्यमान रहता है, जैसे कोई तपस्वी तपोमय स्थिति में विद्यमान हो।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

६. रावण-वध के पश्चात् ही अयोध्यापुरी के राज्य पर राम का अभिषेक–

द्वन्द्व रहित, स्थिर एवं शान्त मन को रामकथा में अयोध्यापुरी (अ योध्या अर्थात् युद्ध रहित स्थिति) के रूप में इंगित किया गया है। रावण-वध के पश्चात् ही अयोध्यापुरी के राज्य पर राम के अभिषेक के रूप में यह महत्त्वपूर्ण संकेत किया गया है कि भले ही आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य का अपना चेतन मन द्वन्द्व रहित होने के कारण पूर्णतः स्थिर एवं शान्त हो गया हो परन्तु अयोध्यापुरी रूपी इस स्थिर एवं शान्त मन के सिंहासन पर आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) का सहज रूप से प्रतिष्ठित रहना तब तक सम्भव नहीं है, जब तक उसके अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान हुए देहाभिमान (रावण) जैसे प्रबल विकारों का विनाश नहीं हो जाता। अवचेतन मन (चित्त) के स्तर पर विद्यमान हुए देहाभिमान जैसे विकारों का संवेग बहुत प्रबल होता है और वे विकार सतत रूप से वहाँ से उठकर चेतन मन की स्थिरता एवं शुद्धता को बहुत ही हानि पहुँचाते हैं। अतः आत्म-ज्ञान में स्थित हुए मनुष्य (राम) के लिये सबसे पहले इन्हीं का विनाश करना अनिवार्य हो जाता है।

७. विभिन्न प्रकार की प्रजाओं द्वारा राम का अभिषेक और राम द्वारा भी सबका यथायोग्य सत्कार–

व्यक्तित्व में क्रियाशील विभिन्न प्रकार की शक्तियों को ही यहाँ प्रजाओं अर्थात् मन्त्रियों, ब्राह्मणों, योद्धाओं, व्यवसायियों, वानरों, देवताओं तथा लोकपालों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत कथन द्वारा यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि जैसे बाह्य धरातल पर राजा और प्रजा का अन्योन्याश्रित प्रगाढ़ सम्बन्ध होता है और वे परस्पर एक दूसरे के पूरक होते हैं, उसी प्रकार आन्तरिक धरातल पर भी व्यक्तित्व में क्रियाशील सभी शक्तियाँ प्रजा रूप होकर अपने आत्म-ज्ञान रूप राजा को परिपुष्ट करती हैं और आत्म-ज्ञान रूप राजा द्वारा भी सभी शक्तियों को यथायोग्य पोषण प्राप्त होता है। तात्पर्य यह है कि अब व्यक्तित्व एक अखण्ड इकाई बन जाता है।

८. राम द्वारा ग्यारह सहस्त्र वर्षों तक राज्य करना–

पौराणिक साहित्य में वर्ष शब्द स्तर, भाग, हिस्सा या खण्ड का वाचक है और यहाँ (पौराणिक साहित्य में) किसी भी तथ्य को छिपाने के लिये तथ्य के साथ-साथ सहस्त्र अथवा लक्ष आदि संख्याओं को भी जोड़ दिया जाता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में ग्यारह सहस्त्र वर्षों के रूप में वास्तव में व्यक्तित्व के ही ग्यारह स्तरों-

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों तथा मन की ओर संकेत किया गया प्रतीत होता है। राम द्वारा ग्यारह सहस्त्र वर्षों तक राज्य करने के रूप में यह संकेत किया गया प्रतीत होता है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने व्यक्तित्व के सभी स्तरों (भागों या हिस्सों) पर राज्य करता है। उसके व्यक्तित्व का कोई भी स्तर (भाग या हिस्सा) अब मनमाना आचरण नहीं करता।

कथा का तात्पर्य

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि कोई भी कर्म (मानसिक, वाचिक अथवा कायिक) जब बार-बार किया जाता है, तब उसकी एक छाप अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में अंकित हो जाती है, जिसे अध्यात्म की भाषा में संस्कार कहा जाता है।

एक शरीर को छोड़ने तथा दूसरे शरीर को ग्रहण करने की निरन्तर और लम्बी यात्रा में जब मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को भूलकर अपने आपको शरीर समझने लगता है, तब यह शरीर-ज्ञान भी एक संस्कार बनकर अवचेतन मन (चित्त) में चला जाता है और इसी संस्कार के कारण अब मनुष्य अपनी भूमिकाओं (roles), अपने पदों (designations) तथा अपने सम्बन्ध में निर्मित की हुई अपनी विभिन्न छवियों (images) को ही अपना वास्तविक स्वरूप समझकर उनमें आसक्त हो जाता है। यही देहाभिमान कहलाता है, जिसे रामकथा में रावण नामक पात्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुआ यही देहाभिमान अब सभी प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोहादि विकारों को उत्पन्न करता है, जिन्हें रामकथा में रावण के परिवार के रूप में चित्रित किया गया है। अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में इकठ्ठे हुए इन विकारों को विनष्ट करना अब सरल नहीं होता और केवल आत्म-ज्ञान में स्थित होकर ही इनका विनाश करना सम्भव हो पाता है।

आत्म-ज्ञान का अर्थ है– अपने वास्तविक स्वरूप– आत्म-स्वरूप को पहचान लेना अर्थात् इस ज्ञान में, समझ में अथवा बोध में स्थित हो जाना कि मैं शरीर नहीं हूँ, अपितु शरीर को चलाने वाला, शरीर का स्वामी, अजर, अमर, अविनाशी, ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप, चैतन्य-शक्ति आत्मा हूँ। आत्म-ज्ञान में स्थिति को ही रामायण में राम नामक पात्र के रूप में चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामकथा संकेत करती है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अपने प्रत्येक विचार का निर्माता और नियन्ता होता है, चेतन मन उसका मित्र हो जाता है और यही चेतन मन आचरण-परक होने के कारण ज्ञान, कर्म और भक्ति के एकत्व में भी स्थित हो जाता है। (निषादराज गुह, भरद्वाज मुनि और अत्रि मुनि से राम के मिलन के रूप में इसी तथ्य को दर्शाया गया है।) अत: ऐसे मन से युक्त हुआ मनुष्य (राम) अब किसी नए विकार का निर्माण नहीं करता, प्रत्युत प्रज्ञा के सहारे अपने प्रसुप्त पड़े हुए ज्ञान को जाग्रत करके, अपनी विभिन्न ज्ञान-शक्तियों का सतत उपयोग करते हुए अपने ही अवचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में विद्यमान हुए सभी विकारों को शनैः-शनैः विनष्ट कर देता है। (राम द्वारा हनुमान, सुग्रीव एवं वानरों की सहायता से रावण आदि राक्षसों के विनाश के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।)

अवचेतन मन (चित्त) के भीतर संस्कार रूप में विद्यमान हुए अपने ही विकारों के इस विनाश से अब मनुष्य (राम) चेतन मन के साथ-साथ अवचेतन मन (चित्त) का भी स्वामी बनकर इस उक्ति को पूर्णत: चरितार्थ करता है कि आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य अपने स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर का स्वामी होकर जीवन रूपी रथ को जिस दिशा में चाहे, उस दिशा में गतिमान करता है।

प्रस्तुत कथा संकेत करती है कि चेतन मन के साथ-साथ अवचेतन मन (चित्त) पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करके आत्म-ज्ञान में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अब इस श्रेष्ठ संकल्प में सहज रूप से स्थित हो जाता है कि जो भी कुछ जीवन में घटित हो रहा है, वह सब कर्म-नियम अर्थात् प्रकृति के नियमानुसार ही घटित हो रहा है, अत: जीवन में घटित हुई प्रत्येक घटना शुभ एवं कल्याणकारी है। इस श्रेष्ठ संकल्प में स्थित हुआ मनुष्य (राम) अब क्या, क्यों और कैसे रूप प्रश्नों से सर्वथा मुक्त होकर अपने सम्पूर्ण मनो-राज्य का स्वामी बन जाता है, जिसे कथा में राम के पुष्पक विमान पर आरूढ़ होने, अयोध्यापुरी पहुँचने और राजा हो जाने के रूप में चित्रित किया गया है।

कथा यह महत्त्वपूर्ण संकेत करती है कि अब एक ओर तो व्यक्तित्व में क्रियाशील सभी शक्तियाँ इस आत्म-ज्ञान रूप राजा (राम) के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाती हैं, तथा दूसरी ओर आत्म-ज्ञान रूप राजा (राम) भी इन शक्तियों को यथायोग्य पुष्टि प्रदान करता है। मन्त्रियों, ब्राह्मणों, योद्धाओं, व्यवसायियों, वानरों, देवों तथा लोकपालों द्वारा राम का अभिषेक तथा राम द्वारा भी सभी के यथायोग्य सत्कार एवं पुष्टि के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

अध्यात्म के स्तर पर इस राज्याभिषेक का अर्थ है– अपने सम्पूर्ण आन्तरिक मनो-राज्य का स्वामी बन जाना और स्वयं में (आत्मा में) ही विद्यमान सुख, शान्ति, शुद्धता, शक्ति, ज्ञान, प्रेम तथा आनन्द रूप उस गुण-समूह का जीवन-व्यवहार में प्रकट हो जाना, जो बहुत समय से स्वयं के अर्थात् आनन्द-स्वरूप आत्मा के भीतर ही मानो तपोरत स्थिति में विद्यमान तो था परन्तु जीवन-व्यवहार में प्रकट नहीं हो पा रहा था। नन्दीग्राम में भरत के निवास और तप परन्तु राम के आगमन पर भरत द्वारा राम को राज्य-प्रदान के रूप में इसी तथ्य को चित्रित किया गया है।

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

Sovereignty of Self as described through Coronation of Rāma

In Vālmīki Rāmāyaṇa (Yuddhakāṇḍa, chapter 128), there is a story of coronation of Rāma. It is said that after killing Rāvaṇa and establishing Vibhīṣaṇa in Laṅkāpurī, Rāma wished to return to Ayodhyā with Lakṣmaṇa and Sītā. Vibhīṣaṇa with Sugrīva and Vānaras requested Rāma to take them also to Ayodhyā to see his coronation ceremony. Rāma conceded to their request, boarded Puṣpaka Vimāna and arrived at Nandigrāma near Ayodhyā where Bharata was observing penances.

Bharata was very happy, welcomed Rāma and all his friends and handed over to Rāma his kingdom back. Now Rāma reached Ayodhyā with all of them where his coronation ceremony was to be performed. Ministers, Brāhmiṇs, Warriors, Vānaras, Traders, Devas and Lokapālas sprinkled holy water on him and ultimately Rāma was crowned. Rāma welcomed and offered gifts to Brāhmiṇs and friends. Subsequently they returned to their places. Thereafter Rāma ruled the kingdom with his brothers for eleven thousand years.

The story is symbolic and points to Sovereignty of Self.

Everybody knows that every *Karma* when done repeatedly leaves an impression on sub-conscious mind called Saṁskāras. In the long journey of births and deaths, when a person forgets his own Real Self and thinks himself merely a Body, body-consciousness develops. This body-consciousness results into ego and this ego produces lot of vices. Slowly all these vices convert into *Saṁskāras* and lie in sub-conscious mind symbolized as Demon Rāvaṇa and his family in the story. These *Saṁskāras* are deeply rooted in sub-conscious mind and are not destroyed easily. Only a person established in Self-Knowledge symbolized as Rāma is capable in destroying them.

The story also points out that a Self-Knowledged person (Rāma) is the Creator and Controller of his own thoughts. His conscious mind becomes his friend. He always resorts his

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

knowledge in every action and establishes harmony between *jñāna*, *karma* and *bhakti*. This is symbolized as meeting of Rāma with Niṣādarāja Guha (a friendly mind), Bharadvāja muni (resorting knowledge into action) and Atri muni (establishing harmony between *jñāna*, *karma* and *bhakti*) in the story.

A Self-Knowledged person (Rāma) never creates new vices but instead destroys the old ones also by using his Wisdom symbolized as Hanumāna, by awakening his Knowledge symbolized as Sugrīva and by using his different Powers of Knowledge symbolized as Vānaras. Then one day, a Self-Knowledged person (Rāma) becomes the Master of his Sub-Conscious Mind as well as his Conscious Mind.

Such a Self-Knowledged person (Rāma) is established in this higher thinking that 'whatever is happening in life, is happening according the law of nature (*karma*), therefore everything or every situation in life is not only appropriate but also beneficial for him.' This is symbolized as Rāma's boarding on Puṣpaka Vimāna. In Paurāṇic literature word 'Vimāna' symbolizes the 'Thought' and in Sanskrit 'Puṣpaka' is meant for such a higher thought which blooms one's personality.

All the core qualities of Self such as peace, power, purity, knowledge, happiness, love and bliss, which were dormant inside, symbolized as living of Bharata in Nandigrāma, now manifest in life symbolized as meeting of Rāma with Bharata and coming back to Ayodhyā.

All the powers– physical, mental, emotional and spiritual, working within are surrendered to his Master – The Self and The Self also nourishes them just as a king nourishes his subject symbolized as coronation of Rāma by Ministers, Brāhmiṇs, Warriors, Traders, Vānaras, Devas and Lokapālas and nourishing them by Rāma accordingly.

Thus, the whole personality becomes integrated, a harmonious relationship establishes between The Self and the Body and a Self-Knowledged person (Rāma) rules over the

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

kingdom of peace, power, purity, knowledge, happiness, love and bliss symbolized as ruling of Rāma over the kingdom.

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

शब्द-सूची

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

डॉ० राधा गुप्ता का जन्म एवं स्कूली शिक्षा देवबन्द (उ०प्र०) में हुई। मेरठ विश्वविद्यालय से इन्होंने संस्कृत विषय में एम.ए. किया और देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर (म०प्र०) से पीएच.डी. एवं डी.लिट्. की उपाधि प्राप्त की। **योगवासिष्ठ** के ऊपर लिखा गया इनका शोधप्रबन्ध तथा पूर्व में प्रकाशित **रहस्य** नामक पुस्तक परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली पर उपलब्ध है। डॉ० राधा गुप्ता ने अपने भाई श्री विपिन कुमार के साथ मिलकर **पुराण-विषय-अनुक्रमणिका** नामक वेदों और पुराणों का एक बृहत् सन्दर्भ ग्रन्थ तैयार किया है, जिसके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। अप्रकाशित सामग्री अभी गूगल पर puraanic subject index पते पर उपलब्ध है।

Email id : drradha366@gmail.com
Mob. : 09424584832, 09425055623
Res. : Dr. Radha Gupta, 35, 2nd Avenue, Shubh Enclave, Harlur Road, Bangalore-560102 (Karnataka)

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.

Digitized by Madhuban Trust, Delhi

रामायण के रूप में प्रस्तुत रामकथा न तो ऐतिहासिक है और न काल्पनिक। यह एक अध्यात्म कथा है, जिसे प्रतीकात्मक शैली में इतने अद्‌भुत ढंग से प्रस्तुत किया गया है कि कथा अत्यन्त आकर्षक होकर इतिहास सी प्रतीत होती है।

हम इस प्रतीक शैली से पूरी तरह अनभिज्ञ हैं, अतः रामकथा का श्रवण, पठन करते हुए भी कथा में छुपी हुई अपार ज्ञान-सम्पत्ति से सर्वथा वंचित हो रहे हैं।

प्रस्तुत कार्य रामकथा की प्रतीक शैली को समझकर उसमें निहित समग्र ज्ञान से परिचित कराने का एक प्रयास मात्र है। यह प्रयास पाठक को एक नई दृष्टि प्रदान करेगा, ऐसी मुझे आशा है।

परिमल पब्लिकेशन्स

२७/२८ व २२/३, शक्ति नगर,

दिल्ली - ११०००७ (भारत)

दूरभाष : २३८४५४५६, ४७०१५१६८

CC-0. Shri Vipin Kumar Col. Deoband. In Public Domain.